चतुर्थ सेमेस्टर

Third Semester

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और संस्थान **एम.ए.ई.सी. - 608**

International Trade and Organizations **M.A.E.C. - 608**

विषय-सूची

खण्ड – 1 विदेशी विनिमय नियत्रंण सिद्धान्त एवं भारत की व्यापार नीति (Principles of Foreign Exchange and Control and Trade Policy of India)	**पृष्ठ संख्या 1-86**
इकाई 1- विदेशी विनिमय (Foreign Exchange)	1-18
इकाई 2- विनिमय नियत्रंण (Foreign Control)	19-33
इकाई 3- विदेशी विनिमय बाजार का सिद्धान्त विनिमय व्यापार, अन्तर-पणन एवं बाजार हैजिंग (Theory of Foreign Exchange Market, Exchange Trade, Arbitrage and Market Hedging)	34-52
इकाई 4- भारत की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नीति सुधार पूर्व काल (International Trade Policy of India during Post Reform Period)	53-69
इकाई 5- भारत की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नीति सुधार काल (International Trade Policy of India during Reform Period)	70-86
खण्ड – 2 अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान (International Institutions)	**पृष्ठ संख्या 87-158**
इकाई 6- वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार (International Trade under the Imperfect Competition in the Commodity Market)	87-98
इकाई 7- क्षेत्रीय गुट बहुपक्षवाद एवं विश्व व्यापार पद्धति (Regional Faction, Multilateralism and World Trade System)	99-112

इकाई 8- अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष 113-126
(International Monetary Fund)
इकाई 9- विश्व व्यापार तंत्र 127-144
(World Trade Organization)
इकाई 10- वैश्वीकरण-विनिमय बाजार का विकास, 145-158
यूरो मुद्रा बाजार एवं अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार
(Globalization- Development of Exchange Market,
Euro Currency Market and International Bond Market)

Suggested Readings:

1. Berg, H.V.D. (2012) ***International Economics –A heterodox Approach***, Yes Dec Publishing Pvt. Ltd., Chennai
2. Bhagwati, J. (Ed.) (1981), ***International Trade***: Selected Readings, Cambridge University Press, Mass.
3. Carbough, R. J. (1999) ***International Economics***, International Thompson Publishing, New York
4. Cherunilam, Francis (2009) ***International Economics***, Oxford University Press India.
5. Dana, M. S. (2000***) International Economics: Study, Guide and Work Book***, (5th Edition), Routledge Publishers, London
6. Ellsworth, P.T. (1958) ***The International Economy***, Macmillan Company, New York
7. Kenen, P. B. (1994) ***The International Economy***, Cambridge University Press, London.
8. Kindleberger, C. P. (1973) ***International Economics***, R. D. Irwin, Homewood.
9. Krugman, P.R. and Maurice Obstfeld (2009) ***International Economics***, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd., New Delhi
10. Mannur, H.G. (1999) ***International Economics***, *Theory & Practice*, Vikash Publishing House Pvt. Ltd, New Delhi
11. Mithani, D.M. (2008) ***International Economics***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
12. Mundell, R. (1968), ***International Economic***, The Macmillan Company Ltd., New York
13. Murthy, G. (2010) ***International Trade and Economic Co-operation***, New Century Publications, New Delhi
14. Rana, K. C. and K. N. Verma (2014) ***International Economics***, Vishal Publishing Company, Jalandhar
15. Salvatore, D. (1997) ***International Economics***, Prentice Hall, New York
16. Sodersten, Bo and Geoffrey Reed (1994) ***International Economics***, Macmillan Press Ltd., London
17. Sudama, Singh (1998), ***International Economics***, Oxford University Press India.
18. Verma, M.L. (1995) ***International Trade***, Vikas Publishing House Pvt. Ltd, New Delhi

इकाई-1 विदेशी विनिमय
(Foreign Exchange)

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 विदेशी विनिमय

1.3.1 विदेशी विनिमय का अभिप्राय

1.3.2 विदेशी विनिमय के तरीके

1.3.3 विदेशी विनिमय की समस्या के कारण

1.4 विदेशी विनिमय दर

1.4.1 विदेशी विनिमय दर का अर्थ

1.4.2 विदेशी विनिमय दर में परिवर्तन के कारण

1.5 विदेशी विनिमय दर निर्धारण हेतु सिद्धान्त

1.5.1 विदेशी विनिमय दर का निर्धारण

1.5.2 टंकण मूल्य समता सिद्धान्त

1.5.3 क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त

1.5.4 भुगतान सन्तुलन सिद्धान्त

1.6 अभ्यास प्रश्न

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में विदेशी विनिमय को स्पष्ट किया जाएगा। साथ ही विदेशी विनिमय के तरीके और विदेशी विनिमय की समस्या पर प्रकाश डाला जाएगा। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में विदेशी विनिमय दर की अवाधारणा तथा विदेशी विनिमय दर निर्धारण के विभिन्न सिद्धान्तों की विस्तृत चर्चा की जाएगी और विदेशी विनिमय दर में परिवर्तनों के कारणों को भी रेखांकित किया जाएगा।

प्रस्तुत इकाई विभिन्न देशों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दशा में विदेशी विनिमय और विदेशी विनिमय दर निर्धारण को समझने में अत्यन्त सहायक है।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप यह समझ सकेंगे कि

- ✓ विदेशी विनिमय का अर्थ और इसके विभिन्न तरीके क्या हैं?
- ✓ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में विदेशी विनिमय की समस्या क्यों उत्पन्न होती है?
- ✓ विदेशी विनिमय दर की अवधारणा क्या है?
- ✓ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में विदेशी विनिमय दर निर्धारण हेतु विभिन्न सिद्धान्त और इनकी सीमायें क्या हैं?
- ✓ विदेशी विनिमय दर में परिवर्तन के क्या कारण होते हैं?

1.3 विदेशी विनिमय

1.3.1 विदेशी विनिमय का अभिप्राय

साधारणतया अन्य देशों की मुद्राओं को विदेशी वविनिमय के अर्थ के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, परन्तु विदेशी विनिमय शब्द का प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र में निम्नवत दो अर्थों में किया जाता है:-

(अ) संकुचित अर्थ मे: इसका प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में किया जाता है –

1. **विदेशी मुद्राओं के रूप में** – कुछ अर्थशास्त्री विदेशी विनिमय से अभिप्राय विदेशी मुद्राओं से लगाते हैं अर्थात् जब यह कहा जाता है कि बैंक विदेशी मुद्रा का क्रय-विक्रय कर रहे हैं तब इसका सन्दर्भ विदेशी मुद्राओं से ही होता है। सामान्यतया विदेशी विनिमय का प्रयोग इसी अर्थ में किया जाता है। उदाहरणार्थ, भारत के लिए अन्य देशों की मुद्रायें – यूरो, डॉलर, व पौण्ड, यूआन आदि विदेशी विनिमय है।
2. **विदेशी विनिमय दर के रूप मे**: विदेशी विनिमय का अभिप्राय विदेशी विनिमय दर से भी लिया जाता है अर्थात् जिस दर पर एक देश की मुद्रा किसी दूसरे देश की मुद्रा में परिवर्तित की जाती है। **सेयर्स** के शब्दों में, ***"चलन मुद्राओं के परस्पर मूल्यों को ही विदेशी विनिमय दर कहा जाता है।"*** इसलिए जब यह कहा जाता है कि विनिमय दर किसी देश के अनुकूल अथवा प्रतिकूल है, तब इसका अभिप्राय विदेशी विनिमय दर से होता है।

3. इसके अतिरिक्त, विदेशी विनिमय का प्रयोग कभी-कभी उन सुविधाओं के लिए भी किया जाता है जो विदेशी भुगतानों से सम्बन्धित होती हैं।

(ब) विस्तृत अर्थ मे: विदेशी विनिमय का प्रयोग उन सभी क्रियाओं एवं विधियों से लिया जाता है जिनके द्वारा दो या दो से अधिक देशों के व्यापारी अपने व्यावसायिक दायित्वों का भुगतान करते हैं। इस प्रकार विदेशी विनिमय के अन्तर्गत वे सभी संस्थायें जो विदेशी भुगतान करती हैं और वह दर जिस पर विदेशी भुगतान किए जाते हैं, सम्मिलित होती हैं। विदेशी विनिमय को विस्तृत अर्थों में स्पष्ट करते हुए एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में लिखा है कि "***विदेशी विनिमय वह प्रणाली है जिसके द्वारा व्यापारिक राष्ट्र पारस्परिक ऋणों का भुगतान करते हैं।***" इस प्रकार ऐसे साधन जिनका उपयोग अंतर्राष्ट्रीय भुगतान में किया जाता है, विदेशी विनिमय कहलाता है।

1.3.2 विदेशी विनिमय के तरीके

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की दशा में आयातो एवं निर्यातों के भुगतान हेतु देशों को विदेशी विनिमय की आवश्यकता होती है। अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों हेतु देशों द्वरा निम्नलिखित तरीकों का प्रयोग किया जा सकता है –

1. विदेशी विनिमय बिल: यह एक लिखित आदेश अथवा प्रार्थना है जिसके अन्तर्गत वस्तु बेचने वाला क्रय करने वाले को विनिमय पत्र लिखता है, जिसमें यह आदेश होता है कि वह एक निश्चित अवधि के अन्दर उसमें अंकित राशि का भुगतान लेनदार को अथवा उसके द्वारा नियुक्त व्यक्ति को करा देगा। इस बिल के स्वीकार हो जाने पर यह विनिमय पत्र अपने ही देश में उन व्यक्तियों को बेच दिया जाता है जिन्हें आयात करने वाले देश को भुगतान करना है तथा यह विनिमय पत्र विदेशों में उन व्यक्तियों को भेज दिए जाते हैं जिन्हें वे भुगतान करना चाहते हैं। इन लेनदारों के द्वारा विनिमय पत्र की यह राशि उस व्यक्ति से वसूल कर ली जाती है जिन्होंने शुरू में इस वस्तु का आयात करने के कारण स्वीकार किया था।

2. तार द्वारा स्थानान्तरण: इसके अन्तर्गत एक देश के बैंक के द्वारा विदेश में स्थित अपनी शाखा को तार द्वारा सूचना दी जाती है कि एक निश्चित राशि का भुगतान व्यक्ति विशेष को कर दिया जाये। इस प्रकार यह एक देश से दूसरे देश को विदेशी विनिमय स्थानान्तरण का महत्त्वपूर्ण एवं त्वरित्र (fast) तरीका है।

3. बैंक ड्राफ्ट: बैंक ड्राफ्ट एवं बैंक द्वारा अपनी शाखा अथवा अन्य बैंक जिन के साथ इनका लेन-देन रहता है, को लिखा गया आदेश है। जिसमें ड्राफ्ट में लिखित राशि का भुगतान जो ड्राफ्ट जारी करने वाले बैंक ने पहले ही प्राप्त कर ली है, वाहक द्वारा मांगे जाने पर कर दिया जाएगा। इसी प्रकार अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों में भी अंतर्राष्ट्रीय बैंकों अथवा विदेशी विनिमय बैंकों द्वारा ड्राफ्ट का प्रयोग किया जाता है। जिसमें ऋणी अर्थात आयातकर्ता स्वयं अपने बैंकों से बैंक ड्राफ्ट बना सकता है। जो ऋणदाता को स्थानान्तरित कर दिया जाता है और वह अपने देश के बैंक अथवा शाखा से अंकित राशि प्राप्त कर सकता है।

4. साख-पत्र: इसमें साख पत्र जारी करने वाला बैंक किसी व्यक्ति को एक निश्चित राशि चेक अथवा बिल द्वारा एक निश्चित अवधि में निकालने का अधिकार देता है। इस पत्र के आधार पर जो राशि आयातकर्ता बैंक से प्राप्त करता है, निर्यातकर्ता उतनी ही राशि का निर्यात कर देता है। इसमें भुगतानकी गारण्टी साख पत्र जारी

करने वाले बैंक की होती है। साख पत्र आयातकर्ता की दृष्टि से खण्डन करने योग्य तथा खण्डन न करने योग्य हो सकता है। यद्यपि निर्यातकर्ता खण्डन न करने योग्य साख पत्र को प्राथमिकता देता है।

उपर्युक्त तरीकों के अतिरिक्त विदेशी विनिमय का भुगतान घरेलू करेन्सी, स्वर्ण, यात्री चेक तथा अंतर्राष्ट्रीय मनी आर्डर आदि के द्वारा भी किया जा सकता है।

1.3.3. विदेशी विनिमय की समस्या के कारण

अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों में विदेशी विनिमय की समस्या के उत्पन्न होने के मुख्य कारण इस प्रकार हैं –

1. **विभिन्न मुद्राये**: अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न देशों की मुद्राये नाम, आकार, मूल्य आदि में भिन्न-भिन्न होती हैं। इसके अतिरिक्त इन मुद्राओं की निर्गमन व्यवस्था भी अलग-अलग सिद्धान्तों एवं विधियों पर आधारित होती है। मुद्राओं की इन विभिन्नताओं के कारण एक देश की मुद्रा अन्य देशों में विनिमय के माध्यम और मूल्य मापक के रूप में मान्य नहीं होती है। अतः एक देश की मुद्रा अन्य देशों में मान्य नहीं होती अथवा अंतर्राष्ट्रीय अस्वीकृत के कारण विदेशी विनिमय की समस्या उत्पन्न हो जाती है।
2. **भुगतानों में प्रयुक्त साधन की समस्या**: सामान्यतया एक देश दूसरे देश की 'सुलभ मुद्रा' को अंतर्राष्ट्रीय भुगतान हेतु स्वीकार नहीं करता। ऐसी स्थिति में भुगतान वस्तु अथवा स्वर्ण के रूप में स्वीकार किए जाते हैं। इन दोनों स्थितियों में वस्तु विनिमय प्रणाली का प्रचलन और स्वर्ण का अभाव वा उसके प्रति आकर्षण अंतर्राष्ट्रीय भुगतान प्रणाली को बहुपक्षीय और दीर्घकालिक बनाये रखने में बाधा उत्पन्न करता है। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों हेतु सर्वस्वीकृत साधन के अभाव में विदेशी मुद्राओं का ही प्रयोग करना पड़ता है जिससे विदेशी विनिमय की समस्या उत्पन्न होती है।
3. **स्थायी विनिमय दरों का अभाव**: विभिन्न देशों की मुद्राओं की विनिमय दरें निरन्तर बदलती रहती है जिसके कारण अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों के लिए विदेशी विनिमय के सौदे स्वतन्त्र व निर्बाध रूप से नहीं हो पाते हैं तथा आयात-निर्यात व्यवहार जोखिमपूर्ण हो जाता है। अतः विनिमय दरों में स्थायित्व के अभाव के कारण विदेशी विनिमय की समस्या उत्पन्न होती है।
4. **मुद्राओं की मांग और पूर्ति में असन्तुलन**: अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कुछ मुद्राओं (दुर्लभ मुद्रायें) की मांग उनकी पूर्ति से कहीं अधिक होती है जबकि अल्पविकसित देशों की मुद्राओं (सुलभ मुद्रा) की पूर्ति उनकी मांग से अधिक होती है। इससे न केवल विदेशी समस्या उत्पन्न होती है बल्कि दुर्लभ मुद्राओं का मांग आधिक्य इसे अधिक दुष्कर बना देता है।
5. **भुगतान हस्तान्तरण की समस्या**: विदेशी विनिमय अंतर्राष्ट्रीय भुगतान के साधन के रूप में प्रयुक्त किए जाने के कारण सरकारी नियंत्रण के अधीन होता है। अतः इसमें अनेक औपचारिकतायें एवं जटिलतायें होती हैं। यद्यपि अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों का हस्तान्तरण बैंकों के माध्यम से किया जाता है तथापि इसमें अनेक समस्यायें एवं जोखिम सन्निहित होते हैं।

1.4 विदेशी विनिमय दर

1.4.1 विदेशी विनिमय दर का अर्थ

सामान्यतया दो देशों की मुद्राओं के विनिमिय अनुपात को विदेशी विनिमय दर अथवा विनिमय दर कहा जाता है। वास्तव में जिस दर पर एक देश की मुद्रा दूसरे देश की मुद्रा में परिवर्तित की जाती है उसे ही विनिमय दर कहते हैं अर्थात् यह दर एक करेंसी में दूसरी करेंसी की कीमत होती है। इसे विदेशी करेंसी की एक इकाई की कीमत को घरेलू करेंसी के रूप में व्यक्त किया जाता है।

इस प्रकार भारतीय दृष्टिकोण से भारतीय रूपये तथा संयुक्त राज्य अमरीका के डालर के बीच विनिमय दर 50 रूपया = 1 डालर के रूप में व्यक्त की जा सकती है। इसके विपरीत संयुक्त राज्य अमरीका के दृष्टिकोण से उपर्युक्त विनिमय दर को डालर 0.02 = 1 रूपया के रूप में व्यक्त किया जाएगा। उल्लेखनीय है कि विभिन्न देशों में अलग-अलग मुद्रायें चलन में होती हैं इसलिए एक देश की मुद्रा की विनिमय दर भिन्न-भिन्न मुद्राओं के सन्दर्भ में स्वाभाविक रूप से भिन्न-भिन्न होगी।

1.4.2 विदेशी विनिमय दर में परिवर्तन के कारण

दीर्घकालीन अथवा सामान्य विनिमय दर की प्रवृत्ति स्थिरता की ओर होती है किन्तु अल्पकालीन या बाजार दर या वास्तविक विनिमय दर में परिवर्तन होते रहते हैं। विनिमय दरों में उच्चावचनों के लिए मुख्यतया विदेशी विनिमय की मांग एवं पूर्ति की शक्तियाँ ही उत्तरदायी होती हैं किन्तु इसके अतिरिक्त अन्य तत्व भी विनिमय दरों में उच्चावचन लाते हैं जिनका विवरण निम्नवत् हैः-

1. **आयातों एवं निर्यातों में परिवर्तन**: यदि किसी देश के निर्यात से आयात बढ़ जाते हैं तो विदेशी मुद्रा की मांग उसकी पूर्ति की अपेक्षा अधिक हो जाती है और विनिमय दर उस देश के प्रतिकूल हो जाती हैं। इसके विपरीत यदि देश के आयात निर्यातों की तुलना में कम हैं तो विदेशी विनिमय की मांग पूर्ति की तुलना में कम होगी। अतः विनिमय दर देश के पक्ष में होगी।
2. **कीमतों में परिवर्तन**: विभिन्न देशों के सापेक्ष कीमत-स्तरों में परिवर्तन विनिमय दर में परिवर्तन लाते हैं। यदि घरेलू कीमत स्तर में वृद्धि विदेशी कीमत-स्तर की तुलना में अधिक होती है तो निर्यात महंगे होने के कारण घट जाते हैं जबकि आयात सापेक्षिक रूप से सस्ते होने के कारण बढ़ जाते हैं। परिणामतः भुगतान संतुलन में घाटा उत्पन्न हो जाता है और देश की विनिमय दर में कमी हो जाती है।
3. **ब्याज-दरों में परिवर्तन**: यदि देश में ब्याज दरें विदेशों की तुलना में सापेक्षतः अधिक होती है तो विदेशों से पूँजी का अन्तर्प्रवाह होता है और घरेलू करेंसी की विनिमय दर का मूल्य विदेश करेंसी का तुलना में बढ़ जाता है। इसके विपरीत यदि घरेलू ब्याज दरें सापेक्षतः कम होती हैं तो विनिमय दर का मूल्य घट जायेगा।
4. **बैंकिंग नीति का प्रभाव**: यदि व्यापारिक बैंक, विदेशी बैंकों के नाम बहुत अधिक राशि के ड्राफ्ट तथा साख पत्र जारी कर देते हैं तो विदेशी करेंसी की मांग बढ़ जाती है और विनिमय दर प्रतिकूल हो जायेगी। इसके अतिरिक्त अन्य देशों की तुलना में घरेलू अर्थव्यवस्था में बैंक दर बढ़ जाती है तो अधिक ब्याज दर

अर्जित करने के लिए विदेशों से देश में अधिक कोष आएंगे। इन परिस्थितियों में घरेलू करेंसी की मांग बढ़ने के कारण विनिमय दर देश के अनुकूल हो जाएगी। यदि बैंक दर गिरेगी तो विनिमय दर देश के प्रतिकूल हो जाएगी।

5. **पूँजी गतिया**: किसी देश में पूँजी का प्रवाह पूँजी आयात करने वाले देश की करेंसी का मूल्य बढ़ा देता है और पूँजी निर्यातकर्ता देश की करेंसी का मूल्य घटा देता है। अतः विनिमय दर पूँजी आयातकर्ता देश के अनुकूल तथा पूँजी निर्यातकर्ता देश के प्रतिकूल हो जाती है।
6. **सट्टे का प्रभाव**: विदेशी विनिमय बाजार में सटोरियों द्वारा जब किसी मुद्रा की मांग अधिक की जाती है तब उस मुद्रा का वाह्य मूल्य बढ़ जाता है। इसके विपरीत, सटोरियों द्वारा किसी मुद्रा की अत्यधिक बिकवाली करने पर मुद्रा पूर्ति बढ़ने से उसका मूल्य घट जाता है।
7. **औद्योगिक कारण**: कोई देश जब औद्योगिक प्रगति की और बढ़ता है तब ऐसे देश में अधिक नाम अर्जित करने के उद्देश्य से विदेशी पूँजी का अधिक विनियोजन होने लगता है। जिससे देश की मुद्रा की मांग अधिक बढ़ने के कारण विनिमय दर देश के अनुकूल हो जाती है। इसके विपरीत औद्योगिक अवनति की दशा में विदेशी पूँजी का देश से पलायन होने लगता है और विनिमय दर देश की प्रतिकूल हो जाती है।
8. **स्टॉक एक्सचेंज की क्रियाये**: यदि स्टॉक एक्सचेंज इस बात में सहायता करते हैं कि विदेशियों को शेयर, डिबेंचर व प्रतिभूतियाँ आदि बेची जाये तो घरेलू करेंसी की मांग बढ़ने के कारण विनिमय दर बढ़ जाएगी किन्तु इसके विपरीत स्थिति में विनिमय दर घट जाएगी।
9. **विनिमय नियंत्रण**: विनिमय नियंत्रण और संरक्षण सम्बन्धी नीतियाँ आयातों को हतोत्साहित करती है जिससे विदेशी विनिमय की माँग कम हो जाती है और घरेलू विनिमय दर विदेशी करेंसी की तुलना में बढ़ जाती है।
10. **संरचनात्मक परिवर्तन**: किसी देश में संरचनात्मक परिवर्तन जैसे नवप्रवर्तन व प्रौद्योगिकीय परिवर्तन आदि, वस्तुओं की मांग के साथ-साथ लागत संरचनात्मक ढाँचे को भी प्रभावित करते हैं। यह संरचनात्मक परिवर्तन घरेलू वस्तुओं की विदेशी माँग बढ़ाते हैं जिससे देश के निर्यात बढ़ते हैं। परिणामस्वरुप घरेलू करेंसी की माँग बढ़ती है उसका मूल्य बढ़ता है और देश की विनिमय दर बढ़ जाती है।
11. **राजनीतिक परिस्थितिया**: यदि देश में राजनीयिक स्थिरता है और सरकार बहुमत में होने के साथ दक्ष है तो विदेशी निवेशकों द्वारा देश में अपने कोषों का निवेश किया जाएगा जिससे देश में पूँजी का प्रवाह होने से घरेलू करेंसी की माँग बढ़ेगी और विनिमय दर देश के अनुकूल हो जाएगी। इसके विपरीत अस्थिर, कमजोर एवं भ्रष्ट सरकार की स्थिति में पूँजी का देश से पलायन होगा और विनिमय दर देश के प्रतिकूल होगी।

1.5 विदेशी विनिमय दर निर्धारण के सिद्धान्त

1.5.1 विदेशी विनिमय दर का निर्धारण

विदेशी विनिमय बाजार में विनिमय दर का निर्धारण ठीक उसी प्रकार होता है जिस प्रकार आन्तरिक बाजार में वस्तु की माँग और पूर्ति फलनों के आधार पर इसके मूल्य का निर्धारण किया जाता है। यद्यपि विनिमय दर निर्धारण की सैद्धान्तिक व्यवस्था प्रायः स्वतंत्र विनिमय बाजार के सन्दर्भ में की जाती है किन्तु प्रत्येक देश में विनिमय बाजार पूर्ण अथवा आँशिक रूप से सरकारी नियंत्रण में होता है। अतः वास्तविक रूप में विनिमय दर का निर्धारण सरकारी नीति पर आधारित होता है। इसके बावजूद विदेशी विनिमय बाजार में विनिमय दर के निर्धारण में विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः साम्य विनिमय दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ विदेशी विनिमय की माँग विदेशी विनिमय की पूर्ति के बराबर होती है। इसे सामान्य विनिमय दर भी कहा जाता है। बाजार विनिमय दरें (तात्कालिक विनिमय दर) में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं किन्तु यह परिवर्तन कुछ सीमाओं के अन्तर्गत ही होते हैं तथा सामान्य विनिमय दर पर पहुँचने की प्रवृत्ति रखते हैं। विनिमय दरों में समय-समय पर परिवार्तन का कारण विभिन्न देशों की मुद्राओं की माँग-पूर्ति में परिवर्तन होना है। अतः विनिमय दर निर्धारण हेतु विदेशी विनिमय की माँग व पूर्ति का विश्लेषण करना आवश्यक है।

विदेशी विनिमय की माँग: विदेशी विनिमय की माँग व्युत्पन्न मांग होती है जो प्रायः व्यावसायिक व्यवहार, वित्तीय व्यवहार तथा सट्टे के व्यवहार के लिए की जाती है। व्यवसायिक व्यवहार के अन्तर्गत वस्तुओं का आयात, विदेशों से ली गई सेवाओं का भुगतान, पर्यटकों द्वारा विदेशों में किया गया व्यय, भारतीय प्रतिभूतियों पर विदेशियों को लाभांश का भुगतान तथा अन्य व्यवहार सम्मिलित किए जाते हैं। वित्तीय व्यवहार के अन्तर्गत अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन विनियोजन सम्मिलित होते हैं। जब देश के नागरिक विदेशी प्रतिभूतियों में विनियोजन करते हैं अथवा विदेशियों के ऋण चुकाते हैं तब उनके द्वारा विदेशी विनिमय की मांग की जाती है। इसी प्रकार सट्टा व्यवहारों के अन्तर्गत विदेशी मुद्राओं की विनिमय दरों में परिवर्तन से लाभ कमाने हेतु समय विशेष पर विदेशी मुद्रा की माँग की जाती है।

विदेशी विनिमय की माँग वक्र बायें से दायें नीचे की ओर ढालू होता है और इसका रूप आयात की माँग की लोच पर निर्भर करेगा। यदि आयातित सामग्री आवश्यक वस्तुयें अथवा कच्चा माल है तब आयात सामग्री की माँग की लोच कम होगी और आयातित मात्रा कीमत परिवर्तन के प्रति बेलोच होगी। इसके विपरीत यदि आयातित सामग्री विलासिता की वस्तुएँ हैं और जिनके स्थानापन्न उपलब्ध हैं तब आयात की मांग-लोच प्रायः ऊँची होगी।

चित्र 1.1 में अमरीकी डालर का माँग वक्र DD के द्वारा प्रदर्शित किया गया है जो भारत में अमरीकी वस्तुओं एवं सेवाओं की आयात मांग को व्यक्त करता है। यदि अमरीकी डालर की विनिमय दर रूपये की तुलना में सापेक्षिक रूप से नीची है तब भारतीय आयातकर्ता अमरीकी वस्तुओं व सेवाओं की अधिक मांग करने हेतु प्रेरित होंगे अर्थात् विदेशी विनिमय (अमरीकी डालर) की माँग अधिक की जाएगी। इसके विपरीत स्थिति में विदेशी विनिमय की माँग कम की जाएगी।

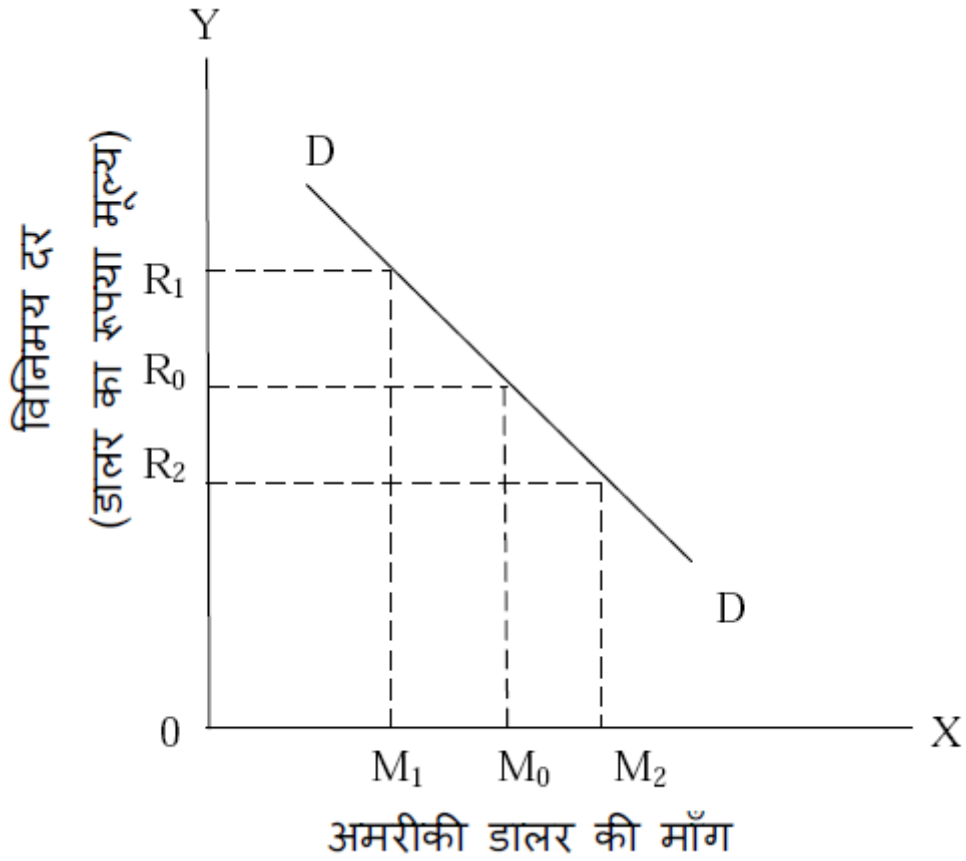

चित्र 1.1

उपर्युक्त चित्र 1.1 से स्पष्ट है कि जब विनिमय दर R_0 है तब अमरीकी डालर की माँग OM_0 है। यदि विनिमय दर नीची अर्थात् R_2 हो जाती है तब अमरीकी डालर की माँग बढ़कर OM_2 हो जाएगी। इसके विपरीत, यदि विनिमय दर बढ़कर R_1 हो जाती है तब अमरीकी डालर की माँग घटकर OM_1 हो जाएगी।

विदेशी विनिमय की पूर्ति विदेशी विनिमय (अमरीकी डालर) की पूर्ति घरेलू देश (भारत) द्वारा विदेश (संयुक्त राज्य अमरीका) को वस्तुओं एवं सेवाओं की पूर्ति पर निर्भर करेगी। विदेशी विनिमय की पूर्ति में वृद्धि अथवा कमी भारत द्वारा संयुक्त राज्य अमरीका को किए जाने वाले वस्तुओं एवं सेवाओं के निर्यात की मात्रा में वृद्धि अथवा कमी पर निर्भर करेगी। विदेशी विनिमय की पूर्ति भी व्यवसायिक व्यवहारों, वित्तीय व्यवहारों एवं सट्टे के व्यवहारों से होती है। व्यवसायिक व्यवहारों के अन्तर्गत वस्तुओं एवं सेवाओं का निर्यात, विदेशी पर्यटकों द्वारा देश में व्यय, विदेशों में भारतीय प्रतिभूतियों पर आय तथा अन्य मदें जिनके द्वारा भारतीय नागरिकों को भुगतान आदि प्राप्त है, को सम्मिलित किया जाता है। वित्तीय व्यवहारों में विदेशियों द्वारा भारतीय दीर्घकालीन प्रतिभूतियों में विनियोग तथा अल्पकालीन विनियोग सम्मिलित होते हैं। इसी प्रकार सट्टे के व्यवहारों में विदेशी विनिमय की वह समस्त बिक्री सम्मिलित हैं जिससे भविष्य में विनिमय दर घटने पर कम दर पर क्रय करके लाभ अर्जित किया जा सके।

चित्र 1.2 में विदेशी विनिमय का पूर्ति वक्र SS प्रदर्शित किया गया है जो बाएं से दाएं ऊपर की ओर उठता हुआ है। यह प्रदर्शित करता है कि यदि डालर के विनिमय मूल्य रूपये की तुलना में कम है तो संयुक्त राज्य

अमरीका को निर्यात हतोत्साहित होंगे और निम्न विनिमय दर पर डालर (विदेशी विनिमय) की कम मात्रा उपलब्ध होगी। इसके विपरीत, यदि डालर का विनिमय मूल्य रूपये की तुलना में अधिक है तब भारतीय निर्यातक अमरीका को निर्यात हेतु प्रोत्साहित होंगे और विदेशी विनिमय (डालर) की पूर्ति ऊँची विनिमय दर पर अधिक होगी। इस प्रकार विदेशी विनिमय की पूर्ति और विनिमय दर में सीधा सम्बन्ध होता है।

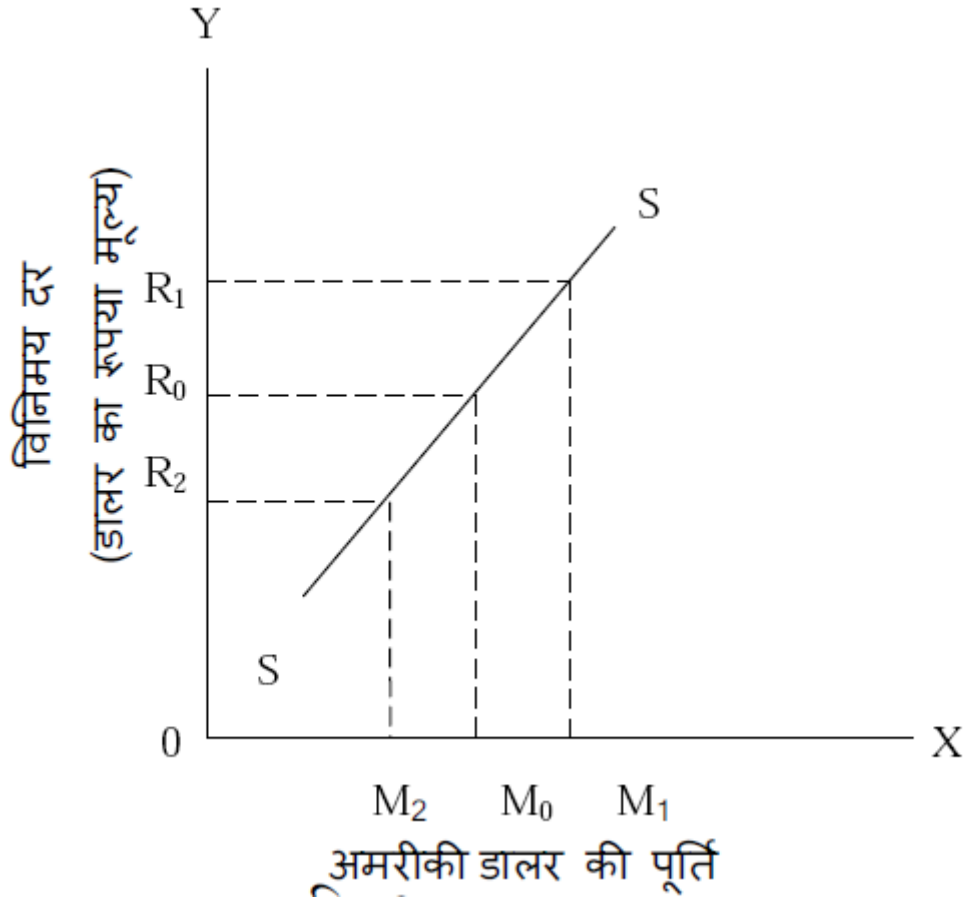

चित्र 1.2

उपर्युक्त चित्र 1.2 से स्पष्ट है कि जब विनिमय दर R_0 है तो विदेशी विनिमय की पूर्ति OM_0 है। किन्तु जब विनिमय दर बढ़कर R_1 हो जाती है तब विदेशी विनिमय की पूर्ति बढ़कर OM_1 हो जाती है क्योंकि भारतीय निर्यातक अमरीका को अधिक निर्यात करने के लिए प्रोत्साहित होते हैं। इसके विपरीत, जब विनिमय दर घटकर R_2 हो जाती है तब विदेशी विनिमय की पूर्ति कम होकर OM_2 रह जाती है। उल्लेखनीय है कि विदेशी विनिमय के पूर्ति वक्र का रूप पूर्ति वक्र की लोच निर्धारित करेगी।

संतुलन विनिमय दरः संतुलन विदेशी विनिमय दर का निर्धारण विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति द्वारा होता है। विदेशी मुद्रा का माँग वक्र (DD) विदेशी मुद्रा के पूर्ति वक्र (SS) को जिस बिन्दु पर काटता है वहाँ विदेशी मुद्रा की माँग और पूर्ति दोनों एक दूसरे के बराबर (OM) होती है और संतुलन विनिमय दर (OR) निर्धारित हो जाती है। संतुलन विनिमय दर में उतार-चढ़ाव विदेशी विनिमय की मांग और पूर्ति में परिवर्तन के कारण होते हैं।

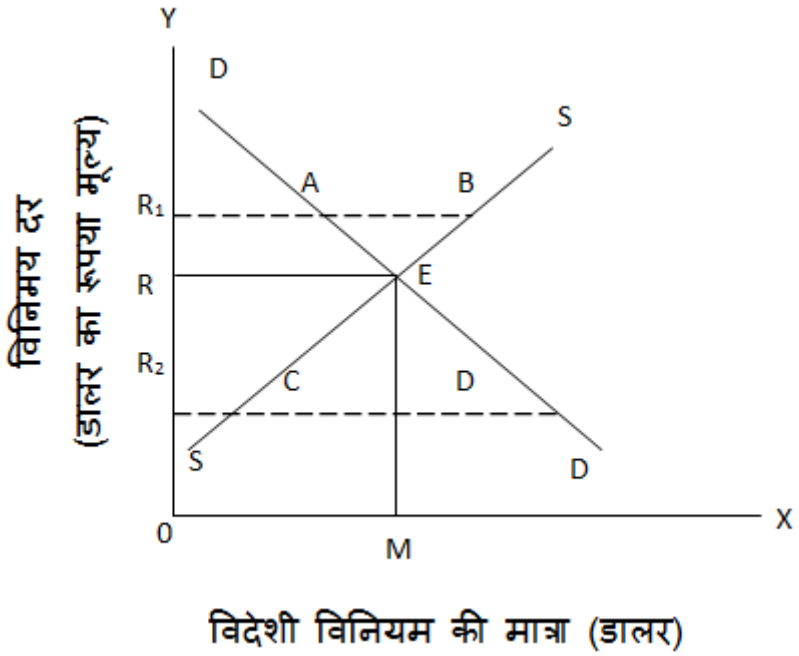

चित्र 1.3

उपर्युक्त चित्र-3 से स्पष्ट है कि संतुलन विनिमय दर OR पर विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति दोनों OM के बराबर है। विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति के स्थायी साम्य द्वारा निर्धारित विनिमय दर को विनिमय की समता दर भी कहते हैं। किन्तु जो विनिमय दर विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति के अस्थायी साम्य द्वारा निर्धारित होती है उसे बाजार विनिमय दर कहा जाता है। चित्र 3 में विनिमय दर OR1 जहाँ विदेशी विनिमय की मांग उसकी पूर्ति से कम है तथा OR2 जहाँ विदेशी विनिमय की मांग उसकी पूर्ति से क्रमशः कम व अधिक है, बाजार विनिमय दर को व्यक्त करती है। संतुलन विनिमय दर तथा बाजार विनिमय दर में अन्तर यह है कि संतुलन विनिमय दर दीर्घकालीन विनिमय दर होती है और इसमें परिवर्तन नहीं होते हैं जबकि बाजार विनिमय दर अल्पकालीन विनिमय दर होती है और इसमें निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। किन्तु दीर्घकालीन में इसकी प्रवृत्ति संतुलन अथवा साम्य विनिमय दर के बराबर होने की होती है।

1.5.2 टंकण मूल्य समता सिद्धान्त

जब देशों में स्वर्णमान प्रचलन में था तब देशों की प्रामाणिक मुद्राएं स्वर्ण की बनी होती थी अथवा स्वर्ण में संपरिवर्तनीय होती थी। ऐसी स्थिति में दो देशों की मुद्राओं के मध्य विनिमय दर का निर्धारण टकसाली समता सिद्धान्त के आधार पर किया जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार विनिमय दर दोनों देशों की मुद्राओं के प्रामाणिक सिक्कों को विशुद्ध स्वर्ण की समानता स्थापित करके ज्ञात किया जाता है और इसे टकसाल दर समता अथवा विनिमय की टकसाल दर समता कहा जाता है।

उदाहरण के लिए, प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व इंग्लैंड एवं अमरीका में स्वर्णमान प्रचलन में था और पौण्ड में 113.0016 ग्रेन स्टैण्डर्ड स्वर्ण जबकि डॉलर में 23.2200 ग्रेन स्टैण्डर्ड स्वर्ण विद्यमान था। अतः इन दोनों करेंसी के मध्य टकसाल समता दर 113.0016/23.2200 अर्थात पौण्ड 1 = 4.8665 डॉलर के रूप में व्यक्त की जा

सकती है। यद्यपि स्वर्णमान के अन्तर्गत विनिमय दर करेंसी के स्वर्ण मूल्य अनुपात के बराबर होती है किन्तु इसमें परिवर्तन स्वर्ण बिन्दुओं के बीच हो सकता है जो कि बीमा, परिवहन, पैंकिंग आदि की लागत पर निर्भर करेगा। इसलिए स्वर्ण बिन्दुओं पर स्वर्ण निर्यात और आयात अनुसूची पूर्णतया लोचदार हो जाती है।

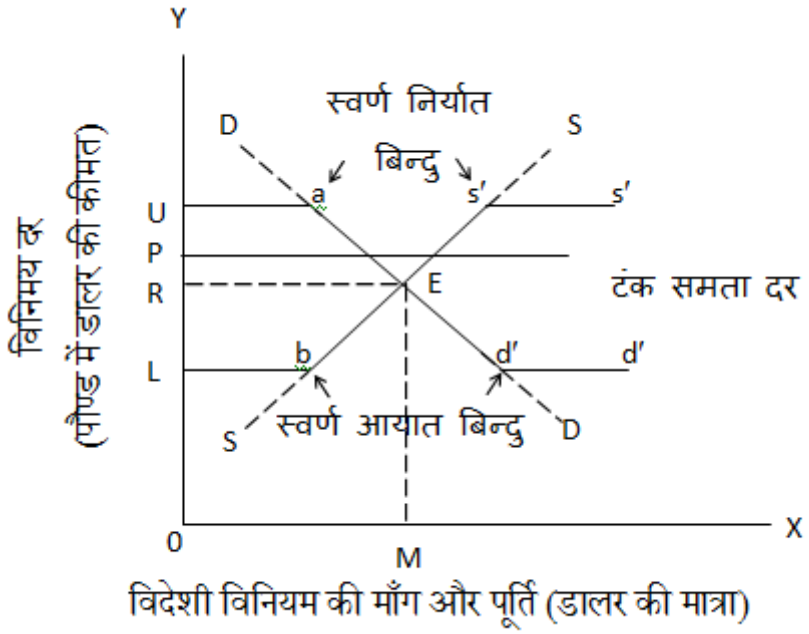

चित्र 1.4

चित्र 1.4 से स्पष्ट है कि डालर एवं पौण्ड केमध्य संतुलन विनिमय दर OR है। क्षैतिज रेखा P टंकण समता दर को व्यक्त करती है। U तथा L क्षैतिज रेखायें क्रमशः स्वर्ण निर्यात बिन्दु या उच्च सीमा (1 पौण्ड = 4.8665 डालर) तथा स्वर्ण आयात बिन्दु या निम्न सीमा को प्रदर्शित करती हैं। यदि 4.8665 डालर मूल्य के स्वर्ण को निर्यात करने की लागत 0.04 डालर आती है तो कोई भी अमरीकी प्रत्येक पौण्ड के लिए 4.9065डालर से अधिक देने हेतु तैयार नहीं होगा क्योंकि वे पौण्ड की कोई भी मात्रा 4.9065 डालर मूल्य के स्वर्ण को निर्यात करके प्राप्त कर सकते हैं। अतएव ऊपरी बिन्दु पर पूर्ति अनुसूची पूर्णतया लोचदार हो जाती है। इसी प्रकार विनिमय दर पौण्ड 1 = 4.8265 डालर की निचली सीमा की स्थिति में अमरीकी नागरिकों द्वारा पौण्ड की असीमित मांग की जाएगी। यदि विनिमय दर निचली सीमा से नीचे चली जाती है तो अमरीकी नागरिक इंग्लैण्ड से स्वर्ण के आयात को प्राथमिकता देंगे।

यह सिद्धान्त इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह स्पष्ट करता है कि वास्तविक विनिमय दर सामान्य विनिमय दर से क्यों अलग होती है और इसमें उच्चावचन की उच्चतम एवं निम्नतम सीमायें क्या हैं। परन्तु जैसा आप जानते है कि वर्तमान समय में यह सिद्धान्त अनुपयोगी हो गया है क्योंकि किसी भी देश में स्वर्णमान प्रचलन में नहीं है और प्रायः सभी देशों में अपरिवर्तनीय पत्र मुद्रा चलन में है।

1.5.3. क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त

प्रथम विश्वयुद्ध (1914-18) के दौरान स्वर्णमान के समाप्त होने के कारण विनिमय दर में परिवर्तन स्वर्ण बिन्दुओं से परे होने लगे और अपरिवर्तनशील पत्र मुद्राओं के बीच सोम्य विनिमय दर का निर्धारण टंकण समता सिद्धान्त द्वारा सम्भव नहीं था। अतः क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त का विचार सर्वप्रथम **जॉन व्हीटले** के द्वारा किया गया। बाद में स्वीडिश अर्थशास्त्री **गुस्ताव कैसल** को इस सिद्धान्त की वैज्ञानिक व्याख्या करने का श्रेय प्राप्त है।

क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त के अनुसार दो अपरिवर्तनीय पत्र मुद्राओं के बीच विनिमय दर, उनकी क्रयशक्तियों की समता निर्धारित करती है। दूसरे शब्दों में, दो मुद्राओं के बीच विनिमय दर आन्तरिक क्रय-शक्ति के भागफल पर निर्भर करती है। क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त के दो दृष्टिकोण हैं –

1. **निरपेक्ष दृष्टिकोण**: इस दृष्टिकोण के अनुसार क्रय-शक्ति समता द्वारा निर्धारित विनिमय दर देशों की राष्ट्रीय मुद्रा इकाइयों के बीच आन्तरिक क्रय शक्ति के अनुपात को व्यक्त करती है। उदारहणार्थ, यदि 10 प्रतिनिधि वस्तुओं का समूह भारत में रू. 500 में खरीदा जा सकता है और उन्हीं वस्तुओं का समूह अमरीका में डालर 10 में खरीदा जा सकता है तब भारत व अमरीका के बीच विनिमय दर को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है –

रूपये 500 = डालर 10

1 रूपया = 0.02 डालर

अथवा 1 डालर = 50 रूपये

इस प्रकार देश A तथा B की करेंसी के बीच विनिमय दर की माप निम्नलिखित रूप से किया जाना सम्भव है –

$$\textbf{विनिमय दर} = \frac{\boldsymbol{A}\text{ करेंसी की इकाइयाँ}}{\boldsymbol{B}\text{ करेंसी की इकाइयाँ}} \times \frac{\boldsymbol{A}\text{ की आतंरिक क्रय शक्ति}}{\boldsymbol{B}\text{ की आतंरिक क्रय शक्ति}}$$

चूँकि प्रत्येक करेंसी की आन्तरिक क्रय-शक्ति सम्बन्धित देश के सामान्य कीमत-सूचकांक का व्युत्क्रम होती है। अतः उपर्युक्त सूत्र को इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है-

$$\textbf{विनिमय दर} = \frac{\boldsymbol{A}\text{ करेंसी की इकाइयाँ}}{\boldsymbol{B}\text{ करेंसी की इकाइयाँ}} \times \frac{\boldsymbol{B}\text{देश का कीमत सुचाकांक}}{\boldsymbol{A}\text{ देश का कीमत सुचाकांक}}$$

उपर्युक्त दृष्टिकोण विनिमय दर विर्धारण हेतु निरपेक्ष आन्तरिक कीमत स्तर की माप करता है जबकि मुद्रा की इस प्रकार निरपेक्ष माप नहीं की जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक देश के उत्पाद एवं उनकी माँग गुणवत्ता एवं प्रकार में एक समान नहीं होने के साथ अन्य अन्तर भी होते हैं जिनके कारण भी निरपेक्ष माप नहीं की जा सकती है।

2. **सापेक्ष दृष्टिकोण**: यह दृष्टिकोण दो देशों की करेंसियों के मध्य साम्य विनिमय दर में परिवरितन की व्याख्या करती है। इस दृष्टिकोण के अनुसार वर्तमान अवधि में विनिमय दर का निर्धारण आधार वर्ष में संतुलन विनिमय दर और एक देश में वर्तमान व आधार वर्ष में कीमत सूचकांक अनुपात का दूसरे देश के वर्तमान व आधार वर्ष में कीमत सूचकांक के अनुपात के द्वारा निर्धारित होती है। सांकेतिक रूप में,

$$\mathbf{R1} = \mathbf{R_0}\ \frac{\mathbf{P_{B1}}/\mathbf{P_{B0}}}{\mathbf{P_{A1}}/\mathbf{P_{A0}}}$$

जहाँ R1 वर्तमान अवधि में विनिमय दर, R0 आधार वर्ष अथवा मूल विनिमय दर, PA0 व PA1 देश A में क्रमशः आधार एवं वर्तमान वर्ष में कीमत सूचकांक तथा P_{B0} व P_{B1} क्रमशः B देश में आधार व वर्तमान वर्ष में कीमत सूचकांक को व्यक्त करते हैं।

उदाहरणार्थ, यदि रूपये और डॉलर के बीच मूल अथवा आधार वर्ष में विनिमय दर 1 डालर = 50 रूपये है। यदि भारत (देश B) में वर्तमान वर्ष (P_{B1}) में कीमत सूचकांक 201 और अमरीका (देश A) में वर्तमान अवधि में कीमत सूचकांक (PA1) 150 है। साथ ही दोनों देशों में आधार वर्ष में कीमत सूचकांक (अथार्त P_{B0} एवं P_{A0}) 100 था। ऐसी दशा में वर्तमान अवधि में दोनों देशों के बीच साम्य विनिमय दर निम्नलिखित प्रकार से ज्ञात की जा सकती है –

$$R1 = R_0 \frac{P_{B1}/P_{B0}}{P_{A1}/P_{A0}}$$

$$=50. \frac{201/100}{150/100}$$

$$=50 \times \frac{201}{100} \times \frac{100}{150}$$

$$=67$$

R_1: 1 डालर = 67 रूपये

यह वर्तमान साम्य विनिमय दर यह व्यक्त करती है कि अब इस अवधि में डालर का मूल्य बढ़ गया है जबकि रूपये का मूल्य घट गया है। वस्तुओं की परिवहन लागत जिसमें प्रशुल्क भी सम्मिलित है, बीमा, बैकिंग, विदेशी बाजार में विज्ञापनों पर व्यय आदि क्रय-शक्ति समता को संशोधित करेगी। इसकी ऊपरी सीमा वस्तु निर्यात बिन्दु तथा निचली सीमा वस्तु आयात बिन्दु कहलाती है। ये सीमाएँ टंकण समता सिद्धान्त के स्वर्ण बिन्दुओं की भाँति उतनी सुनिश्चित नहीं होती है जिनके बीच विनिमय दर परिवर्तित होती है।

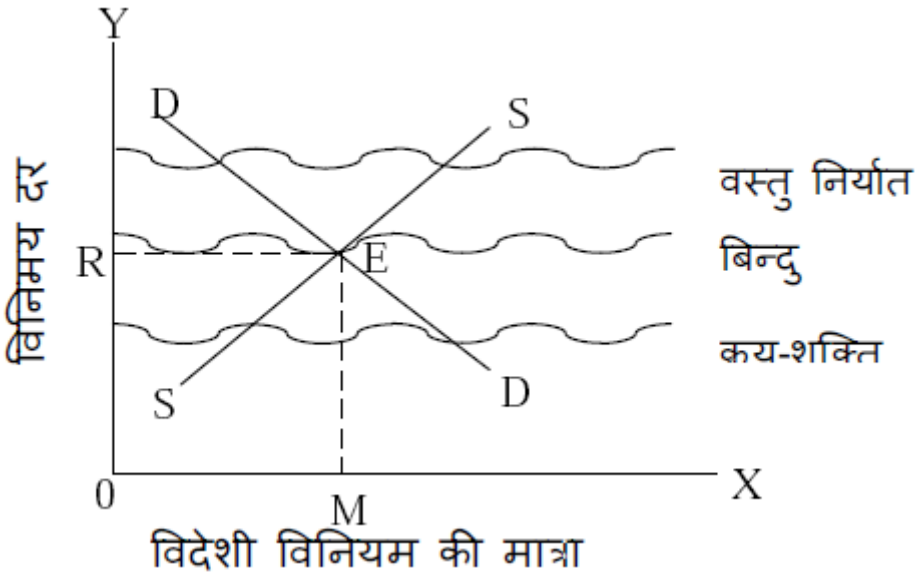

चित्र 5

चित्र 5 से स्पष्ट है कि बाजार विनिमय दर 0R विदेशी विनिमय की मांग (DD) औऱ पूर्ति (SS) वक्र के द्वारा निर्धारित है जहाँ विदेशी विनिमय की मांगी गई मात्रा तथा पूर्ति दोनों OM के बराबर है। जब विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति में परिवर्तन होता है तब बाजार विनिमय दर क्रय-शक्ति समता द्वारा निर्धारित साम्य विनिमय दर की उच्च सीमा वस्तु निर्यात बिन्दु तथा निम्न सीमा वस्तु आयात बिन्दु के बीच परिवर्तित होगी।

यह सिद्धान्त विनिमय दर निर्धारण हेतु सभी प्रकार की अपरिवर्तनीय पत्र मुद्रा प्रणालियों पर लागू होता है किन्तु इसकी सबसे बड़ी कठिनाई कीमत सूचकांकों के निर्माण तथा उन्हे तुलनीय बनाने की है। इसके अतिरिक्त यह पूँजी लेखा की मदों की उपेक्ष करता है और विनिमय दर के परिवर्तनों का कीमत-स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव को शामिल नहीं करता है।

1.5.4 भुगतान संतुलन सिद्धान्त

किसी देश की करेंसी की विनिमय दर मुक्त विनिमय दरों के अन्तर्गत उसके भुगतान संतुलन पर निर्भर करती है। दूसरे शब्दों में, विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति विनिमय दर को निर्धारित करती है। विदेशी विनिमय की माँग भुगतान-संतुलन के उधार खाते से उत्पन्न होती है जिसमें दूसरे देशों से खरीदी गई वस्तुओं तथा सेवाओं के बदले उन देशों के किए गए भुगतानों तथा ऋण व विदेश में किए गए निवेशों को सम्मिलित किया जाता है। इसी प्रकार विदेशी विनिमय की पूर्ति भुगतान-संतुलन के जमा खाते से उत्पन्न होती है जिसके अन्तर्गत देश से खरीदी गई वस्तुओं व सेवाओं के बदले में विदेशों से प्राप्त भुगतानों तथा विदेशों द्वारा लौटाए गए ऋणों व देश में किए गए निवेशों के मूल्य को सम्मिलित किया जाता है। जब जमा खाता तथा उधारखाता दोनों आपस में बराबर हो तब भुगतान-शेष संतुलन की स्थिति में होता है और विनिमय दर साम्य की दशा में होती है।

यदि जमा राशि से उधार राशि बढ़ जाए तो भुगतान-शेष प्रतिकूल होता है व विनिमय दर संतुलन विनिमय दर से नीचे चली जाती है और निर्यात बढ़ते हैं, फलस्वरुप संतुलन विनिमय दर पुनः स्थापित हो जाती है। इसके विपरीत, जब जमा राशि से उधार राशि घट जाए तब भुगतान-शेष अनुकूल होता है व विनिमय दर संतुलन दर से

ऊपर चली जाती है और निर्यात घटने लगते हैं। फलस्वरुप अनुकूल भुगतान-शेष धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है और संतुलन विनिमय दर पुनः स्थापित हो जाती है।

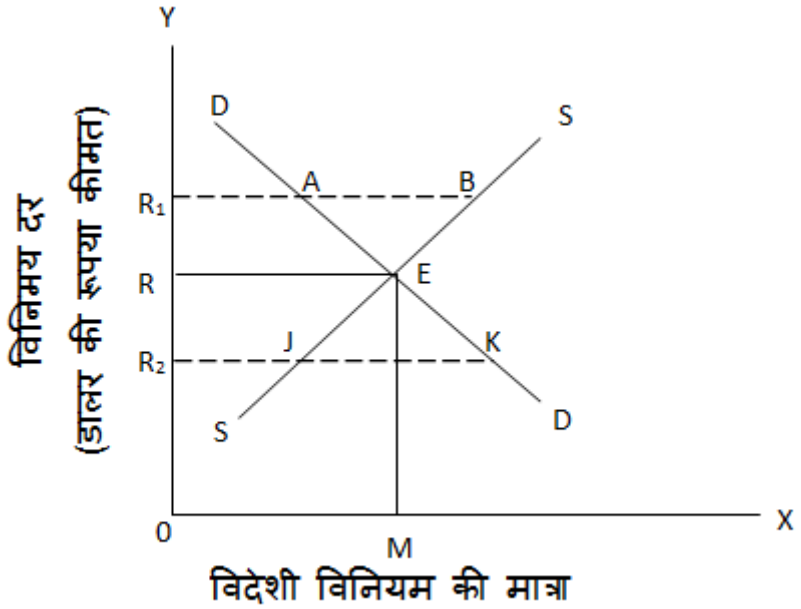

चित्र 6

चित्र 6 से स्पष्ट है कि साम्य विनिमय दर E बिन्दु पर स्थापित होती है जहाँ विदेशी विनिमय का माँग-वक्र DD विदेशी विनिमय के पूर्ति वक्र SS के बराबर है। विदेशी विनिमय की पूर्ति R_1B विदेशी विनिमय की माँग R1A की तुलना में अधिक है तब अनुकूल भुगतान संतुलन की दशा में विनिमय दर संतुलन विनिमय दर OR से बढ़कर OR_1 हो जाएगी और निर्यात घटने से अनुकूल भुगतान-शेष धीरे-धीरे समाप्त हो जाएगा। इसके विपरीत, जब विदेशी विनिमय की माँग R_2K उसकी पूर्ति R_2J से अधिक है तब प्रतिकूल भुगतान संतुलन की दशा में विनिमय दर संतुलन विनिमय दर OR से घटकर OR_2 हो जाएगी। फलस्वरुप निर्यात बढ़ने लगेगें व प्रतिकूल भुगतान-शेष धीरे-धीरे समाप्त हो जाएगा और संतुलन विनिमय दर OR पुनः स्थापित हो जाएगी।

इस प्रकार विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति विनिमय दर को निर्धारित करते हैं तथा इन वक्रों के स्वरुप निर्यात की माँग की विदेशी लोच, निर्यात की पूर्ति की घरेलू लोच, आयात की माँग की घरेलू लोच व आयात की पूर्ति की विदेशी लोच पर निर्भर करते हैं। यदि माँग की लोचें ऊँची हों, साथ ही पूर्ति लोचे नीची हों तो संतुलन विनिमय दर स्थिर रहती है।

1.6.अभ्यास प्रश्न

1) विदेशी विनिमय का अर्थ बताइये।
2) विदेशी विनिमय के विभिन्न तरीकों को संक्षिप्त में स्पष्ट कीजिए।
3) विदेशी विनिमय की समस्या उत्पन्न होने के क्या कारण है?
4) विदेशी विनिमय दर से आप क्या समझते हैं?

5) विदेशी विनिमय दर में होने वाले परिवर्तनों के कारणों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1) विदेशी विनिमय दर निर्धारण के कौन-कौन से सिद्धान्त है?

2) टंकण-मूल्य समता सिद्धान्त किस मुद्रामान के अन्तर्गत लागू होता है?

3) क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया है?

4) टंकण मूल्य समता सिद्धान्त के अन्तर्गत ऊपरी सीमा को क्या कहा जाता है?

5) क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त में विनिमय दर की निम्न सीमा को क्या कहा जाता है?

1.7 सारांश

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की स्थिति में विदेशी भुगतानों हेतु विदेशी विनिमय की आवश्यकता होती है। सामान्यतया अन्य देशों की मुद्राओं को विदेशी विनिमय कहा जाता है किन्तु इसके अन्तर्गत उन सभी क्रियाओं एवं विधियों को शामिल किया जाता है जिनके द्वारा दो या दो से अधिक देशों के व्यापारी अपने व्यावसायिक दायित्वों का भुगतान करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों हेतु विदेशी विनिमय की समस्या उत्पन्न होने का मुख्य कारण विभिन्न देशों की मुद्राओं का भिन्न-भिन्न होना, मुद्राओं की माँग और पू र्ति में असाम्य तथा स्थायी विनिमय दरों का अभाव है। विदेशी विनिमय दर दो देशों की मुद्राओं के बीच विनिमय अनुपात को कहा जाता है जिस पर एक देश की मुद्रा दूसरे देश की मुद्रा से परिवर्तित की जाती है। दीर्घकालीन विनिमय दरों को सामान्य या साम्य विनिमय दर और अल्पकालीन विनिमय दरों को तात्कालिक अथवा बाजार विनिमय दर कहा जाता है जिसमें विदेशी मुद्रा की माँग और पूर्ति में परिवर्तन के कारण निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। विनिमय दर का निर्धारण स्वर्णमान के अन्तर्गत टंकण मूल्य समता सिद्धान्त के द्वारा किया जाता है जबकि अपरिवर्तनीय पत्र मुद्राओं के बीच विनिमय दर का निर्धारण क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त अथार्त उनकी पारस्परिक आन्तरिक क्रय-शक्तियों के अनुपात के आधार पर किया जाता है। भुगतान संतुलन सिद्धान्त के अन्तर्गत भुगतान-शेष के उधार खाता एवं जमा खाते की मदों की समानता के आधार पर किया जाता है।

1.8 शब्दावली

- **विदेशी विनिमय**– विदेशी भुगतानों हेतु प्रयुक्त साधन – अन्य देशों की मुद्रायें तथा स्वर्ण आदि।
- **विदेशी विनिमय दर** – वह दर जिस पर एक देश की मुद्रा को दूसरे देश की मुद्रा से बदला जाता है।
- **विदेशी विनिमय बिल** – एक लिखित आदेश जिसमें क्रय करने वाला एक निश्चित अवधि में अंकित राशि का भुगतान लेनदार को करने का आदेश देता है।
- **साख-पत्र** – इसमें साख पत्र जारी करने वाला बैंक एक निश्चित अवधि में किसी व्यक्ति को निश्चित राशि चेक अथवा बिल द्वारा निकालने का अधिकार देता है।
- **विदेशी विनिमय की माँग** – विदेशों से वस्तुओं एकं सेवाओं के आयातों तथा अन्य देशों में किए गए निवेशों व ऋणों के भुगतान हेतु की जाने वाली व्युत्पन्न माँग है।

- **विदेशी विनिमय की पूर्ति** – यह घरेलू देश द्वारा विदेश को वस्तुओं व सेवाओं के निर्यात एवं देश में विदेशियों द्वारा किए गए निवेश को व्यक्त करती है।
- **साम्य विनिमय दर** – विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति द्वारा निर्धारित स्थायी दर को साम्य विनिमय दर कहा जाता है।
- **टकसाल दर समता** – दो देशों की मुद्राओं के प्रामाणिक सिक्कों में निहित विशुद्ध स्वर्ण की समानता।
- **क्रय-शक्ति समता** – दो देशों की अपरिवर्तनीय पत्र मुद्राओं की आन्तरिक क्रय शक्तियों का आपस में अनुपात।
- **भुगतान संतुलन**– शेष विश्व के साथ किसी देश का एक निश्चित अवधि में समस्त आर्थिक लेखा-जोखा।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्न

1) टंकणमूल्य समता सिद्धान्त, क्रयशक्ति समता सिद्धान्त, भुगतान संतुलन सिद्धान्त

2) स्वर्णमान 3) गुस्ताव कैसल

4) स्वर्ण निर्यात बिन्दु 5) वस्तु आयात बिन्दु

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Mithani, D.M. (2010) "International Economics" Himalaya Publishing House, Mumbai.
- वैश्य, एम.सी. व सिंह, सुदामा (2002) "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" सप्तम संस्कण, आक्सफोर्ड एवं आई.बी.एच. पब्लिशिंग कं.प्रा.लि., नई दिल्ली।
- अग्रवाल एवं बरला (2008) "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र"लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- राणा, के.सी. व वर्मा, के. एन. (2012) "अंतरविदीय अर्थशास्त्र"विशाल पब्लिशिंग कं., जालन्धर।

1.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- झिंगन, एम.एल. (2011) "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" षष्टम संस्करण, वृंदा पब्लिशिंग प्रा. लि., दिल्ली।
- Salvatore, Dominick (1998) "International Economics" Sixth ed. Prentice Hall, New Jersey.
- Pugel, A. Thomas (2011) "International Economics" 13th ed. Tata McGraw Hill Educational Pvt. Ltd., New Delhi.
- Avadhani, V.A. (2012) "International Economics" Eighth Ed. Himalaya Publishing House, Mumbai.

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सन्तुलन विनिमय दर से क्या अभिप्राय है? संतुलन विनिमय दर किस तरह निर्धारित होती है?
2. स्वर्णमान के अन्तर्गत विनिमय दर के टंकण मूल्य समता सिद्धान्त को विस्तारपूर्वक समझाइए।
3. क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. विनिमय दर निर्धारण के भुगतान संतुलन सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

इकाई-2 विनिमय नियंत्रण
(Foreign Control)

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 मुख्य भाग

2.3.1 विनिमय नियंत्रण का अर्थ

2.3.2 विनिमय नियंत्रण की विशेषताएँ

2.3.3 विनिमय नियंत्रण के उद्देश्य

2.4 विनिमय नियंत्रण के तरीके

2.4.1 प्रत्यक्ष विनिमय नियंत्रण

2.4.2 अप्रत्यक्ष विनिमय नियंत्रण

2.4.3 विनिमय नियंत्रण का प्रभाव

2.4.4 विनिमय नियंत्रण के गुण

2.4.5 विनिमय नियंत्रण के दोष

2.5 भारत में विनिमय नियंत्रण

2.5.1 विदेशी विनिमय विनियमन अधिनियम

2.5.2 विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम

2.5.3 मनी लांडरिंग निरोधक अधिनिमय

2.5.4 रूपये की परिवर्तनीयता

2.6 अभ्यास प्रश्न

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई में विनिमय नियंत्रण को स्पष्ट किया जाएगा। आप देखेंगे कि प्रथम विश्व युद्ध के दौरान तथा उसके बाद विदेशी विनिमय लेनदेनों पर देशों द्वारा नियंत्रण किया जाने लगा था। 1930 की विश्वव्यापी मंदी ने इसे और आवश्यक बना दिया और देशों द्वारा अपने भुगतान शेष को संतुलित बनाये रखने हेतु विनिमय नियंत्रण के विभिन्न तरीकों को अपनाया जाने लगा। यद्यपि 1950 से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विनिमय नियंत्रण में कमी होने लगी है फिर भी इस स्थिति में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है तथा देशों द्वारा किसी न किसी रूप में विनिमय नियंत्रण भी अपनाया जा रहा है। आप इस इकाई में विनिमय नियंत्रण के इन विभिन्न तरीकों की समझ सकेंगे। इसके अतिरिक्त भारत के सन्दर्भ में विनिमय नियंत्रण की स्थिति पर संक्षिप्त चर्चा की जाएगी।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप यह समझ सकेंगे कि –

- ✓ विनिमय नियंत्रण का अर्थ और इसके विभिन्न तरीके क्या हैं?
- ✓ विनिमय नियंत्रण के विभिन्न तरीके तथा इसका प्रभाव क्या होता है?
- ✓ विनिमय नियंत्रण के पारस्परिक गुण-दोष क्या हैं?
- ✓ भारत में विनिमय नियंत्रण के सम्बन्ध में क्या प्रावधान किए गए हैं?

2.3 मुख्य भाग

2.3.1 विनिमय नियंत्रण का अर्थ

विनिमय नियंत्रण के अन्तर्गत विदेशी विनिमय के स्वतंत्र लेनदेन को प्रतिबंधित कर दिया जाता है। इस स्थिति में विदेशी विनिमय बाजार में आर्थिक शक्तियों के मुक्त व्यवहार की बजाय राज्य अथवा सरकार द्वारा विदेशी विनिमय को नियंत्रित किया जाता है। इस प्रकार जब विदेशी विनिमय बाजार में विनिमय नियंत्रण पूर्णरूपेण होता है तब विदेशी विनिमय बाजार पूर्णतया सरकारी निर्णयों द्वारा संचालित होता है। यह विदेशी विनिमय के मुक्त लेनदेनों को पूर्णरूप से प्रतिबंधित कर देता है। ऐसी स्थिति में सरकार अथवा देश के केन्द्रीय बैंक का विदेशी विनिमय बाजार पर सम्पूर्ण नियंत्रण होता है। देश के निर्यातों तथा अन्य समस्त स्रोतों से अर्जित विदेशी प्राप्तियाँ केन्द्रीय बैंक के अधीन होती हैं और वह देश की आवश्यकताओं एवं प्राथमिकताओं के आधार पर आयातकों को विदेशी विनिमय का आवंटन करता है। इस प्रकार केन्द्रीय बैंक विदेशी विनिमय की माँग एवं पूर्ति प्रवाहों में सन्तुलन स्थापित कर भुगतान संतुलन तथा अधिकारिक विनिमय दर को संतुलित बनाए रखने का प्रयास करता है।

2.3.2 विनिमय नियंत्रण की विशेषताएँ

विनिमय नियंत्रण की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

1. सशक्त विदेशी विनिमय व्यवहारों का विनिमय नियंत्रण द्वारा केन्द्रीयकरण हो जाता है और उनका संचालन सरकार अथवा केन्द्रीय बैंक द्वारा किया जाता है।

2. केन्द्रीय बैंक सरकारी विनिमय दर निश्चित करता है और इसे स्थिर रखने हेतु विदेशी करेंसियों की माँग-पूर्ति का नियमन करता है।
3. निर्यातकों द्वारा अर्जित समस्त विदेशी मुद्रा केन्द्रीय बैंक के पास जाती है और वह स्वदेशी मुद्रा में निर्यातकों को भुगतान करता है। इसी प्रकार आयातकों को विदेशी भुगतान करने हेतु विदेशी मुद्रा बेच दी जाती है।
4. लाइसेंस प्राप्त व्यापारी और विशिष्ट बैंक ही विदेशी विनिमय का लेनदेन कर सकते हैं।
5. विनिमय नियंत्रण के द्वारा व्यापार-संतुलन को अनुकूल बनाया जा सकता है क्योंकि आयातों को सीमित किया जा सकता है।

2.3.3 विनिमय निंयत्रण के उद्देश्य

देश की सरकारों अथवा केन्द्रीय बैंक द्वारा समय-समय पर विनिमय नियंत्रण को अपनाया गया है जिसके उद्देश्य इस प्रकार हैं।

1. **विनिमय दरों का स्थिरीकरण**: मुक्त विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दरों में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं जिससे उद्योग तथा वाणिज्य को हानि पहुँचती है। इसलिए सरकार निश्चित विनिमय दर घोषित कर विनिमय नियंत्रण द्वारा उसे स्थिर बनाए रखती है।
2. **विदेशी विनिमय का संरक्षण**: विनिमय नियंत्रण द्वारा मौद्रिक प्राधिकारी आवश्यक अथवा विलासिता सम्बन्धी वस्तुओं के आयातों को प्रतिबंधित कर आवश्यक वस्तुओं के आयातों हेतु विदेशी विनिमय की आपूर्ति कर सकते हैं।
3. **पूँजी बहिर्गमन पर रोक**: राजनीतिक एवं आर्थिक कारणों से यदि विदेशों में पूँजी का विनियोग होने लगे तो देश के स्वर्ण एवं विदेशी कोष समाप्त हो सकते हैं। अतः विनिमय नियंत्रण द्वारा पूँजी के बहिर्गमन को राका जा सकता है।
4. **विदेशी ऋण का पुनर्भुगतान**: देश, विदेशी ऋण के मूल और ब्याज का भुगतान करने के लिए, विनिमय नियंत्रण को अपनाकर विदेशी विनिमय अर्जित कर सकता है।
5. **प्रतिकूल भुगतान-संतुलन को सुधारना**: देश अपने भुगतान-संतुलन के घाटे को पूरा करने हेतु विनिमय नियंत्रण द्वारा आयातों को सीमित कर सकता है।
6. **प्रभावी आर्थिक आयोजन**: देश में आर्थिक आयोजन की सफलता हेतु विदेशी व्यापार का आयोजित कार्यक्रमों के साथ समन्वय आवश्यक है जिससे घरेलू उद्योगों हेतु आवश्यक पूँजी उपलब्ध हो सके। इस उद्देश्य हेतु विनिमय नियंत्रण अतिआवश्यक है।
7. **घरेलू उद्योगों का संरक्षण**: विनिमय नियंत्रण द्वारा घरेलू उत्पादकों तथा उद्योगों को आयात सीमित कर विदेशी व्यापारियों की प्रतियोगिता से संरक्षण प्रदान किया जा सकता है। विशेषतया शिशु उद्योगों और आत्मनिर्भरता प्राप्त करने हेतु ऐसा किया जाना आवश्यक है।
8. **मुद्रा का अधिमूल्यन**: देश विनिमय नियंत्रण द्वारा मुद्रा की कीमत अन्य देशों की तुलना में अधिक घोषित कर आवश्यक कच्चामाल, उपभोग वस्तुओं तथा सैन्य सामग्री आदि सस्ती कीमत पर आयात कर

सकता है। किन्तु यह एक अल्पकालीन उपाय है क्योंकि इससे निर्यात महँगें तथा आयात सस्ते होने के कारण भुगतान संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

9. **मंदी के विस्तार पर रोक**: अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों के कारण विकसित देश आयातों एवं निर्यातों के द्वारा मंदी का विस्तार अन्य देशों में भी कर सकते हैं जिन्हें विनिमय नियंत्रण द्वारा उसी देश तक सीमित रखा जा सकता है।
10. **राजस्व की प्राप्ति**: विनिमय नियंत्रण के अन्तर्गत सरकार द्वारा अधिकृत केन्द्रीय बैंक अन्य देशों से क्रय की गई विदेशी करेंसी को ऊँची कीमत पर देश के व्यापारियों व नागरिकों को बेचकर राजस्व प्राप्त कर सकता है।

2.4 विनिमय नियंत्रण के तरीके

प्रत्यक्ष विनिमय नियंत्रण विधियों को मुख्यतया प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है।

2.4.1 प्रत्यक्ष विनिमय नियंत्रण

प्रत्यक्ष विनिमय नियंत्रण विदेशी विनिमय को उनकी मात्रा, प्रयोग एवं आवंटन की दृष्टि से प्रत्यक्ष रूप में प्रभावित करते हैं और इनका क्रियान्वयन केन्द्रीय बैंक के द्वारा किया जाता है। ये निम्नवत् हैं –

1. **सरकारी हस्तक्षेप**: सरकारी हस्तक्षेप के अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक विनिमय दर को ऊँचा अथवा नीचा रखने हेतु विदेशी विनिमय बाजार में हस्तक्षेप करता है। इसे **कीलित विनिमय दरें** कहा जाता है। यदि केन्द्रीय बैंक घरेलू करेंसी की विनिमय दर को विदेशी विनिमय बाजार में प्रचलित विनिमय दर से नीची निर्धारित करता है तो इसे **'नीचे कीलना'** कहते हैं। ऐसी स्थिति में केन्द्रीय बैंक विदेशी करेन्सियों के बदले स्थानीय करेंसी को निर्धारित दरों पर बेचता है क्योंकि नीची विनिमय दर पर स्थानीय करेंसी की माँग उनकी पूर्ति से अधिक होती है। इसलिए स्थानीय करेंसी की उपलब्धता अधिक मात्रा में आवश्यक होती है।

   इसके विपरीत, यदि केन्द्रीय बैंक वर्तमान विनिमय दर की अपेक्षा घरेलू करेंसी की ऊँची विनिमय दर निर्धारित करता है तो इसे **'ऊपर कीलना'** कहते हैं। ऐसी स्थिति में घरेलू करेंसी की माँग उसकी पूर्ति से कम होती है और निर्धारित विनिमय दर पर केन्द्रीय बैंक को विदेशी करेन्सियों के बदले घरेलू करेंसी को क्रय करना होता है। फलस्वरुप विदशी करेंसियों की अधिक आवश्यकता होती है।

   उपर्युक्त दोनों स्थितियों में केन्द्रीय बैंक को घरेलू करेंसी अथवा विदेशी करेंसी के विशाल संसाधनों की आवश्यकता होती है। इसलिए ऊँचा कीलना की तुलना में नीचा कीलना केन्द्रीय बैंक हेतु अधिक व्यावहारिक होता है। केन्द्रीय बैंक द्वारा इस प्रकार हस्तक्षेप मुक्त विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दरों में होने वाले उच्चावचनों को रोकने हेतु अल्पकालीन उपाय के रूप में अपनाया जा सकता है।
2. **विनिमय प्रतिबंध**: विनिमय प्रतिबंध के अन्तर्गत सरकारी विनिमय नियंत्रण प्राधिकरण अर्थात् केन्द्रीय बैंक विदेशी विनिमय बाजार में घरेलू करेंसी की पूर्ति को अनिवार्य रूप से कम अथवा प्रतिबंधित कर देता

है। ऐसा करने हेतु सरकार सभी प्रकार के विदेशी विनिमय व्यापार को स्वयं अर्थात् केन्द्रीय बैंक तक सीमित कर सकता है। विदेशी करेंसी के बदले में घरेलू करेंसी के विनिमय को प्रतिबंधित कर सकता है। इसके अतिरिक्त, सरकार विदेशी विनिमय लेनदेन हेतु सरकारी अभिकरण को अधिकृत कर सकता है। विनिमय प्रतिबंध के अनेक रूप होते हैं जिनमें अधिकांशतः निम्नलिखित प्रयोग किए जाते हैः

(i) **बहु-विनिमय दरें** – इसके अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक आयातों एवं निर्यातों के विभिन्न वर्गों एवं श्रेणियों हेतु अलग-अलग विनिमय दरें निर्धारित करता है जिसका उद्देश्य आयातों में कमी करना और निर्यातों के वृद्धि करना है जिससे भुगतान-संतुलन को ठीक किया जा सके। उदाहरण के लिए आवश्यक वस्तुओं के आयात हेतु केन्द्रीय बैंक अपेक्षाकृत नीची विनिमय दर तथा विलासिता वाली वस्तुओं हेतु ऊँची दर निर्धारित कर सकता है। इसी प्रकार केन्द्रीय बैंक ऊँची विनिमय दर रखकर निर्यातकों को सहायिकी दे सकता है। प्रायः अदृश्य मदों और पूँजी हस्तान्तरणों की विनिमय दर अपेक्षाकृत ऊँची निर्धारित की जाती हैं। इसके अतिरिक्त विनिमय दरें वस्तुओं की माँग की लोच के आधार पर भी निर्धारित की जाती हैं।

बहु-विनिमय दर प्रणाली का प्रभाव आयात पर लगने वाले प्रशुल्क और निर्यात पर दी जाने वाली सहायिकी के समान होता है। साथ ही यह भुगतान संतुलन को ठीक करने का एक प्रभावी उपाय है। इसकी सबसे बड़ी कमी यह है कि यह भुगतान संतुलन को ठीक करने की बजाय अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को सीमित कर विश्व स्तर पर उत्पादन व कल्याण को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है।

(ii) **अवरुद्ध खाते** – देश में वित्तीय संकट की स्थिति में ऋणी देश अपने ऋणदाता देशों के खातों को अवरुद्ध कर सकता है। इसके अन्तर्गत आयातों का भुगतान विदेशी निर्यात कर्ताओं के अवरुद्ध खातों में जमा कर दिए जाते हैं और उन खातों से उन्हें मुद्रा निकालने की मनाही कर दी जाती है। किन्तु नियन्त्रणकर्ता देश इन अवरुद्ध खातों को अपने काम में ले सकता है। इस योजना के अन्तर्गत अन्य देशों के ऋणदाताओं को भुगतान ऋणी द्वारा सीधे तौर पर न कर देश के केन्द्रीय बैंक द्वारा किए जाते हैं जहाँ विदेशी ऋणदाताओं के नाम खाते होते हैं। यह भुगतान राशि विदेशियों को उनकी करेंसी में नहीं प्राप्त होती बल्कि नियंत्रणकर्ता देश में क्रय हेतु प्रयोग की जाती है। इसका प्रयोग सर्वप्रथम 1931 में जर्मनी द्वारा किया गया था। इस प्रणाली की कमी यह है कि यह अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को न्यूनतम स्तर पर ले आती है और विदेशी विनिमय की कालाबाजारी को जन्म देती है।

(iii) **प्राथमिकताओं के अनुसार आवंटन** – इसके अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक आयातों तथा विदेशी भुगतानों हेतु वित्तीय व्यवस्था उनकी प्राथमिकताओं के आधार पर करता है। इस दृष्टि से आवश्यक आयातों जैसे – कच्चा माल, पूँजीगत वस्तुएँ इत्यादि के लिए विदेशी विनिमय आवंटन विलासिता संबन्धी अनावश्यक वस्तुओं की तुलना में प्राथमिकता के आधार पर किया जाएगा। यद्यपि विनिमय नियंत्रण हेतु यह प्रणाली अत्यन्त सरल है किन्तु इसमें नौकरशाहों का

मनमानापूर्ण व्यवहार स्वाभाविक है जिससे विलम्ब के साथ प्रशासनिक लागतें भी अधिक हो सकती हैं।

3. **समाशोधन समझौते**: इसके अन्तर्गत द्विपक्षीय व्यापार की दशा में दोनों देश अपने-अपने देश के केन्द्रीय बैंक में खाता खौलकर आयात तथा निर्यात के सभी भुगतानों का पारस्परिक तय विनिमय दर पर समाशोधन करने का समझौता कर लेते हैं।

   उदाहरण के तौर पर यदि भारत से चीन वस्तुएँ आयात करता है तो आयातकों को अपने देश के केन्द्रीय बैंक के समाशोधन खाते में अपनी ही करेंसी में भुगतान करना होगा। इसी प्रकार भारतीय निर्यातकों को समाशोधन खाते में अपनी करेंसी में भुगतान करना पड़ेगा। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि दोनों देशों में आयात व निर्यात बराबर हो और समाशोधन खाते संतुलित हों। समाशोधन खाते में कमी की दशा में उसे स्वर्ण अथवा अन्य विदेशी करेंसी के रूप में भुगतान किया जाता है जिसे दोनों देश स्वीकार करने हेतु तैयार हो।

   इस समाशोधन समझौते की मुख्य कमी यह है कि इसमें सशक्त देश कमजोर देश का शोषण कर सकता है। यह विदेशी व्यापार के सामान्य ढाँचे में परिवर्तन के साथ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के परिमाण में भी कमी ला सकता है। इसके अतिरिक्त विनिमय नियंत्रण की यह विधि तभी प्रयोग की जा सकती है जबकि सभी विदेशी भुगतान केन्द्रीय बैंक द्वारा ही सम्पादित किए जायें।

4. **भुगतान समझौते** – भुगतान समझौते, समाशोधन समझौते की तुलना में विनिमय नियंत्रण की अधिक व्यापक विधि है क्योंकि इसमें वस्तुओं के आयात-निर्यात के अतिरिक्त सेवा सम्बन्धी मदें जैसे – जहाजरानी खर्चे, बीमा, पर्यटन तथा ऋण सेवा आदि भी शामिल होती हैं। इसके अन्तर्गत ऋणदाता देश के आयात के भुगतान का कुछ अंश उसके ऋण के भुगतान के लिए समाशोधन खाते में जमा कर दिया जाता है तथा शेष राशि का भुगतान ऋणी देश के निर्यातकों को कर दिया जाता है। ऋणदाता देश ऋणी देश के आयातों पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाता है किन्तु ऋणी देश ऋणदाता देश के आयात पर प्रतिबंध लगा सकता है जिससे वह अपने निर्यातों में वृद्धि करके विदेशी दायित्वों का भुगतान कर सके।

   इस विधि की मुख्य कमी यह है कि खातों की शेष राशि का प्रयोग भुगतान हेतु केवल एक देश से दूसरे साझीदार देश को किया जा सकता है। प्रायः ऐसा माना जाता है कि यह कमजोर देश के प्रतिकूल भुगतान संतुलन को ठीक करने में सहायक है किन्तु ऋण सेवा अवधि बढ़ने से कमजोर देशों का ऋण सेवा भार बढ़ जाता है जो भुगतान संतुलन पर दीर्घकालीन प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

2.4.2 अप्रत्यक्ष विनिमय नियंत्रण

विनिमय नियंत्रण की अप्रत्यक्ष विधियाँ विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं।

1. **ब्याज दरों में परिवर्तन** – किसी देश में ब्याज दरों में किया जाने वाला परिवर्तन विदेशी विनिमय दर को प्रभावित करता है। यदि देश में ब्याज दरें ऊँची हैं तो वह विदेशी पूँजी तथा बैंकिंग कोषों को आकर्षित करती हैं। फलस्वरुप घरेलू करेंसी की माँग बढ़ती है जो इसके विदेशी मूल्य को बढ़ा देती है और विदेशी

विनिमय दर को देश के अनुकूल बना देती है। इसके विपरीत ब्याज दर कम होने पर विदेशी पूँजी के पलायन के साथ घरेलू पूँजी का प्रवाह भी अन्य देशों में होगा जो विदेशी विनिमय दर को प्रतिकूल बना देगा।

यहाँ आपको यह बताना आवश्यक है कि कोई भी देश ब्याज दरों को अधिक नहीं बढ़ा सकता क्योंकि इसका घरेलू व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। साथ ही अन्य देश भी प्रतिक्रिया स्वरुप अपनी ब्याज दरें बढ़ा सकते हैं।

2. **प्रशुल्क एवं गैर-प्रशुल्क नियंत्रण** – विदेशी व्यापार के परिमाण पर प्रतिबंध लगाने हेतु प्रशुल्क एवं आयात कोटा व अन्य मात्रात्मक प्रतिबंध एक महत्वपूर्ण अप्रत्यक्ष विधि है। आयात शुल्क आयातों की मात्रा में कमी करते हैं और विदेशी करेंसी की तुलना में घरेलू करेंसी के मूल्य में वृद्धि कर देते हैं। इसी प्रकार निर्यात शुल्क, निर्यातों की मात्रा में कमी करने के साथ विदेशी करेंसी की तुलना में घरेलू करेंसी के मूल्य को कम कर देते हैं। इसके अतिरिक्त राज्य व्यापार निगम अथवा ऐसे किसी प्राधिकरण को सरकार द्वारा कुछ वस्तुओं के आयात का एकाधिकार दे दिया जाता है। यह निगम ही आयातित वस्तुओं की मात्रा निर्धारित करता है और उसे देश में वितरित करता है।

   उपर्युक्त मात्रात्मक प्रतिबंधों का उद्देश्य देश की विनिमय दरों को अनुकूल बनाना तथा प्रतिकूल भुगतान संतुलन को ठीक करना है। किन्तु, कोई भी देश आयातों को पूर्णतया प्रतिबंधित नहीं कर सकता है। साथ ही, अन्य देश प्रशुल्क नीति के सम्बन्ध में प्रतिकार कर अपने देश में भी आयातों को प्रतिबंधित कर सकते हैं।

3. **निर्यात सहायिकी** – प्रायः निर्यातों में वृद्धि करने हेतु सरकार निर्यातों को सहायिकी प्रदान कर सकती हैं अथवा नि निर्यातों पर लगाए जाने वाले करों में कमी या छूट प्रदान कर सकती हैं। इससे विदेशी विनिमय बाजार में देश की मुद्रा की माँग में वृद्धि होती है और विनिमय दर देश के अनुकूल होने के साथ भुगतान संतुलन की स्थिति में भी सुधार होता है। किन्तु सरकार के पास उपलब्ध निधियों की राशि निर्यात सहायिकी को सीमित कर देती है।

2.4.3 विनिमय नियंत्रण का प्रभाव

विनिमय नियंत्रण व आयात लाइसेंस मिलकर एक देश में आयातकों के लिए एकाधिकार लाभ उत्पन्न करते हैं। यदि कोई देश पूर्ण विनिमय नियंत्रण को अपनाता है तो आयातकों द्वारा अर्जित एकाधिकारी लाभ उपभोक्ताओं के कल्याण को कम कर देता है और आयात लाइसेंस व विदेशी मुद्रा लाइसेंस प्राप्त करने हेतु भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है।

चित्र 2.1 में कठोर विनिमय नियंत्रण की दशा में आयातकों द्वारा X-वस्तु के आयात की माँग और पूर्ति को प्रदर्शित किया गया है। चित्र 2.1 में PW x-वस्तु की विश्व कीमत तथा DC घरेलू उपभोक्ताओं की माँग को व्यक्त कर रही है जबकि कोई विनिमय नियंत्रण नहीं है। इस 0PW कीमत पर घरेलू उपभोक्ताओं की कुल माँग OQ मात्रा के बराबर है। ऐसी स्थिति में क्षेत्रफल OPWEQ राशि के बराबर विदेशी विनिमय की आवश्यकता होगी।

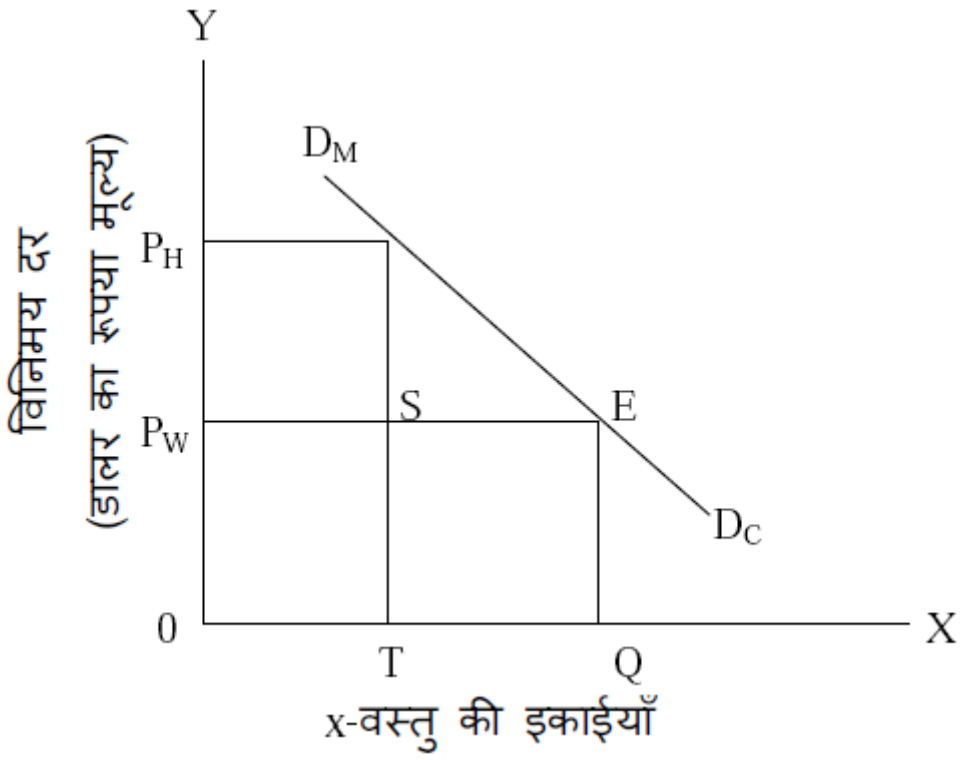

विनिमय नियंत्रण की दशा में निर्गत सीमित राशि क्षेत्रफल OPWST वांछित राशि की तुलना में कम है जो आयातकों के आयाताकार परवलयाकार वक्र DM से स्पष्ट है। अतः OQ माँग की तुलना में पूर्ति OT तक प्रतिबंधित होने के कारण आयातित x-वस्तु की घरेलू कीमत बढ़कर OPH हो जाएगी। आयातित वस्तु x की कीमत में OPW और OPH के बीच का अन्तर आयातकों को विनिमय नियंत्रण के कारण मिलने वाले एकाधिकारी लाभ को व्यक्त करता है और तीव्र ढाल वाला माँग वक्र आयातकों को पुनः एकाधिकारी लाभ दिलाएगा।

2.4.4 विनिमय नियंत्रण के गुण

विकसित एवं विकासशील दोनों प्रकार के देशों द्वारा विनिमय नियंत्रण की नीतियों को अपनाया जाता है। विनिमय नियंत्रण के मुख्य गुण इस प्रकार हैं।

1. विनिमय नियंत्रण आयात को प्रतिबंधित कर भुगतान शेष को ठीक करने में सहायता करता है।
2. विनिमय नियंत्रण विदेशी कंपनियों के प्रसार को सीमित करता है और राष्ट्रीय हित में उनके कार्यकरण का नियमन करता है।
3. विनिमय नियंत्रण द्वारा घरेलू उद्योगों को विदेशी प्रतियोगिता से संरक्षण प्रदान किया जा सकता है और देश में आयात स्थनापन्नता व निर्यात प्रोत्साहन को प्रारम्भ किया जा सकता है।
4. विनिमय नियंत्रण पूँजी के अनियमित प्रवाह को रोकता है और विदेशी विनिमय की उपलब्धता को सुनिश्चित करके आवश्यक पूँजी वस्तुओं के आयात को संभव बनाता है।
5. विनिमय नियंत्रण विनिमय दरों में होने वाले उच्चवचनों को रोककर उसमें स्थिरता लाने में सहायक होता है।

6. सरकार विनिमय नियंत्रण का प्रयोग विदेशी ऋणों के भुगतान हेतु भी अपना सकती है।
7. यह दो देशों के बीच द्विपक्षीय व्यापार संबंधों से लाभ उठाने हेतु एक प्रभावी विधि है।
8. विनिमय नियंत्रण देश में आर्थिक राष्ट्रीयता की भावना का विकास करता है।
9. विनिमय नियंत्रण द्वारा विदेशी मुद्रा का संरक्षण कर देश अपनी सुरक्षा, आयोजन, आर्थिक विकास आदि महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पादित करने में सफल हो सकता है।
10. किसी देश के विरोधी हो जाने की स्थिति में सरकार विनिमय नियंत्रण द्वारा उस देश की सभी परिसम्पत्तियों को अपने अधिकार में लेकर उसकी निधियों को लौटाने पर रोक लगा सकता है।
11. अन्ततः सरकार विनिमय नियंत्रण के माध्यम से राजस्व भी एकत्रित कर सकती है।

2.4.5 विनिमय नियंत्रण के दोष

विनिमय नियंत्रण की नीति के मुख्य दोष निम्नलिखित हैं –

1. **विदेशी विनिमय की कालाबाजारी** – विनिमय नियंत्रण विदेशी विनिमय की कालाबाजारी को जन्म देता है। जिससे विदेशी मुद्राओं का देश की बजाय विदेशों में प्रयोग होता है और इनकी तस्करी में वृद्धि होती है।
2. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के परिमाण में कमी** – विनिमय नियंत्रण के अन्तर्गत जब एक देश आयातों को प्रतिबंधित करता है तब दूसरे देश प्रतिक्रिया स्वरुप अपने आयातों पर भी प्रतिबंध लगाते हैं। जिससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के परिमाण में कमी आती है और विश्वस्तर पर भी कुल उत्पादन में कमी आती है।
3. **लालफीताशाही एवं भ्रष्टाचार** – विनिमय नियंत्रण का कार्य सरकारी कर्मचारियों के द्वारा किया जाता है। अतः वे अपने निहित स्वार्थों के कारण प्रशासनिक व्यवस्था का दुरुपयोग करते हैं जिससे अनावश्यक विलम्ब तथा भ्रष्टाचार का जन्म होता है।
4. **औद्योगिक अक्षमता** – विनिमय नियंत्रण के कारण विदेशी प्रतियोगिता के अभाव में घरेलू उद्योगों में प्रौद्योगिकीय स्थिरता, औद्योगिक अकुशलता व गुणवत्ता ह्रास का जन्म होता है। जो लागतों में वृद्धि कर घरेलू कीमत-स्तर को बढ़ा देता है।
5. **आय एवं धन का असमान वितरण** – विनिमय नियंत्रण छोटे उत्पादकों की बजाय कुछ बड़े उत्पादकों अथवा उनके समूह के लिए असामान्य लाभ के अवसर उत्पन्न करता है। फलस्वरुप आय व धन के वितरण में असमानता बढ़ने लगती है।
6. **मनमानापूर्ण एवं अपव्ययी** – विनिमय नियंत्रण के अन्तर्गत विदेशी विनिमय का आवंटन प्रायः नौकरशाहों की मनमानी प्राथमिकताओं के अनुसार किया जाता है। इसके अतिरिक्त विनिमय नियंत्रण की नीति के क्रियान्वयन हेतु नियुक्त प्रशासनिक मशीनरी पर बड़ी मात्रा में व्यय किया जाता है जिससे सरकारी धन का अनावश्यक व्यय होता है।

अन्ततः आप परिचित हो गए होगें कि विनिमय नियंत्रण देश के अनुकूल भुगतान-संतुलन एवं विनिमय दरों में स्थिरता बनाए रखने हेतु सहायक है किन्तु इससे देश में कुछ निहित स्वार्थों का भी जन्म हो सकता है जो भविष्य में देश के विकास के लिए उपयुक्त नहीं होगा।

2.5. भारत में विनिमय नियंत्रण

भारत में द्वितीय विश्वयुद्ध के समय से ही विनिमय नियंत्रण को अपनाया गया। सितम्बर 1939 में भारतीय रिजर्व बैंक ने सूचना जारी करते हुए कहा कि विदेशी मुद्राओं का क्रय-विक्रय केवल विनिमय नियंत्रण विभाग की अनुमति के आधार पर ही किया जा सकता है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य को एक **स्टर्लिंग क्षेत्र** में संगठित किया गया। बाद में पूँजी के सटोरिए प्रवाह को रोकने हेतु स्टर्लिंग क्षेत्र की मुद्राओं का क्रय-विक्रय केवल अधिकार प्राप्त बैंकों द्वारा करने की अनुमति दी गई।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् अयातों की निरन्तर माँग तथा निर्यातों में कमी के भय के कारण सरकार ने विनिमय नियंत्रण कानून मार्च 1947 के अन्तर्गत विदेशी विनिमय के वितरण का पूर्ण तथा स्थायी अधिकार भारतीय रिजर्व बैंक को दे दिया गया किन्तु स्टर्लिंग क्षेत्र के लोगों को प्रतिमाह 150 पौण्ड पारिवारिक व्यय हेतु भेजने की छूट दी गई। जुलाई 1947 में विनिमय नियंत्रण क्षेत्र को व्यापक बनाते हुए स्टर्लिंग क्षेत्र की मुद्राओं को भी इसमें शामिल कर लिया गया। अब कोई भी व्यक्ति अथवा संस्था भारतीय रिजर्व बैंक की अनुमति के बिना विदेशी विनिमय नहीं खरीद सकता था।

2.5.1 विदेशी विनिमय अधिनियम

स्वतंत्रता के पश्चात् भी भारत में विनिमय नियंत्रण की नीति को लागू रखा गया और 1947 के विदेशी विनिमय नियंत्रण कानून के अन्तर्गत विदेशी मुद्राओं का क्रय-विक्रय अधिकार प्राप्त संस्थाओं तथा व्यापारिक बैंकों तक ही सीमित रखा गया। किन्तु, ये संस्थाएँ अथवा बैंक केवल उन्हीं भारतीय व्यक्तियों अथवा फर्मों को विदेशी मुद्रा बेच सकती थी जिन्होंने भारतीय रिजर्व बैंक से इस अधिनियम के बाद अनुमति प्राप्त कर ली थी। सामान्यतया विदेशी विनिमय अनुमतियाँ विशेष उद्देश्यों तथा उन आयातकर्ताओं को दी जाती थीं जिन्हें आयात लाइसेन्स प्राप्त होते थे। समय-समय पर सरकार अपने गजट द्वारा विदेशी विनिमय नियंत्रण प्रावधानों में किए गए परिवर्तनों को प्रकाशित करती रही है।

वर्ष 1973 में विदेशी विनिमय विनियमन अधिनियम लागू किया गया जिसने पूर्व विदेशी विनिमय नियंत्रण कानून का स्थान ले लिया। इस अधिनियम में पुनः वर्ष 1993 में अनेक संशोधन किए गए। विदेशी विनिमय विनियमन अधिनियम के अन्तर्गत यह प्रावधान था कि यदि कोई इस अधिनियम का उल्लंघन करता है तो उसे सम्बन्धित राशि का पाँच गुना अर्थदण्ड तथा साथ में कारावास की सजा भी दी जाएगी।

इस प्रकार की जाँच का कार्य प्रवर्तन निदेशालय द्वारा किए जाने का व्यवस्था थी। विनियमन अधिनियम का उद्देश्य विदेशी मुद्राओं का संरक्षण करना था। इसलिए व्यापारिक कार्य, सम्मेलन, यात्रा और उपहार आदि उद्देश्यों हेतु विदेशी मुद्रा की राशि सीमित रखी गई थी। 'फेरा' के अन्तर्गत सिद्ध करने का कार्य स्वयं आरोपी अर्थात अभियुक्त का होता था। संक्षेपतः 'फेरा' विदेशी विनिमय के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत कठोर कानून था।

2.5.2 विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम

विदेशी मुद्रा बाजार में लेन-देन को अधिक उदार बनाने और देश में विदेशी मुद्रा बाजार के सुव्यवस्थित विकास हेतु केन्द्र सरकार ने वर्ष 1999 में 'फेरा' के स्थान पर विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम (Foreign

Exchange Management Act – FEMA) को लागू किया जोकि 1 जून 2000 से देश में प्रभावी हो गया। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य विदेशी व्यापार और विदेशी भुगतानों को सुविधाजनक बनाना है। साथ ही देश में विदेशी मुद्रा बाजार के समुचित रख रखाव को प्रोत्साहित करना है। यह अधिनियम 'फेरा' की तुलना में अधिक उदार एवं पारदर्शी है।

इसके अन्तर्गत भारत में रह चुका कोई भी व्यक्ति अन्य देश का निवासी हो जाने पर भी उन शेयरों, प्रतिभूतियों तथा सम्पत्तियों को धारण कर सकेगा जो उसने भारत प्रवास के दौरान धारण की थी। 'फेमा' के उल्लंघन के मामलों का निपटान सिविल अपराधों की भाँति किया जाएगा और उल्लंघनकर्ताओं को केवल अर्थदण्ड वहन करना होगा जो सम्बन्धित राशि का अधिकतम तीन गुना होगा जिसके लिए अलग से प्रशासनिक तंत्र होगा जिसमें न्यायिक प्राधिकारी, विशिष्ट निदेशक (अपील) और अपीलीय ट्राइब्यूनल सम्मिलित होंगे जो एक निश्चित समय अवधि में ऐसे मामलों का निपटान करेगा। इसमें निबटारा प्राधिकारी भारतीय रिजर्व बैंक है जिसे प्रार्थना पत्र का समाधान 180 दिनों के अन्दर करना होता है

इसमें विदेशी यात्राओं तथा अन्य विभिन्न उद्देश्यों हेतु विदेशी मुद्राओं के आहरण की सीमायें काफी अधिक निर्धारित की गई हैं। उदाहरण के लिए नागरिकों द्वारा अप्रवासी भारतीयों को उपहार स्वरुप प्रतिभूतियों की राशि एक वित्तीय वर्ष में डालर 50,000 तक है। इसी प्रकार व्यक्तिगत भारतीय अपने अप्रवासी निकट सम्बन्धी के साथ देश में **'स्वयं अथवा उत्तरजीवी'** आधार पर संयुक्त खाता खोल सकता है किन्तु वह भारतीय खाताधारकों के समान जीवन-पर्यन्त खाते का संचालन नहीं कर सकता है। संक्षेपतः 'फेमा' के अन्तर्गत विदेशी विनिमय लेन-देनों को अधिक उदार बना दिया गया है।

2.5.3 मनी लांडरिंग निरोधक अधिनियम

'मनी लांडरिंग निरोधक अधिनियम 2002' 1 जुलाई 2005 से देश में प्रभावी हो गया है। इस अधिनियम का उद्देश्य गैर कानूनी तरीके से अर्जित धन को देश में लाने और उसके द्वारा सम्पत्ति खड़ी करने जैसी गतिविधियों पर अंकुश लगाना है। इस अधिनियम के अन्तर्गत मनी लांडरिंग पर अंकुश के लिए मुख्य तीन उद्देश्य हैं –

(i) मनी लांडरिंग को रोकना,

(ii) मनी लांडरिंग से हासिल सम्पत्ति को जब्त करना और

(iii) मनी लांडरिंग से जुड़े दूसरे किसी भी मुद्दे को हल करना है।

इस नियम के अन्तर्गत अपराध सिद्ध होने पर 10 वर्ष तक की सजा और 5 लाख रूपये तक जुर्माने का प्रावधान है। अधिनियम के अन्तर्गत मनी लांडरिंग के मामले में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से शामिल होने के साथ-साथ ऐसी गतिविधि में मदद करने वाले को भी दण्डित किए जाने का प्रावधान है। इस अधिनियम में 2008 में संशोधन किए गए। जो फरवरी 2009 में स्वीकृति के पश्चात् लागू हो गए। इसमें अब अन्य विभिन्न सेवाओं एवं व्यापारों के साथ आतंकवादी गतिविधियों को भी सम्मिलित कर लिया गया है।

उल्लेखनीय है कि आर्थिक अपराधों पर अंकुश लगाने के लिए सभी बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं को 10 लाख या इससे अधिक सभी प्रकार के लेन-देनों की जानकारी देना आवश्यक होगा। इसी प्रकार एक कलेन्डर वर्ष

में इसी राशि के बराबर विदेशी मुद्रा के मामले में भी यही शर्त लागू होगी। शेयरों के लेन-देन और हस्तान्तरण के मामले भी सम्बन्धित मर्चेन्ट बैंकर व दूसरे संस्थानों को भी इस तरह की जानकारी उपलब्ध कराना होगी।

2.5.4 रूपये की परिवर्तनीयता

स्वर्णमान के अन्तर्गत स्वर्ण मुद्रा का कुछ शर्तों के अन्तर्गत मुक्त रूप से स्वर्ण में तथा स्वर्ण का स्थानीय मुद्रा में परिवर्तन किया जा सकता था। इस प्रकार की व्यवस्था के अन्तर्गत प्रचलित मुद्रा के संपरिवर्तन को ही मुद्रा की परिवर्तनीयता कहा जाता है। स्वर्णमान के समाप्त हो जाने के बाद वर्तमान में प्रचलित अपरिवर्तनीय पत्र मुद्रामान के अन्तर्गत मुद्रा की परिवर्तनीयता से अभिप्राय ऐसी व्यवस्था से है जिसके अन्तर्गत देश की मुद्रा मुक्त रूप से प्रमुख विदेशी मुद्राओं में तथा प्रमुख विदेशी मुद्रायें स्थानीय मुद्रा में मुक्त रूप से परिवर्तनशील हों।

वर्ष 1992-93 के बजट में उदारीकृत विनिमय दर प्रबन्ध प्रणाली को प्रस्तावित किया गया जिसके अन्तर्गत मार्च 1992 से दोहरी विनिमय दर प्रणाली लागू की गई। इसके अन्तर्गत निर्यातक अपनी विदेशी मुद्रा प्राप्तियों का 60 प्रतिशत खुले बाजार में निर्धारित विनिमय दर पर अधिकृत विदेशी मुद्रा डीलरों को बेच सकते थे और शेष 40 प्रतिशत का विक्रय भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित विनिमय दरों पर करना अनिवार्य था। साथ ही साथ केवल अत्यावश्यक आयातों के लिए ही विदेशी मुद्रा सरकार अधिकृत विनिमय दर पर उपलब्ध कराती थी जबकि अन्य आयातों के लिए खुले बाजार से ही आयातकों को विदेशी मुद्रा का प्रबन्ध करना होता था। 1993-94 में रूपये को व्यापार खाते में परिवर्तनीय बना दिया गया और खुले बाजार में एकीकृत विनिमय दर प्रणाली को देश में लागू कर दिया गया। 1994-95 के बजट में चालू खातों में रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता की घोषणा कर दी गई और अगस्त 1994 को भारतीय रिजर्व बैंक ने रूपये को चालू खाते में पूर्ण परिवर्तनीय घोषित कर दिया।

पूँजी खाते में रूपये को पूर्ण परिनर्तनीय बनाने हेतु रिजर्व बैंक के पूर्व डिप्टी गवर्नर एस.एस. तारापोर की अध्यक्षता में 1997 में एक विशेषज्ञ समिति गठित की गई जिसने तीन चरणों में रूपये को पूँजी खाते में पूर्ण परिवर्तनीय बनाने की सिफारिश की थी। इसके बाद पी.एस. मिस्त्री के नेतृत्व में गठित 15 सदस्सीय विशेषज्ञ दल ने भी 2008 तक रूपये को पूँजी खाते में पूर्ण परिवर्तनीय बनाने की सिफारिश की। किन्तु अपरिहार्य आर्थिक कारणों से अभी तक भी रूपये को पूँजी खाते में पूर्ण परिवर्तनीय नहीं बनाया गया है।

2.6 अभ्यास प्रश्न

लघु अभ्यास प्रश्न

1) विनिमय नियंत्रण को स्पष्ट कीजिए।

2) विनिमय नियंत्रण की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं?

3) विनिमय नियंत्रण के उद्देश्यों को संक्षेप में बताइए।

4) विनिमय प्रतिबंध को स्पष्ट कीजिए।

5) प्रशुल्क एवं गैर-प्रशुल्क नियंत्रण किस प्रकार विनिमय नियंत्रण में सहायक होते हैं?

2. एक पंक्ति या एक शब्द वाले प्रश्न

1) विनिमय नियंत्रण के तरीकों को किन दो भागों में विभाजित किया जाता है?

2) विनिमय नियंत्रण हेतु सरकारी विनिमय प्राधिकरण के रूप में कौन कार्य करता है?

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1) भारत में विदेशी विनिमय विनियमन अधिनियम वर्ष ..... में लागू किया गया।

2) वर्ष 1999 में 'फेरा' का स्थान ..... अधिनियम ने ले लिया।

3) भारत में 1 जुलाई 2005 से अधिनियम ..... लागू हो गया।

4) भारतीय रूपये को अगस्त 1994 में ..... में पूर्ण परिवर्तनीय बना दिया गया।

2.7 सारांश

आप परिचित हो गए होंगे कि विनिमय नियंत्रण के अन्तर्गत विदेशी विनिमय के स्वतंत्र लेन-देन को प्रतिबन्धित कर दिया जाता है। इसके अनेक स्वरुप हो सकते हैं जिनको प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष विधियों में बाँटा जा सकता है। प्रत्यक्ष विधियों में आपने मुख्य रूप से सरकारी हस्तक्षेप, विनिमय प्रतिबंध, विनिमय समाशोधन समझौते आदि और अप्रत्यक्ष विनिमय नियं त्रण के अन्तर्गत ब्याज दरों में परिवर्तन, प्रशुल्क व आयात कोटा, निर्यात सहायिकी का विस्तृत अध्ययन किया है।

विनिमय नियंत्रण का मुख्य उद्देश्य मुक्त विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दरों में होने वाले उच्चावचनों को रोकना और देश के भुगतान शेष को सन्तुलित बनाए रखना होता है। इस कार्य हेतु देश का केन्द्रीय बैंक सरकारी केन्द्रीय प्राधिकरण के रूप में कार्य करता है। इसके अतिरिक्त आप भारत में विदेशी विनिमय नियंत्रण हेतु बनाए गए विदेशी विनिमय विनियमन अधिनियम (फेरा), विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम (फेमा) और मनी लांडरिंग निरोधक अधिनियम के साथ ही रूपये की परिवर्तनीयता के सम्बन्ध में सरकार द्वारा किए गए प्रयासों से भी परिचित हो गए होंगे।

2.8 शब्दावली

- **विनिमय नियंत्रण**– विदेशी विनिमय के मुक्त लेन-देन पर प्रतिबंध।
- **बहु विनिमय दरें** – विभिन्न वस्तुओं के आयात व निर्यात हेतु निर्धारित अलग-अलग विनिमय दरें।
- **प्रशुल्क** – आयातों और निर्यातों पर लगाया जाने वाला अप्रत्यक्ष कर।
- **निर्यात सहायिकी** – निर्यातों में वृद्धि अथवा प्रोत्साहन हेतु निर्यात करों में छूट या निर्यात को दिया गया अनुदान।
- **'फेरा' (F.E.R.A.)** – विदेशी विनिमय विनियमन अधिनियम जिसका उद्देश्य विदेशी विनिमय का संरक्षण करना था।
- **'फेमा' (F.E.M.A.)** – विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम जिसने 'फेरा' का स्थान लिया।

- **मुद्रा की परिवर्तनीयता** – मुक्त रूप से देश की मुद्रा का प्रमुख विदेशी मुद्राओं में तथा प्रमुख विदेशी मुद्राओं का देश की मुद्रा में संपरिवर्तनीयता।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2. एक पंक्ति या एक शब्द वाले प्रश्न

1) प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष विनिमय नियंत्रण। 2) केन्द्रीय बैंक

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1) 1973 2) 'फेमा' 3) मनी लांडरिंग निरोधक अधिनियम 4) चालू खाता

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Mithani, D.M. (2010) "International Economics" Himalaya Publishing House, Mumbai.
- वैश्य, एम.सी. व सिंह, सुदामा (2002) "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" सप्तम संस्कण, आक्सफोर्ड एवं आई.बी.एच. पब्लिशिंग कं.प्रा.लि., नई दिल्ली।
- अग्रवाल एवं बरला (2008) "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र"लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- राणा, के.सी. व वर्मा, के.एन. (2012) "अंतरविदीय अर्थशास्त्र"विशाल पब्लिशिंग कं., जालन्धर।

2.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- झिंगन, एम.एल. (2011) "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" षष्टम संस्करण, वृंदा पब्लिशिंग प्रा. लि., दिल्ली।
- Salvatore, Dominick (1998) "International Economics" Sixth ed. Prentice Hall, New Jersey.
- Pugel, A. Thomas (2011) "International Economics" 13th ed. Tata McGraw Hill Educational Pvt. Ltd., New Delhi.
- Avadhani, V.A. (2012) "International Economics" Eighth Ed. Himalaya Publishing House, Mumbai.
- Krugman, Paul R. and Obstfeld, Maurice (2004) "International Economics" Sixth ed. Pearson Education, Delhi.
- Sodersten, B. and Reed, G. (2006) "International Economics" third ed., Macmillan Press Ltd., London.

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विनिमय नियंत्रण की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए इसके उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।
2. विनिमय नियंत्रण से क्या तात्पर्य है? विनिमय नियंत्रण की विभिन्न विधियों की संक्षेप में विवेचना कीजिए।
3. 'विनिमय नियंत्रण' से आप क्या समझते हैं? इसके गुण तथा दोषों पर प्रकाश डालिए।
4. विनिमय नियंत्रण की अप्रत्यक्ष विधियों का विवरण देते हुए बताइए कि वे किस सीमा तक प्रभावकारी हो सकती हैं?
5. मुद्रा की परिवर्तनीयता का अर्थ बताइए। रूपये की पूर्ण परिवर्तनियता के लिए भारत सरकार द्वारा उठाए गए कदमों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

इकाई-3 विदेशी विनिमय बाजार का सिद्धान्त विनिमय व्यापार, अन्तर-पणन एवं बाजार हैजिंग

(Theory of Foreign Exchange Market, Exchange Trade, Arbitrage and Market Hedging)

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 विदेशी विनिमय बाजार

3.3.1 विदेशी विनिमय बाजार का अर्थ

3.3.2 विदेशी विनिमय बाजार का ढाँचा

3.3.3 तत्काल और अग्रिम विनिमय दर

3.4 विदेशी विनिमय दर नीति

3.4.1 स्थिर विनिमय दर

3.4.2 नम्य विनिमय दर

3.4.3 मध्यवर्ती विनिमय दर

3.4.4 बहुविनिमय दर

3.4.5 आर्बिट्रेज, सट्टा एवं हेजिंग

3.5 अभ्यास प्रश्न

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों के अध्ययन से आप विदेशी विनिमय दर और विनिमय नियंत्रण अवधारणा से आप परिचित हो गए होंगे। विस्तारपूर्वक विवेचना की गई है। प्रस्तुत इकाई में विनिमय दर नीति के विभिन्न पहलुओं तथा समय-समय पर प्रचलित विनिमय दर नीतियों पर चर्चा की जाएगी।

सामान्यतया पूर्णतया नम्यशील विनिमय दरों के अन्तर्गत यह माना जाता है कि मौद्रिक प्राधिकारियों के सरकारी हस्तक्षेप के बिना विदेशी मुद्रा की मांग व पूर्ति के अन्तर्क्षेदन द्वारा विनिमय दर निर्धारित होती है। वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत मौद्रिक प्राधिकारी विनिमय दरों में अल्पकालीन उच्चावचनों को दूर करने हेतु हस्तक्षेप करते हैं। किन्तु ब्रेडनवुड्स प्रणाली के अन्तर्गत मौद्रिक प्राधिकारी विनिमय दर को अपनी मुद्रा के सममूल्य पर बनाए रखने हेतु विदेशी मुद्रा बाजार में हस्तक्षेप करते हैं। अतः अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में सरकार द्वारा किए जाने वाले हस्तक्षेप को समझने के लिए विदेशी मुद्रा बाजार के व्यवहारिक कार्यान्वयन का विश्लेषण करना आवश्यक है।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप यह समझ सकेंगे कि –

- ✓ विदेशी विनिमय बाजार का अर्थ व ढाँचा क्या है?
- ✓ विनिमय दर के विभिन्न रूप क्या हैं?
- ✓ समय-समय पर प्रचलित विभिन्न विनिमय दरों के गुण-दोष क्या रहे हैं?
- ✓ विदेशी मुद्रा बाजार का विभिन्न परिस्थितियों में कार्यान्वयन किस प्रकार होता है?
- ✓ विदेशी विनिमय बाजार व सम्बन्धित व्यावहारिक गतिविधियों का सम्पादन किस प्रकार होता है?

3.3 विदेशी विनिमय बाजार

3.3.1 विदेशी विनिमय बाजार का अर्थ

विदेशी विनिमय बाजार अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रणाली का एक महत्त्वपूर्ण भाग है। जब अलग-अलग देशों के बीच वाणिज्यिक एवं वित्तीय लेन-देनों का आदान-प्रदान होता है तब सम्बन्धित देशों को अपनी घरेलू मुद्राओं को आपस में बदलने की आवश्यकता है जिससे भुगतानों अथवा प्राप्तियों का निपटान किया जा सके। विदेशी विनिमय बाजार इस प्रकार की सुविधा प्रदान करता है। एक देश जब अन्य देश से वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग करता है तब वह उस देश की करेंसी की माँग विदेशी मुद्रा बाजार में करता है। इसके अतिरिक्त अन्य देशों में अल्पकालीन पूँजी प्रवाह अथवा दीर्घकालीन भौतिक एवं वित्तीय परिसम्पत्तियों में निवेश हेतु भी करेंसी का विनिमय करना आवश्यक है। इस प्रकार विदेशी विनिमय बाजार देशों के बीच व्यापारिक लेन-देनों एवं वित्तीय भुगतानों हेतु एक अभिन्न अंग होता है। अतः जिस बाजार में अंतर्राष्ट्रीय करेंसी का व्यापार किया जाता है उसे विदेशी विनिमय बाजार कहा जाता है।

3.3.2 विदेशी विनिमय बाजार ढाँचा

विदेशी विनिमय बाजार में प्रमुख भागीदार वाणिज्यिक बैंक, गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थायें (non-banking financial institution - NBFI), विदेशी विनिमय दलाल या अन्य अधिकृत सौदाकार और मौद्रिक प्राधिकारी होते हैं।

(1) **वाणिज्यिक बैंक** – वाणिज्यिक बैंक का विदेशी विनिमय बाजार में केन्द्रीय स्थान होता है क्योंकि अधिकांशतः प्रत्येक बड़े अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन में उधार एवं जमा हेतु बैंकों के विभिन्न वित्तीय केन्द्र सम्मिलित होते हैं। इस प्रकार विदेशी विनिमय लेनदेन में बैंकों में जमा विभिन्न करेंसियों का विनिमय में योगदान प्रमुखता से होता है। बैंक न केवल अपने ग्राहकों की आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु विदेशी विनिमय बाजार में प्रवेश करते हैं बल्कि अन्य बैंकों की विनिमय दरों को भी व्यक्त करते हैं जिस पर वह दूसरे बैंकों से करेंसी का क्रय अथवा विक्रय करते हैं। बैंकों के बीच इस प्रकार विदेशी करेंसियों का व्यापार अन्तर बैंक व्यापार कहलाता है। निगमित ग्राहकों (corporate customers) हेतु विनिमय दरों को **'फुटकर दरें'** कहा जाता है जो थोक अन्तरबैंक की अपेक्षा कम लाभप्रद होती है। इन दोनों दरों का अन्तर, बैंकों को इस व्यवसाय हेतु मिलने वाली क्षतिपूर्ति होती है।

(2) **गैर बैंक वित्तीय संस्थायें** – गैर बैंक वित्तीय संस्थायें अपने ग्राहकों को वर्तमान समय में अन्य सेवायें भी प्रदान करती हैं जिसमें विदेशी विनिमय लेन-देन भी शामिल है। संस्थात्मक निवेशक जैसे – पेन्शन फंड भी विदेशी करेंसियों का प्रायः व्यापार करते हैं।

(3) **विदेशी विनिमय दलाल** – विदेशी विनिमय दलाल बिचौलिए के रूप में विदेशी मुद्रा बाजार में विदेशी करेंसियों के क्रय-विक्रय करने में संलग्न होते हैं। जिसके लिए उन्हें कमीशन प्राप्त होता है।

(4) **मौद्रिक प्राधिकारी** – मौद्रिक प्राधिकारी अथार्त केन्द्रीय बैंक कभी-कभी विदेशी विनिमय बाजार में हस्तक्षेप करता है। यद्यपि इसका परिमाण बहुत अधिक नहीं होता है फिर भी इन लेन-देन का प्रभाव अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। विदेशी मुद्रा बाजार में संलग्न सभी भागीदार केन्द्रीय बैंक के निर्णयों के आधार पर भविष्य में विनिमय दरों को प्रभावित करने वाली समष्टि आर्थिक नीतियों के बारें में पूर्वानमुमान लगाकर विदेशी करेंसियों का कारोबार करते हैं।

उपर्युक्त के अतिरिक्त बहुराष्ट्रीय कारपोरेशन तथा स्वयं व्यक्तियों द्वारा भी विदेशी मुद्रा बाजार में आवश्यकतानुसार विदेशी विनिमय का लेन-देन किया जाता है। विदेशी विनिमय बाजार का मुख्य कार्य एक देश की करेंसी निधियों का दूसरी करेंसी में स्थानान्तरण करना है। साथ ही देशों के बीच व्यापार को वित्तपोषित करने हेतु विभिन्न उधार तरीकों – माँग ड्राफ्ट, विनिमय बिल, बैंकर्स चेक तथा तार द्वारा स्थानान्तरण आदि द्वारा अल्पकालीन उधार उपलब्ध कराना है। इसके अतरिक्त विदेशी विनिमय जोखिनों से सुरक्षा अथवा हैजिंग व सट्टा की सुविधा प्रदान करना होता है।

3.3.3 तत्काल एवं अग्रिम विनिमय दर

विदेशी विनिमय बाजार में दो प्रकार की विनिमय दरें होती हैं –

(1) **तत्काल विनिमय दर** – तत्काल विनिमय दर वह दर होती है जिस पर एक देश की करेंसी को दूसरे देश की करेंसी से वर्तमान अवधि में विनिमय किया जाता है। प्रायः सौदा होने के दो दिन बाद तक प्रभावी दर को तत्काल विनिमय दर कहा जाता है और ऐसे सौदों के लिए बाजार को तत्काल बाजार कहा जाता है।

(2) **अग्रिम विनिमय दर** – अग्रिम विनिमय दर होती है जिस पर भविष्य में विदेशी करेंसी का भुगतान किया जाता है। यह वह वास्तविक दर है जो भविष्य में विदेशी विनिमय खरीदने व बेचने के लिए वर्तमान में तय की जाती है। इस दर की विशेषता यह है कि सौदे के निपटारे का भुगतान वर्तमान में निर्धारित दरों के आधार पर भविष्य में किसी निश्चित तिथि को किया जाता है।

अग्रिम विनिमय दर तत्काल विनिमय दर के सन्दर्भ में निर्धारित की जाती हैं। यदि अनुबंध के समय अग्रिम विनिमय दर तत्काल दर के बराबर है तो यह अग्रिम दर सममूल्य पर कहलाएगी। जब अग्रिम दर तत्काल दर की तुलना में अधिक होती है अथार्त एक करेंसी दूसरी करेंसी की अधिक इकाईयाँ अग्रिम बाजार में खरीदती है तो अग्रिम विनिमय दर को अधिमूल्य पर कहा जाता है। इसके विपरीत जब अग्रिम दर तत्काल दर से कम होती है तो यह बट्टे पर कहलाती है। अतः तत्काल और अग्रिम दर का अन्तर अधिमूल्य (या प्रीमियम) और बट्टा पर (डिस्काउन्ट) कहलाता है जिसे प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। अग्रिम दर का निर्धारण अग्रिम विनिमय की मांग और पूर्ति के आधार पर होता है।

अग्रिम विनिमय में व्यापारिक बैंक भी लेन-देन करते हैं। वे विदेशी विनिमय में अपने कोषों का समायोजन करने के लिए स्वयं परिचालन करते हैं। इसके अन्तर्गत एक करेंसी को तत्काल बेचने या खरीदने के साथ उसी करेंसी को अग्रिम सुपुर्दगी के लिए खरीदने व बेचने की क्रिया सम्मिलित होती है जिससे विनिमय दरों में उतार-चढ़ाव के कारण होने वाले जोखिमों से बचा सके।

अग्रिम विनिमय दर के लाभ – अग्रिम विनिमय दर के लाभ निम्न लिखित हैं –

(1) **जोखिम से सुरक्षा** – अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न निर्यातक एवं आयातक अग्रिम विनिमय दरों के माध्यम से विनिमय दरों में होने वाले जोखिम से सुरक्षा प्राप्त करने हेतु व्यापारी जिस दिन माल का सौदा करते हैं उसी दिन निश्चित अवधि बाद उसके भुगतान अथवा प्राप्ति का भी सौदा कर लेते हैं।

(2) **निवेशकों का लाभ** – निवेशक अग्रिम विनिमय दर पर पहले ही विदेशी विनिमय की बिक्री कर देते हैं जिससे निवेश की राशि पहले ही तय हो जाती है। इसी प्रकार निवेश पर उन्हें जो लाभ प्राप्त होता है उसके लिए भी वे अग्रिम सौदे कर लेते हैं।

(3) **अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन** – अग्रिम विनिमय सौदों के कारण जोखिम कम होने से व्यापारी अधिक रूचि लेते हैं जिससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार प्रोत्साहित होता है।

(4) **विनिमय दरों में स्थायित्व** – अग्रिम विनिमय के सौदों के व्यवसायी अपने अनुभव, बाजार की तात्कालिक परिस्थितियों तथा मांग-पूर्ति के पूर्वानुमानों के आधार पर क्रय-विक्रय के सौदे करते हैं जिससे मांग-पूर्ति की शक्तियों में संतुलन के कारण विनिमय दरों में स्थिरता आती है।

(5) **रोजगार एवं आर्थिक विकास में वृद्धि** – अग्रिम विनिमय दरों से व्यापारियों को लाभ होते हैं और व्यवसायिक क्रियाओं में वृद्धि होती है। फलस्वरुप देश में रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है और आर्थिक विकास होता है।

(6) अग्रिम विनिमय दर की समस्यायें

अग्रिम विनिमय दर प्रणाली में निम्नलिखित समस्याओं का सामना करना पड़ता है –

(1) **विनिमय दर निर्धारण की समस्या** – अग्रिम विनिमय दर निर्धारण हेतु अनेक तत्वों (अग्रिम विनिमय की मांग व पूर्ति, बैंकों के पास विदेशी मुद्राओं के कोष, ब्याज दरों में अन्तर तथा सरकारी नियंत्रण आदि) के बारे में जानकारी प्राप्त होना आवश्यक है जोकि पूर्णरूप से सम्भव नहीं है।

(2) **भुगतान की तिथि निश्चित करने में कठिनाई** – अग्रिम विनिमय सौदों के सम्बन्ध में एक कठिनाई भुगतान प्राप्त करने की तिथि को निश्चित करने की है जिस दिन बैंकों से विदेशी विनिमय लेना होता है।

(3) **सट्टेबाजी को प्रोत्साहन** – तत्काल तथा अग्रिम विनिमय दरों में अन्तर होने के कारण विदेशी विनिमय में सट्टेबाजी को प्रोत्साहन मिलता है जिससे कभी-कभी विदेशी मुद्रा की कृत्रिम (artificial) कमी के कारण विदेशी व्यापार में रूकावट उत्पन्न हो जाती है।

(4) **सभी मुद्राओं में सौदे न होना** – प्रायः अग्रिम सौदे प्रमुख विदेशी मुद्राओं में ही किए जाते हैं जिससे अन्य मुद्राओं की विनिमय दरों में उच्चावचनों को दूर करने का कोई उपाय नहीं बचता है।

(5) **हानि की सम्भावना** – कभी-कभी भुगतान की तिथि से पूर्व ही विनिमय दरों में परिवर्तन के कारण व्यापारियों को हानि उठानी पड़ती है। इसके अतिरिक्त, अग्रिम विनिमय प्रणाली की सफलता हेतु स्वतंत्र विनिमय प्रणाली आवश्यक है, किन्तु वर्तमान समय में देशों द्वारा अग्रिम विनिमय पर कुछ न कुछ नियंत्रण अवश्य लगाए जाते हैं।

3.4 विदेशी विनिमय दर नीति

स्वर्णमान के अन्तर्गत विदेशी विनिमय दर स्थिर विनिमय दर नीति पर आधारित थी किन्तु विश्व युद्ध के दौरान विनिमय दर नीति अस्त-व्यस्त रही। ब्रेटनवुड्स प्रणाली के अन्तर्गत 1944 से 1973 की अवधि में पुनः स्थिर विनिमय दर नीति को अपनाया गया। 1973 के पश्चात् से नम्य विनिमय दर नीति प्रचलन में है। इस भाग में आप विदेशी विनिमय दर नीति से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं को समझ सकेंगे।

3.4.1 स्थिर विनिमय दर

स्थिर विनिमय दर वह है जिस पर मौद्रिक प्राधिकारी द्वारा निर्धारित दर पर सभी विदेशी विनिमय लेन-देन किए जाते हैं। यह दर मौद्रिक प्राधिकारी द्वारा स्वयं निर्धारित की जाती है अथवा करेंसी बाजार में हस्तक्षेप कर उसे स्थिर बनाए रखा जाता है। देश का मौद्रिक प्राधिकारी अर्थात केन्द्रीय बैंक विदेशी करेंसी का रिजर्व अपने पास रखता है जिससे विदेशी मुद्रा की पूर्ति एवं मांग के अनुसार उनका क्रय-विक्रय कर विनिमय दर को स्थिर बनाये रखा जा सके।

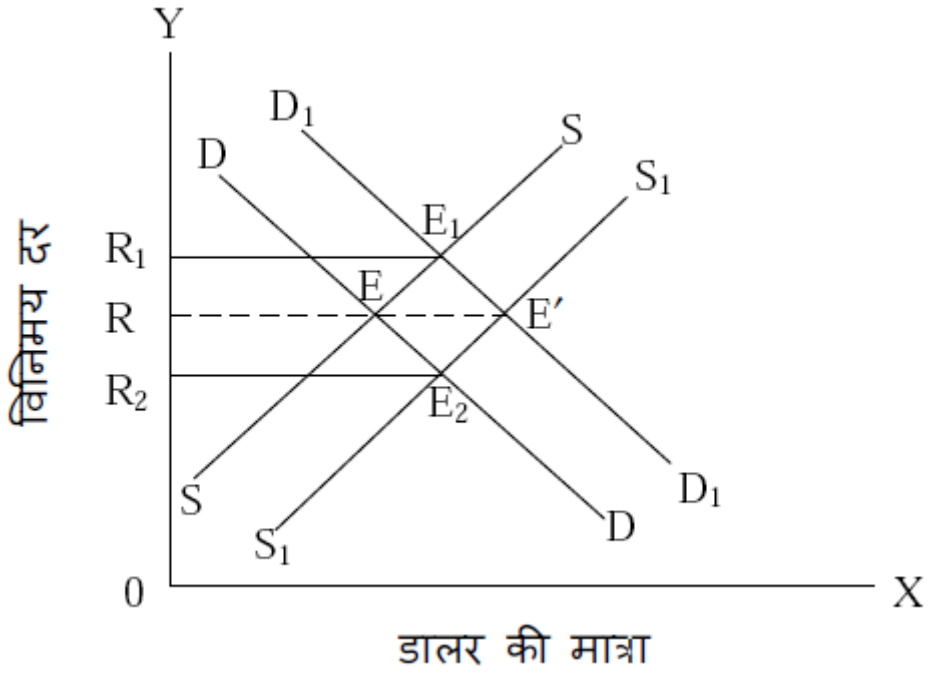

चित्र-3.1

चित्र-3.1 में विदेशी मुद्रा (डालर) का मांग वक्र DD तथा पूर्ति वक्र SS है जिसके द्वारा निर्धारित विनिमय दर OR है और केन्द्रीय बैंक इस दर को स्थिर बनाए रखना चाहता है। यदि देश में डालर की मांग बढ़ जाए तो नया मांग वक्र D_1D_1 हो जाएगा और डालर की पूर्ति यथावत् रहने पर विनिमय दर बढ़कर OR_1 हो जाएगी। ऐसी दशा में केन्द्रीय बैंक डालर की पूर्ति मुद्रा बाजार में तब तक बढ़ाता रहेगा जब तक S_1S_1 पूर्ति वक्र नये मांग वक्र D_1D_1 को E' पर नहीं स्पर्श करता और पूर्व विनिमय दर OR नहीं स्थापित हो जाती है। इसी प्रकार यदि विनिमय दर OR से घटकर OR_1 हो जाए तो केन्द्रीय बैंक डालर की मांग अर्थात क्रय तब तक करता रहेगा जबतक कि मांग वक्र D_1D_1 खिसक कर E बिन्दु पर न पहुँच जाए और विनिमय दर OR हो जाए।

स्थिर विनिमय दर के पक्ष में तर्क

स्थिर विनिमय दर के अन्तर्गत मौद्रिक प्राधिकारी द्वारा एक निर्धारित विनिमय दर पर उसे स्थिर बनाए रखा जाता है जिसके पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं –

1. **अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि** – स्थिर विनिमय दरों की स्थिति में अन्य देशों का विश्वास या साख सम्बन्धित करेंसी के प्रति बढ़ जाता है जिससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि होती है। साथ ही वस्तुओं एवं साधनों की कीमतों में भी स्थिरता आती है।
2. **सट्टे का प्रतिकूल प्रभाव नहीं** – इस प्रणाली के अन्तर्गत मौद्रिक प्राधिकारी सट्टे की क्रियाओं को रोकता एवं नियंत्रित करता है जिससे विदेशी मुद्रा बाजार में करेंसी का कृत्रिम अभाव उत्पन्न नहीं होता है।
3. **समान करेंसी क्षेत्र के लिए उपयुक्त** – यह प्रणाली समान करेंसी क्षेत्र (जैसे – यूरो क्षेत्र आदि) के लिए उपयुक्त हैं क्योंकि इन क्षेत्रों की स्थिर विनिमय दरें विश्व व्यापार की वृद्धि को प्रोत्साहित करती हैं। यह अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को भी प्रेरित करती है।

4. **मुद्रा एवं पूँजीबाजार में वृद्धि** – यह प्रणाली अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजार का विस्तार करती है जिससे अंतर्राष्ट्रीय पूँजी प्रवाह में वृद्धि होती है और मुद्रा व पूँजी बाजार का विकास होता है।
5. **व्यापार पर आश्रित देशों के लिए उपयुक्त** – ऐसे देशों जिनकी राष्ट्रीय आय में विदेशी व्यापार का योगदान अधिक है के लिए स्थिर विनिमय दर उपयुक्त होती है क्योंकि विनिमय दरों में उतार-चढ़ाव की स्थिति में घरेलू उत्पादन व व्यापार की दिशा में परिवर्तन होने का भय रहता है।
6. **आर्थिक स्थायित्व में सहायक** – यह प्रणाली कम स्फीतिकारी होती है जो आर्थिक स्थायित्व को बनाए रखने में सहायक है।

स्थिर विनिमय दर के विपक्ष में तर्क

स्थिर विनिमय दरों को निम्नवत् कारणों से उचित नहीं कहा जा सकता है –

1. **नियंत्रित एवं प्रतिबंधित व्यवस्था** – इस प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दर को स्थिर बनाए रखने हेतु विदेशी विनिमय के लेन-देन पर अनेक नियंत्रण एवं प्रतिबंध लगाए जाते हैं। जिससे दुर्लभ विनिमय का दोषपूर्ण आवंटन होता है और अदक्ष नौकरशाही व भ्रष्टाचार का जन्म होता है।
2. **विनिमय दर स्थिरता को प्राथमिकता** – इस प्रणाली के अन्तर्गत कीमत स्थिरता एवं पूर्ण रोजगार आदि उद्देश्यों की उपेक्षा होती है। यदि देश का भुगतान-शेष प्रतिकूल है तो इस प्रणाली के अन्तर्गत देश को इसे संतुलन स्थिति में लाने हेतु अवस्फीतिकारी नीति का सहारा लेना पड़ेगा जिससे देश में सुस्ती के कारण कीमतों में कमी एवं बेरोजगारी बढ़ेगी। इसके विपरीत अनुकूल भुगतान शेष की दशा में स्फीतिकारी नीति तेजी, कीमतों में वृद्धि व असमान वितरण को बढ़ावा देगी। उपर्युक्त दोनों स्थितियाँ आन्तरिक स्थायित्व हेतु हानिकारक हैं।
3. **प्रचुर विदेशी विनिमय की आवश्यकता** – विदेशी विनिमय दर को स्थिर बनाए रखने हेतु बड़ी मात्रा में विदेशी विनिमय की आवश्यकता होगी अन्यथा प्रतिकूल भुगतान शेष की दशा में देश को अवमूल्यन का सहारा लेना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त निष्क्रिय विदेशी विनिमय भण्डार देश के लिए अनार्थिक, अपव्ययी और लागत बढ़ाने वाला होता है।
4. **अल्पावधि के लिए उपयुक्त** – यह प्रणाली अल्पकाल के लिए उपयुक्त हो सकती है किन्तु दीर्घकाल में संरचनात्मक एवं प्रौद्योगिकीय परिवर्तन की दशा में स्थिर दरें अनुपयुक्त हो जाती हैं क्योंकि भुगतान संतुलन की स्थिति एवं वस्तुओं की अन्तर्राष्ट्रीय कीमतें इसमें परिवर्तन को आवश्यक बना देती हैं।
5. **अनैतिक व्यापार व्यवहार को प्रोत्साहन** – स्थिर विनिमय दरों के अन्तर्गत देश-विदेश के मूल्य-स्तर में अन्तर होना स्वाभाविक होता है जिससे तस्करी तथा अन्य अनैतिक व्यापारिक लेनदेनों को प्रोत्साहन मिलता है।
6. **मौद्रिक नीति की सफलता में संदेह** – केन्द्रीय बैंक विनिमय दर को स्थिर बनाए रखने हेतु जो मौद्रिक नीति अपनाता है उनकी सफलता संदेहास्पद होती है। विदेशी मुद्रा के क्रय के लिए खुले बाजार की क्रियाओं सम्बन्धी नीति स्थिर विनिमय दरों के कारण असफल हो जाती है।

3.4.2 नम्य विनिमय दर

नम्य विनिमय दर उन विनिमय दरों को कहा जाता है जो विदेशी विनिमय बाजार में विदेशी मुद्रा की मांग और पूर्ति की मुक्त एवं सापेक्षिक शक्तियों के द्वारा निर्धारित होती है और जो विदेशी मुद्रा की मांग एवं पूर्ति की शक्तियों में होने वाले परिवर्तनों के अनुरूप परिवर्तित होती रहती हैं।

इस प्रकार यदि किसी करेंसी की मांग उसकी पूर्ति की तुलना में अधिक होगी तो विनिमय दर ऊँची हो जाएगी। इसके विपरीत, करेंसी की पूर्ति अधिक होने पर उसकी विनिमय दर गिर जाएगी। यह बाजार शक्तियाँ स्वयं कार्यशील रहती हैं और मौद्रिक प्राधिकारी इसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करते हैं।

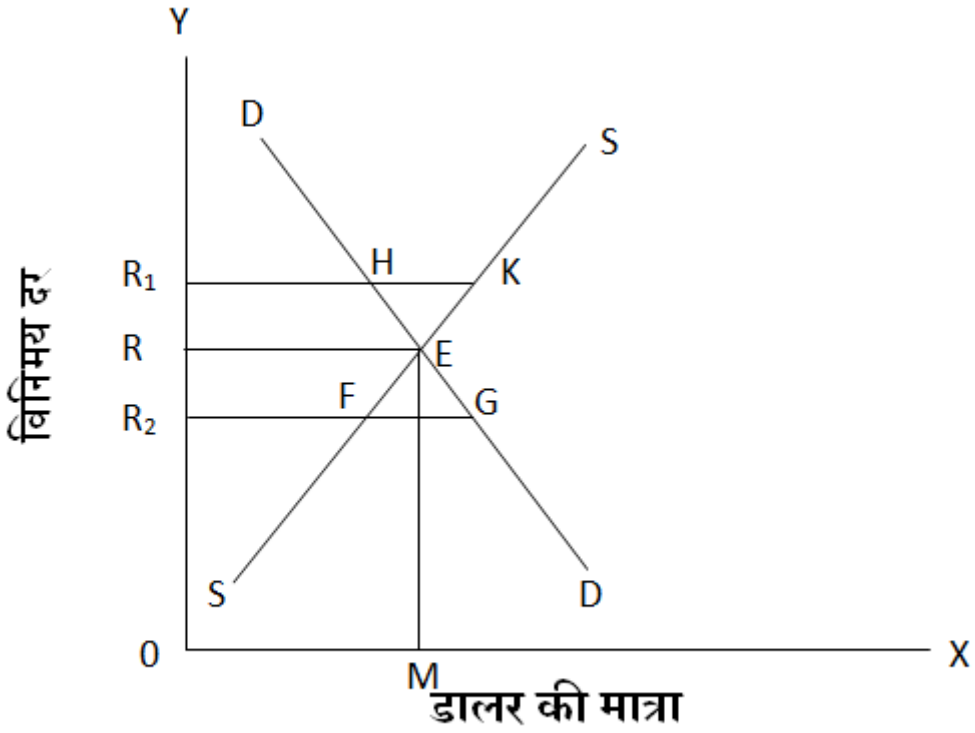

चित्र-3.2

चित्र-3.2 से स्पष्ट है कि विदेशी मुद्रा की मांग DD इसकी पूर्ति SS दोनों E बिन्दु पर आपस में बराबर हैं। अतः संतुलन विनिमय दर OR होगी। यदि विनिमय दर बढ़कर OR_1 हो जाती है तो डालर की मांग R_1H की तुलना में उसकी पूर्ति R_1K अधिक होगी जिससे विनिमय दर नीचे गिरकर पुनः OR हो जाएगी। इसके विपरीत, विनिमय दर कम होकर OR_2 हो जाने पर डालर की मांग R_2G उसकी पूर्ति R_2F की तुलना में अधिक होगी। फलस्वरुप विनिमय दर बढ़कर पुनः संतुलन स्थिति OR पर पहुँच जाएगी। अतः नम्य विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दरें स्वतः विदेशी करेंसी की मांग व पूर्ति द्वारा समायोजित होकर संतुलन की स्थिति में बनी रहती है।

नम्य विनिमय दरों के पक्ष में तर्क

विश्व की प्रमुख मुद्राओं में समय-समय पर आए संकट को देखते हुए नम्य विनिमय दरों के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं –

1. **सरल एवं स्वायत्त समायोजन** – नम्य विनिमय दर प्रणाली अत्यन्त सरल है क्योंकि विनिमय दर मुक्त रूप से स्वयं बदलती रहती है और विदेशी विनिमय बाजार निरन्तर समाशोधित होता रहता है।
2. **विदेशी विनिमय आरक्षिति की आवश्यकता नहीं** – इस प्रणाली के अन्तर्गत देश को विदेशी विनिमय आरक्षिति (रिजर्व) रखने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि संतुलन विनिमय दरें स्वतः समायोजित होती रहती हैं। फलस्वरुप अंतर्राष्ट्रीय तरलता की समस्या उत्पन्न नहीं होती है।
3. **घरेलू नीतियों में स्वायत्ता** – इस प्रणाली के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था में प्रतिबन्धों एवं नियंत्रणों की आवश्यकता नहीं होती है। फलस्वरुप सरकार आन्तरिक मामलों में स्वतंत्र आर्थिक नीति अपना सकती है। इसके अतिरिक्त, मौद्रिक नीति को भी प्रभावी रूप से अर्थव्यवस्था की अवश्यकतानुसार लागू किया जा सकता है।
4. **प्रतिकार का भय नहीं** – इस प्रणाली के अन्तर्गत अन्य देशों द्वारा किसी प्रकार के प्रतिकार का भय नहीं रहता है क्योंकि अवमूल्यन और आयात प्रशुल्क आदि प्रतिंबंध नहीं लगाए जाते हैं।
5. **मुक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संभव** – इस प्रणाली के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर किसी प्रकार के नियंत्रण नहीं होते हैं। अतः निर्बाध विदेशी व्यापार संभव होता है। साथ ही सीमा संघ (कस्टम यूनियन) तथा करेंसी क्षेत्र बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।
6. **मितव्ययी** – इस प्रणाली के अन्तर्गत विदेशी मुद्रा के निष्क्रिय धारणों की आवश्यकता नहीं होती है। इस दृष्टि से यह मितव्ययी होती है, किन्तु देश अपनी आवश्यकतानुसार विदेशी मुद्रा रिजर्वों का प्रयोग कर सकता है।

नम्य विनिमय दरों के विपक्ष में तर्क

नम्य विनिमय दरों के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं –

1. **विनिमय जोखिम एवं अनिश्चितता** – इस प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दरें निरन्तर बदलती रहती हैं और जब विनिमय दरें एक अनुमानित स्तर से बहुत अधिक ऊपर अथवा नीचे चली जाती हैं तो सम्बन्धित देशों को विनिमय जोखिम वहन करना पड़ता है। साथ ही अनिश्चितता बनी रहती है।
2. **भुगतान शेष में असंतुलन की संभावना** – नम्य विनिमय दरों के अन्तर्गत भुगतान शेष में असंतुलन बने रहने की संभावना बनी रहती है। यदि अल्पविकसित देशों का भुगतान शेष प्रतिकूल हो जाता है तो करेंसी के निरन्तर मूल्यह्रास के कारण व्यापार एवं विकास प्रक्रिया पर बुरा प्रभाव पड़ता है।
3. **स्फीतिकारी प्रभाव** – यदि किसी करेंसी का विनिमय ह्रास होता है तो आयातित सामानों की कीमतें बढ़ने के कारण लागतें बढ़ जाती हैं जिससे देश में स्फीतिक दशायें उत्पन्न हो जाती हैं। इस प्रकार के प्रभाव को राबर्ट ट्रिफिन ने **'रैचट प्रभाव'** कहा है।

4. **सट्टे को प्रोत्साहन** – नम्य विनिमय दरों पर सट्टे का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है क्योंकि सट्टे के कारण विनिमय दरों में उतार-चढ़ाव बहुत अधिक होते हैं।
5. **सरकारी हस्तक्षेप** – इस प्रणाली के अन्तर्गत सरकार मौद्रिक एवं राजकोषीय नीति के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से आयातों एवं निर्यातों को प्रभावित करती है।

3.4.3 मध्यवर्ती विनिमय दर

स्थिर एवं नम्य विनिमय दर प्रणालियाँ दो पूर्णतया चरम स्थितियाँ हैं। वास्तव में इन सीमाओं के बीच अनेक मध्यवर्ती अथवा मिश्रित विनिमय दर प्रणालियाँ समय-समय पर विभिन्न देशों द्वारा अपनायी गई हैं जिनका विवरण निम्नवत् है।

1. **समायोज्य कीलन प्रणाली** – इसके अन्तर्गत विनिमय दर को निश्चित समय के लिए स्थिर रखने का प्रयास किया जाता है। फिर भी यदि भुगतान शेष में घाटा अथवा अधिक्य बना रहता है तो विनिमय दरों का अवमूल्यन अथवा अधिमूल्यन द्वारा करेंसी का नीची अथवा ऊँची विनिमय दर पर कीलन किया जाता है। फलस्वरुप विनिमय दर में स्थिरता के साथ नम्यता बनी रहती है।

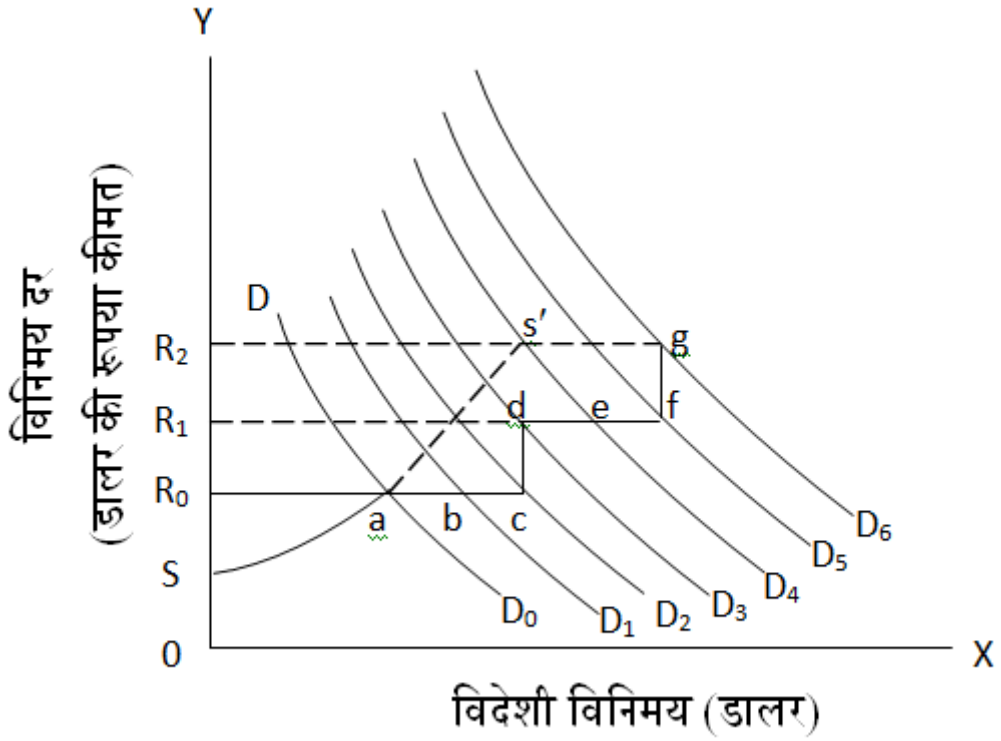

चित्र – 3.3

चित्र-3.3 में विदेशी विनिमय की मांग DD_0 तथा पूर्ति SS द्वारा निर्धारित संतुलन विनिमय दर OR_0 है। यदि विदेशी मुद्रा (डालर) की मांग बढ़कर D_1 व D_2 हो जाती है तो विनिमय दर को OR_0 पर कीलित रखने के लिए मौद्रिक प्राधिकारी विनिमय की पूर्ति हेतु ab व bc मात्रा में डालर की बिक्री करते हैं। किन्तु पुनः विनिमय की माँग बढ़कर D_3 हो जाने पर विनिमय दर बढ़कर OR_0 से OR_1 हो जाएगी और

पूर्तिवक्र लम्बवत c से d हो जाएगा। अब विनिमय दर को OR_1 पर कीलित रखने के लिए D_4 व D_5 विनिमय माँग की दशा में डालर की पूर्ति में de व ef मात्रा में वृद्धि की जाती है। फिर भी माँग के D6 हो जाने पर पूर्ति लम्बवत fg हो जाएगी और विनिमय दर बढ़कर OR_2 हो जाएगी। इस प्रकार समायोज्य कीलन प्रणाली में विनिमय का पूर्ति वक्र टेढ़े-मेढ़े आकार अथार्त **Sabcdefg** आकार का होगा।

यह प्रणाली स्फीति व मंदी को रोकने की दृष्टि से उपयोगी होती है। साथ ही इसमें विनिमय दरों में निरन्तर परिवर्तन की अनिश्चितता नहीं रहती है। किन्तु इसमें विदेशी विनिमय धारणों की आवश्यकता होती है और सट्टे की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है। इसके अतिरिक्त भुगतान शेष में घाटे अथवा अतिरेक दोनों स्थितियों में देश विनिमय दरों में परिवर्तन करने में रूचि नहीं रखते हैं।

2. **रेंगती कीलन प्रणाली** – इसके अन्तर्गत विनिमय दर में बड़े परिवर्तन करने की बजाय छोटी राशियों में निरन्तर साय-समय पर समायोजन किया जाता है। अतः मौद्रिक प्राधिकारी संतुलन विनिमय दर में धीरे-धीरे समायोजन करता रहता है। इसे रेंगने वाली कीलन अथवा सरकारी सममूल्य प्रणाली भी कहा जाता है।

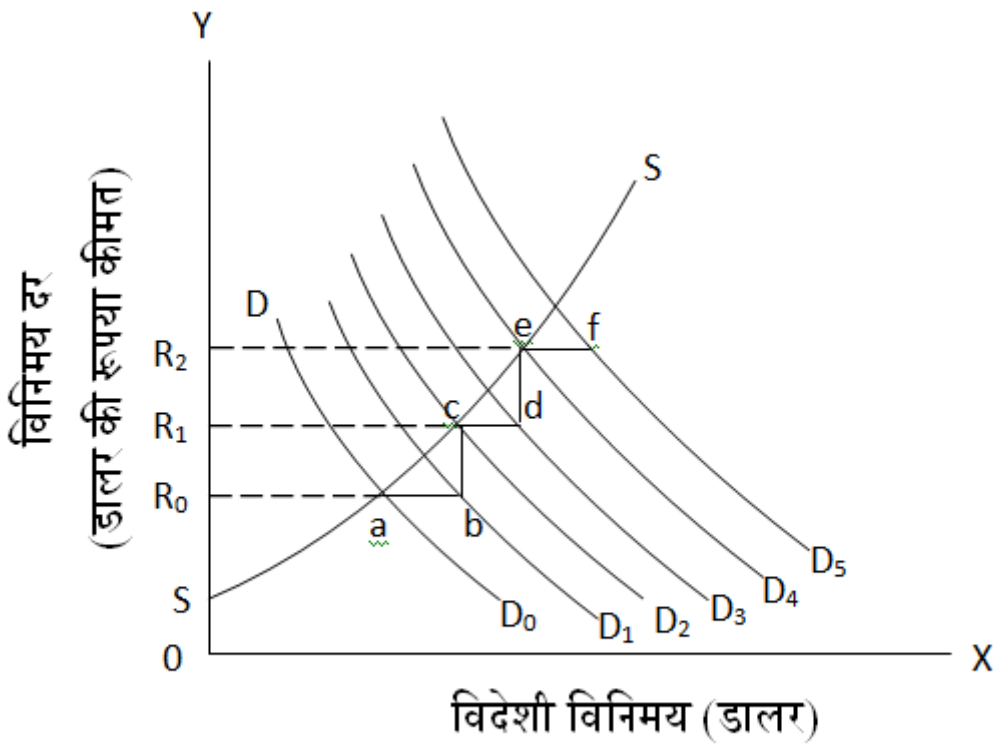

चित्र–4

चित्र-4 विदेशी विनिमय मांग वक्र DD_0 व पूर्ति वक्र SS के अन्तर्क्षेदन द्वारा संतुलन विनिमय दर OR_0 निर्धारित होती है। यदि विनिमय माँग बढ़कर D_1 हो जाती है तो मौद्रिक अधिकारी ab मात्रा में विदेशी मुद्रा (डालर) बेचकर उसे $0R_0$ विनिमय दर पर कीलित रखेगा। अब मांग D_2 बढ़ने पर विनिमय दर OR_1 हो जाएगी और पूर्ति वक्र bc अनुलंब होगा। फिर मांग वक्र D_3 बढ़ने पर डालर की पूर्ति cd

मात्रा में बढ़ाकर विनिमय दर OR_1 पर कीलित रखी गई है। पुनः मांग D_4 बढ़ने पर विनिमय दर बढ़कर OR_2 हो गई है जिसे D_5 मांग बढ़ने पर भी बनाए रखने के लिए ef राशि के बराबर डालर की बिक्री मौद्रिक प्राधिकारी द्वारा की गई है। इस प्रकार मौद्रिक प्राधिकारी माँग बढ़ने के साथ-साथ विदेशी मुद्रा की पूर्ति को धीरे-धीरे समायोजित करता है जैसा कि विदशी विनिमय के पूर्ति वक्र sabcdef के द्वारा प्रदर्शित है।

3. **प्रबंधित तिरती विनिमय दर प्रणाली** – प्रबंधित तिरती विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न देशों के मौद्रिक प्राधिकारी विनिमय दरों में अल्पकालीन उच्चावचनों को विनिमय दरों की दीर्घकालीन प्रवृत्तियों को प्रभावित किए बिना दूर करने का प्रयास करते हैं। अतः विदेशी विनिमय आरक्षिति की कुछ मात्रा की आवश्यकता होती है। इस प्रणाली के निम्नलिखित रूप होते हैं।

(i) स्वच्छ तिरण प्रणाली – इसके अन्तर्गत मौद्रिक प्राधिकारी के हस्तक्षेप के बिना विनिमय दर विदेशी मुद्रा की माँग व पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।

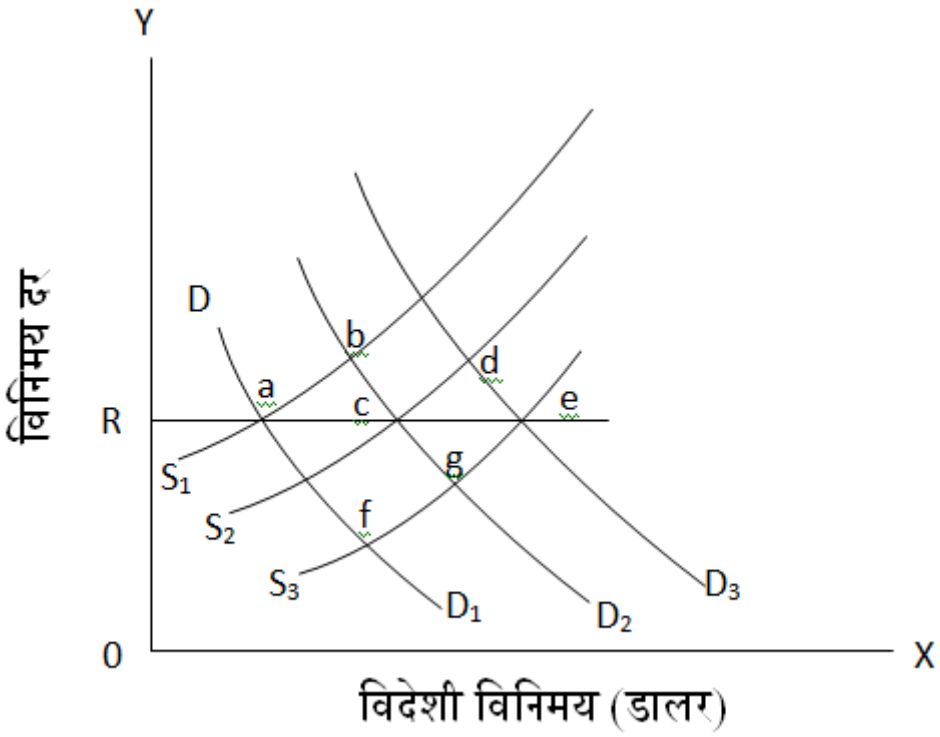

चित्र-3.5

चित्र-3.5 में विदेशी मुद्रा (डालर) का मूल माँग वक्र D_1 और पूर्ति वक्र S_1 के द्वारा विनिमय दर OR निर्धारित होती है। यदि भुगतान शेष में अतिरेक अथवा घाटा होता है तो विदेशी मुद्रा माँग व पूर्ति वक्र सरककर D_2S_2 और D_3S_3 हो जाते हैं। फलस्वरुप भुगतान शेष अतिरेक के कारण विनिमय दर abcde पथ पर ऊपर को जाती है। इसके विपरीत, भुगतान शेष में घाटे की दशा में यह नीचे की ओर afcge पथ पर चलती है। इस प्रकार दोनों स्थितियों में विनिमय दर OR के ऊपर-नीचे गति करती है।

(ii) गंदी तिरण प्रणाली – इस प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दर यद्यपि मुक्त रूप से निर्धारित होती हैं फिर भी इसमें तीव्र उतार-चढ़ाव को रोकने के लिए मौद्रिक प्राधिकारी विदेशी मुद्रा के क्रय-विक्रय द्वारा हस्तक्षेप करता है। चित्र-5 से स्पष्ट है कि मौद्रिक प्राधिकारी a से c और c से e तक विनिमय दर में परिवर्तन होने देता है। जब विदेशी मुद्रा की माँग बढ़ती है और माँग वक्र ऊपर की ओर खिसकता है तो मौद्रिक प्राधिकारी विदेशी मुद्रा को बेचता है। किन्तु जब विदेशी मुद्रा की पूर्ति बढ़ती है और पूर्तिवक्र दायी ओर ऊपर खिसकता है तो वह ac और ce के बराबर विदेशी मुद्रा खरीद लेता है। इस प्रकार मौद्रिक प्राधिकारी विनिमय दर को OR स्तर पर स्थिर रखता है।

(iii) विनिमय दर पट्टी – इस प्रणाली के अन्तर्गत करेंसी के संस्थापित मूल्य के ऊपर-नीचे विनिमय दर को घटने-बढ़ने दिया जाता है। किन्तु इस पट्टी से बाहर परिवर्तन की अनुमति नहीं होती है और ऐसी स्थिति में मौद्रिक प्राधिकारी द्वारा विनिमय दर को इस सीमा में बनाए रखने हेतु हस्तक्षेप किया जाता है। यह विनिमय दर पट्टी संकुचित अथवा विस्तृत हो सकती है।

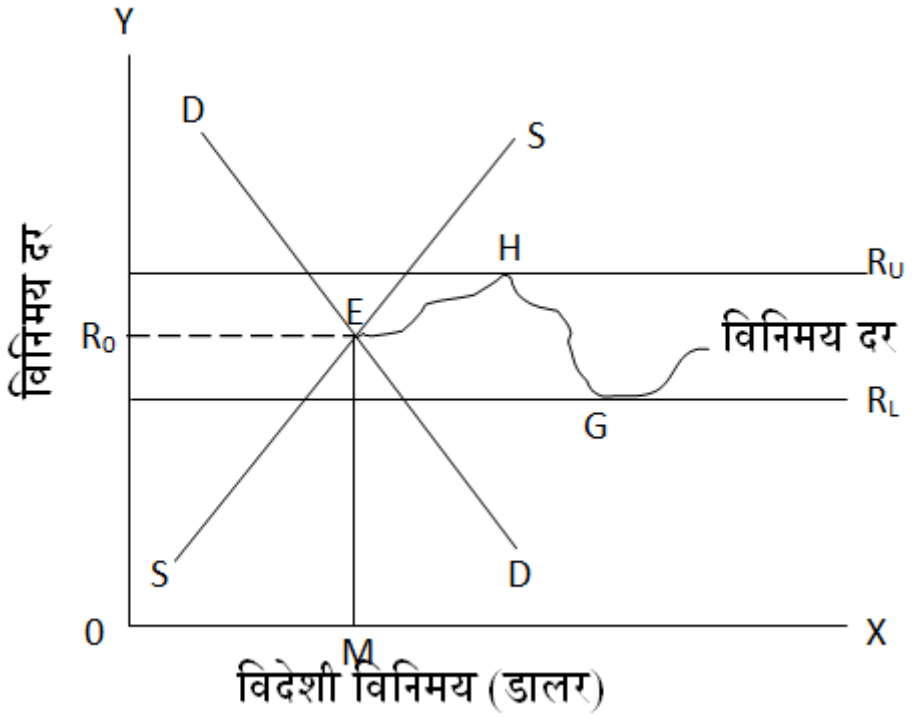

चित्र-3.6

चित्र-3.6 में विदेशी मुद्रा (डालर) की माँग व पूर्ति द्वारा निर्धारित विनिमय दर OR0 है जो विनिमय पट्टी की ऊपरी सीमा RU और निचली सीमा RL के बीच मुक्त रूप से परिवर्तित हो सकती है। यदि विनिमय दर H बिन्दु पर पहुँच जाती है तो मौद्रिक प्राधिकारी विनिमय दर को पट्टी में बनाए रखने के लिए डालर की पूर्ति अर्थात् बिक्री करेगा। इसके विपरीत विनिमय दर के G बिन्दु पर पहुँचने पर डालर की माँग अर्थात् क्रय करने लगेगा।

(iv)संयुक्त तिरण प्रणाली – इसके अन्तर्गत देशों का एक समूह अपनी करेंसियो के बीच एक समोज्य कीलन प्रणाली रखते हैं किन्तु दूसरे देशों के साथ संयुक्त तिरण प्रणाली का प्रयोग करते हैं।

यूरोपीय आर्थिक समुदाय के मूल सदस्यों ने 1972 में संयुक्त तिरण प्रणाली की भाँति एक विनिमय दर नीति अपनायी जिसे 'सुरंग में साँप' नीति कहा जाता है। इसके अन्तर्गत उन्होंने आपस में अपनी करेंसियों को 2.25% पट्टी के बीच घटने-बढ़ने की अनुमति दी किन्तु अन्य देशों की करेंसियों को 4.5% तक घटने बढ़ने की छूट प्रदान की थी।

3.4.4 बहु विनिमय दर प्रणाली

इसके अन्तर्गत एक देश आयात तथा निर्यात के लिए अलग-अलग विनिमय दर अपनाता है। इसके अतिरिक्त देश कुछ वस्तुओं अथवा देशों के लिए नियंत्रित विनिमय दरें तथा अन्य के लिए मुक्त विनिमय दरों को भी अपना सकता है। यद्यपि नियंत्रित विनिमय दरों में बहुत उतार-चढ़ाव नहीं होते हैं फिर भी उनकी अनेक श्रेणियाँ हो सकती हैं। इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य निर्यातों में वृद्धि तथा आयातों को न्यूनतम स्तर तक कम करना होता है जिससे अधिकतम विदेशी विनिमय अर्जित किया जा सके और प्रतिकूल भुगतान संतुलन की समस्या को हल किया जा सके।

बहु विनिमय दर प्रणाली के गुण

इस प्रणाली के मुख्य गुण निम्नलिखित हैं –

1. **भुगतान शेष असंतुलन को ठीक करना** – बहु विनिमय दर प्रणाली को अपनाकर एक देश अपने निर्यातों को बढ़ाकर अधिक विदेशी विनिमय अर्जित कर सकता है और आयातों को सीमित कर विदेशी विनिमय बचा सकता है। फलस्वरुप भुगतान शेष के असंतुलन को ठीक कर सकता है।
2. **अर्थ व्यवस्था का विविधीकरण** – यह प्रणाली अनुकूल विनिमय दरों द्वारा देश के उद्योगों में विविधीकरण लाती है और कमजोर उद्योगों को विदेशी प्रतिस्पर्धा से संरक्षण प्रदान करती है। साथ ही, यह नये निर्यात उद्योगों तथा रक्षा उद्योगों के विकास में भी सहायक होती है। इस प्रकार यह अर्थव्यवस्था का विविधीकरण कर उत्पादन, रोजगार तथा आय स्तर बढ़ाने में सहायक होती है।
3. **इच्छित पूँजी प्रवाह** – इस प्रणाली के माध्यम से देश ऊँची विनिमय दर द्वारा पूँजी के बहिर्गमन को रोक सकता है और नीची विनिमय दर द्वारा पूँजी के अन्तर्प्रवाह को बढ़ा सकती है। फलस्वरुप उपलब्ध विदेशी विनिमय का प्रयोग आवश्यक उत्पादन हेतु किया जा सकता है।
4. **जीवन स्तर में सुधार** – इसके अन्तर्गत आवश्यक उपयोग वस्तुएँ, कच्चा माल तथा पूँजीगत वस्तुओं आदि का आयात कम कीमतों पर किया जाता है जिससे लागत कम होने के कारण जीवन स्तर में सुधार होता है। यह प्रणाली कीमत स्थिरीकरण नीति में भी सहायक होती है।
5. **अनुकूल व्यापार शर्तें** – इस प्रणाली का प्रयोग निर्यात वस्तुओं की कीमतों को ऊँचा रखने तथा आयात वस्तुओं की कीमतों को नीचा रखने हेतु किया जाता है। फलस्वरुप व्यापार शर्तें देश के अनुकूल होती हैं।

बहु विनिमय दर प्रणाली के दोष

इस प्रणाली के निम्नलिखित दोष भी हैं –

1. **विभेदात्मक** – उसके अन्तर्गत वस्तुओं, उद्योगों तथा देशों के बीच भेद किया जाता है और एक ही वस्तु विभिन्न देशों को अलग-अलग दरों पर निर्यात की जाती है। फलस्वरुप अन्य देशों में बदले की भावना उत्पन्न होती है और व्यापारिक व राजनीतिक संबंध खराब हो जाते हैं।
2. **जटिल एवं बोझिल प्रणाली** – इसके अन्तर्गत एक बड़े प्रशासनिक ढाँचे की आवश्यकता पड़ती है जिससे प्रशासनिक अदक्षता, लालफीताशाही एवं भ्रष्टाचार का जन्म बोता है। इस दृष्टि से यह जटिल व बोझिल प्रणाली मानी जाती है।
3. **कालाबजारी** – इसके अन्तर्गत आयात हेतु विनिमय दर कम होने के कारण आयातक विदेशी विनिमय आयात के नाम पर क्रय कर लेते हैं और ऊँची विनिमय दर पर विदेशी मुद्रा बाजार में बेच देते हैं जिससे विदेशी मुद्रा की कालाबाजारी शुरू हो जाती है।
4. **घरेलू उद्योगों हेतु हानिकारक** – इसके अन्तर्गत कम दरों पर देश में आयात होने के कारण विदेशी प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं करना पड़ता जिससे उनकी कुशलता में वृद्धि नहीं हो पाती है। दूसरी ओर विनिमय दरों के अनुकूल होने के पूर्वानुमान में निर्यात माल अनुसूची बढ़ती चली जाती है जिससे संसाधनों का दुरुपयोग होता है।
5. **प्रभावी नीति नहीं** – देश के भुगतान शेष में सुधार हेतु यह नीति अन्य मात्रात्मक प्रतिबंधों की तुलना में कम कारगर है। इसके अतिरिक्त, इसकी सफलता हेतु आवश्यक शर्तों का पूरा होना आवश्यक है जैसे निर्यात एवं आयात की माँग व पूर्ति की लोच का ज्ञान, समायोजन हेतु लंबी समयावधि तथा पर्याप्त विदेशी विनिमय आदि।

3.4.5 आर्बिट्रेज, सट्टा एवं हेजिंग

1. आर्बिट्रेज –

विदेशी मुद्रा बाजारों में दो करेंसियों की विनिमय दर में अन्तर के कारण क्रमशः क्रय-विक्रय से लाभ अर्जित करने की क्रिया को **आर्बिट्रेज** कहा जाता है। यद्यपि यह क्रिया केवल दो बाजारों तक ही सीमित न होकर उससे अधिक बाजारों तक विस्तृत हो सकती है।

यदि दिल्ली में डालर-रूपया विनिमय दर डालर 1 = 55 रूपये है और यही दर न्यूयार्क में डालर 1 = 56 रूपये है तो बैंक दिल्ली में डालर का क्रय करके न्यूयार्क के बाजार में बेचकर एक रूपया प्रति डालर लाभ अर्जित करेंगे। इस प्रकार दिल्ली में रूपये की पूर्ति डालर की माँग की तुलना में बढ़ेगी जिससे विनिमय दर डालर के पक्ष में जाएगी। दूसरी ओर, न्यूयार्क में रूपये की माँग, डालर की तुलना में बढ़ेगी और विनिमय दर रूपये के पक्ष में हो जाएगी। इस प्रकार यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक विनिमय दर दोनों बाजारों में समान नहीं हो जाती है।

इसके अतिरिक्त ब्याज, आर्बिट्रेज उस क्रिया को कहा जाता है जब उच्च ब्याज दर के लाभ के उद्देश्य से विदेसी करेंसी का तत्काल दर पर क्रय कर उसे अग्रिम दर पर बेचा जाता है। विदेशी करेंसी के तत्काल क्रय के निवेश और विदेशी विनिमय जोखिम से बचने के लिए उसका तुरंत अग्रिम विक्रय आच्छादित ब्याज आर्बिट्रेज कहलाता है। इसके विपरीत स्थिति को आच्छादित ब्याज आर्बिट्रेज कहा जाता है। सामान्यतया ब्याज आर्बिट्रेज अनाच्छादित ही होता है।

2. सट्टा –

अग्रिम विनिमय बाजार की माँग और पूर्ति का एक स्रोत सट्टा भी है जिसके अन्तर्गत सट्टा करने वाला लाभ प्राप्ति की आशा में विदेशी विनिमय जोखिम लेता है। यह विदेशी करेंसी की अग्रिम दर की प्रत्याशा पर निर्भर करता है और भविष्य में तत्काल दर के विकास से सम्बन्धित होता है।

यदि सट्टा करने वाला यह अनुमान लगाता है कि विदेशी करेंसी की तत्काल दर घरेलू करेंसी की तुलना में आगामी 3 महीने में बढ़ जाएगी तो वह अग्रिम बाजार में विदेशी मुद्रा क्रय कर लेगा और इन तीन महीनों के बाद तत्काल दर पर बेच देगा। यदि उसका यह अनुमान सही निकलता है तो उसे लाभ प्राप्त होगा अन्यथा उसे हानि उठानी पड़ेगी।

इसके विपरीत, यदि वह अनुमान लगाता है कि अगले 3 महीनों में तत्काल दर गिर जाएगी तो वह अग्रिम बाजार में विदेशी करेंसी का का विक्रय इस आशा में करता है कि तीन महीने बाद तत्काल दर पर विदेशी करेंसी खरीद लेगा। पुनः यदि उसका पूर्वानुमान भावी तत्काल दर के बारे में सही निकलता है तो उसे लाभ होगा अन्यथा उसे हानि सहन करनी पड़ेगी।

विदेशी करेंसी में सट्टा घरेलू व विदेशी ब्याज दर विभेदक और भावी विनिमय दर में परिवर्तन की प्रत्याशा पर निर्भर करता है। सट्टा स्थिरात्मक व अस्थिरात्मक हो सकता है। स्थिरात्मक सट्टा वह होता है जब विदेशी करेंसी का निम्न दर पर क्रय इस आशा में किया जाता है कि शीघ्र ही इसमें वृद्धि होगी और लाभ होगा। इसी प्रकार विदेशी करेंसी का ऊँची दर पर विक्रय कि शीघ्र ही इसमें कमी हो जाएगी और हानि होगी। अतः इस प्रकार का सट्टा किसी समयावधि में विनिमय दरों में उच्चावचन को स्थिर रखने में उपयोगी होता है।

इसके विपरीत, अस्थिरात्मक सट्टा वह होता है जब विदेशी करेंसी की नीची विनिमय दर पर विक्रय इस आशा में किया जाता है कि भविष्य में इसकी विनिमय दर और नीचे गिर जाएगी अथवा विदेशी करेंसी का ऊँची दर पर क्रय कि भविष्य में इसकी विनिमय दर और बढ़ जाएगी। अतः इस प्रकार का सट्टा विनिमय दर में अधिक उच्चावचन को जन्म देता है जो निवेश एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रवाह को क्षति पहुँचाता है।

3. हेजिंग –

हेजिंग अग्रिम विनिमय दर से होने वाले जोखिम को दूर करने की क्रिया है। इसके अन्तर्गत वर्तमान में तय विनिमय दर पर भविष्य में विदेशी विनिमय के भुगतदान अथवा प्राप्ति का करार किया जाता है। सामान्यतया यह अवधि तीन महीने की होती है।

एक आयातक भविष्य में विनिमय दर में परिवर्तन से उत्पन्न जोखिम से बचने हेतु आयातित वस्तु के भुगतान के लिए वर्तमान में अग्रिम दर पर विदेशी विनिमय क्रय करता है जिसे वह तय अवधि के बाद

(सामान्यतया 3 महीने) भुगतान कर सके। इसी प्रकार निर्यातक वर्तमान में अग्रिम दर पर निर्यात से प्राप्त होने वाली राशि का विक्रय कर देता है जिसे वह तीन महीने पश्चात् निर्यात माल की सुपुर्दगी के समय प्राप्त कर सके।

हेजिंग क्रिया पूर्णतया लागत रहित नहीं होती है। अग्रिम विनिमय करार में अनेक लेनदेन लागतें निहित होती हैं। अतः निर्यातक व आयातक हेजिंग तभी करते हैं जब विनिमय दर जोखिम की तुलना में ये लागते कम होती हैं और वे कितनी जोखिम प्रतिकूल हैं।

3.5 अभ्यास प्रश्न

लघु प्रश्न

1) तत्काल विनिमय दर को बताइये।

2) स्थिर न नम्य विनिमय दरों में संक्षिप्त अन्तर बताइए।

3) समायोज्य एवं रेंगती कीलन प्रणाली में क्या अन्तर है?

4) सुरंग में सांप नीति क्या है?

5) सट्टा व हेजिंग में अन्तर बताइए।

6) निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

2. एक पंक्ति या एक शब्द वाले प्रश्न

1) विदेशी विनिमय बाजार के प्रमुख भागीदार कौन हैं?

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

(i) तत्काल विनिमय दरों के अन्तर्गत सामान्यतया भुगतान ..... दिनों में हो जाते हैं।

(ii) अग्रिम बाजार में विदेशी करेंसी को घरेलू करेंसी से तत्काल दर से कम में बदलना ..... कहलाता है।

(iii) अग्रिम बाजार में विदेशी करेंसी को घरेलू करेंसी की तुलना में तत्काल दर से अधिक में बदलना ..... कहलाता है।

(iv) अग्रिम विनिमय दर यदि तत्काल विनिमय दर के बराबर है तो वह ..... कहलाती है।

4. निम्नलिखित कथनों में से सही तथा गलत कथनों को छाँटिए -

(i) स्थिर विनिमय दर प्रणाली में मौद्रिक प्राधिकारी द्वारा विनिमय दर निर्धारण में हस्तक्षेप नहीं किया जाता है। **(सही/गलत)**

(ii) नम्य विनिमय दरें मुक्त रूप से बाजार शक्तियों द्वारा निर्धारित होती हैं। **(सही/गलत)**

(iii) अग्रिम विनिमय दर का निर्धारण तत्काल विनिमय दर के सन्दर्भ में किया जाता है। **(सही/गलत)**

(iv) हेजिंग का सम्बन्ध नम्य विनिमय दर नीति से होता है। **(सही/गलत)**

3.6 सारांश

विदेशी विनिमय बाजार में अंतर्राष्ट्रीय करेंसी का व्यापार होता है जिसके प्रमुख भागीदार वाणिज्यिक बैंक, गैर बैंक वित्तीय संस्थायें, विदेशी विनिमय दलाल या अधिकृत सौदाकार और मौद्रिक प्राधिकारी होते हैं। विदेशी विनिमय बाजार का मुख्य कार्य क्रय शक्ति का स्थानान्तरण एक देश और उसकी करेंसी का अन्य देशों को करना होता है। समस्त अंतर्राष्ट्रीय लेन-देनों का निपटान तत्काल और अग्रिम विनिमय दरों के आधार पर किया जाता है। चूँकि विनिमय दरों में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं जिससे विदेशी विनिमय का जोखिम बना रहता है।

अतः सम्बन्धित भागीदार अग्रिम विनिमय दरों के जोखिम से बचने के लिए हेजिंग का सहारा लेते हैं अथवा जोखिम उठाने हेतु क्रमशः सट्टा की क्रिया अपनाते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न विदेशी मुद्रा बाजारों में विनिमय दरों में अन्तर से लाभ अर्जित करने हेतु आर्बिट्रेज की क्रिया अपनायी जाती है।

स्थिर विनिमय दरों के अन्तर्गतच मौद्रिक प्राधिकारी एक तय स्तर पर विनिमय दर को स्थिर बनाए रखने का प्रयास करता है जबकि नम्य विनिमय दरों के अन्तर्गत मुक्त रूप से बाजार शक्तियों द्वारा परिवर्तन होता रहता है। अधिकांश देशों द्वरा इन दोनों प्रणालियों के मिश्रित रूप को अपनाया गया है। साथ ही समय-समय पर विभिन्न देशों में बहु विनिमय दरें भी प्रचलन में रही हैं।

3.7 शब्दावली

- **विदेशी विनिमय बाजार** – वह बाजार जहाँ विदेशी करेंसी का क्रय-विक्रय किया जाता है।
- **स्थिर विनिमय दर** – वह दर जिसे मौद्रिक प्राधिकारी हस्तक्षेप द्वारा एक तय स्तर पर बनाए रखने का प्रयास करता है।
- **नम्य विनिमय दर** – विदेशी करेंसी की मांग व पूर्ति के द्वारा मुक्त रूप से निर्धारित विनिमय दर।
- **तत्काल दर** – विदेशी व्यापार सौदों के भुगतान हेतु वर्तमान दर जो सामान्यतया सौदे के दो दिनों तक प्रभावी रहती है।
- **अग्रिम दर** – वह दर जो भविष्य में विदेशी विनिमय खरीदने व बेचने के लिए वर्तमान में तय की जाती है।
- **आर्बिट्रेज** – विदेशी करेंसी का नीची विनिमय दर वाले बाजार में क्रय और ऊँची विनिमय दर वाले बाजार में विक्रय।
- **सट्टा** –विनिमय दरों में होने वाले उतार-चढ़ाव के कारण लाभ अर्जित करने की आशा में विदेशी करेंसी का क्रय और विक्रय।
- **हेजिंग** – विनिमय दरों में उच्चावचन के कारण विदेशी विनिमय से होने वाले जोखिम को आच्छादित करने हेतु क्रिया। यह सट्टा के विपरीत होती है।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2. एक पंक्ति या एक शब्द वाले प्रश्न

1) वाणिज्यिक बैंक, गैर बैंक वित्तीय संस्थायें, दलाल या अधिकृत डीलर और मौद्रिक प्राधिकारी।

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

(i) 2 दिन, (ii) सट्टा, (iii) अधिमूल्य या प्रीमियम, (iv) सममूल्य पर

4. निम्नलिखित कथनों में से सही तथा गलत कथनों को छाँटिए -

(i) गलत, (ii) सही, (iii) सही, (iv) सही

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Salvatore, Dominick (1998) "International Economics" Sixth ed. Prentice Hall, New Jersey.
- Mithani, D.M. (2010). "International Economics" Himalaya Publishing House, Mumbai.
- वैश्य, एम.सी. व सिंह, सुदामा (2002). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" सप्तम संस्कण, आक्सफोर्ड एवं आई.बी.एच. पब्लिशिंग कं.प्रा.लि., नई दिल्ली।
- अग्रवाल एवं बरला (2008). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- राणा, के.सी. व वर्मा, के.एन. (2012). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" विशाल पब्लिशिंग कं., जालन्धर।

3.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- झिंगन, एम.एल. (2011). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" षष्टम संस्करण, वृंदा पब्लिशिंग प्रा. लि., दिल्ली।
- Pugel, A. Thomas (2011). "International Economics" 13th ed. Tata McGraw Hill Educational Pvt. Ltd., New Delhi.
- Avadhani, V.A. (2012). "International Economics" Eighth Ed. Himalaya Publishing House, Mumbai.
- Krugman, Paul R. and Obstfeld, Maurice (2004). "International Economics" Sixth ed. Pearson Education, Delhi.
- Sodersten, B. and Reed, G. (2006). "International Economics" third ed., Macmillan Press Ltd., London.

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्थिर विनिमय दर क्या है? इसके सापेक्षिक गुण-दोषों का वर्णन कीजिए।
2. नम्य विनिमय दरों को स्पष्ट कीजिए। यह स्थिर विनिमय दरों से किस प्रकार श्रेष्ठ है?
3. मध्यवर्ती अथवा मिश्रित विनिमय दर से क्या अभिप्राय है? इनके विभिन्न प्रकारों को संक्षेप में बताइए।
4. अग्रिम विनिमय दर क्या है? अग्रिम विनिमय दर से होने वाले लाभ तथा समस्याओं का उल्लेख कीजिए।

इकाई-4 भारत की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नीति सुधार पूर्व काल
(International Trade Policy of India during Post Reform Period)

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 भारत की विदेशी व्यापार नीति सुधार पूर्व काल

4.3.1 विदेशी व्यापार नीति का अर्थ

4.3.2 आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण कार्यनीति

4.3.3 1950 एवं 1960 के दशक में विदेशी व्यापार नीति

4.3.4 1970 एवं 1980 के दशक में विदेशी व्यापार नीति

4.4 भारतीय विदेशी व्यापार: 1950-1990

4.4.1 निर्यात-आयात स्थिति: 1950-51 से 1969-70

4.4.2 निर्यात-आयात स्थिति: 1970-71 से 1989-90

4.4.3 सुधार पूर्व काल में निर्यात-आयात संरचना

4.4.4 सुधार पूर्व काल में विदेशी व्यापार की दिशा

4.5 अभ्यास प्रश्न

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

विदेशी व्यापार नीति किसी भी देश की विकास कार्यनीति का एक महत्वपूर्ण अंग होती है। प्रसिद्ध **अर्थशास्त्री डी. एच. राबर्टसन** का कहना था कि ***'व्यापार विकास का एक इंजन है।'*** इसलिए भारतीय नीति निर्माता तथा अर्थशास्त्री सदैव आर्थिक विकास के उद्देश्य से व्यापार नीतियों को महत्त्वपूर्ण स्थान देते रहे हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति से सुधार पूर्व काल तक सामान्यतया सभी व्यापार नीति निर्माता यह मानते थे कि देश की व्यापार नीति शिशु उद्योगों को संरक्षण देने वाली होनी चाहिए जिससे औद्योगीकरण के द्वारा देश का तीव्र आर्थिक विकास किया जा सके। साथ ही लेविस प्राक्कल्पना कि विदेशी व्यापार से प्राथमिक वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों में गिरावट आती है, को भी अर्थशास्त्रियों द्वारा समर्थन मिला। किन्तु पचास के दशक से सत्तर के मध्य दशक तक के आँकड़ों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होने लगा था कि प्राथमिक वस्तुओं की व्यापार शर्तों में यद्यपि गिरावट आयी है किन्तु इनकी कीमतों में वृद्धि देखने को मिली है। ऐतिहासिक अनुभवों के आधार पर भारतीय विदेश व्यापार नीति में समय-समय यथोचित बदलाव किए गये जिससे देश के भुगतान शेष को संतुलित रखा जा सके और आर्थिक विकास की गति को बढ़ाया जा सके।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप यह समझ सकेंगे कि –

- ✓ विदेशी व्यापार नीति का अर्थ और उसके उपकरण क्या हैं?
- ✓ आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण कार्यनीति का औचित्य।
- ✓ विदेश व्यापार नीति में समय-समय पर होने वाले परिवर्तन।
- ✓ सुधार पूर्व काल में भारत के विदेशी व्यापार की प्रगति।

4.3 भारत की विदेशी व्यापार नीति सुधार पूर्व काल

4.3.1 विदेशी व्यापार नीति का अर्थ

देश के व्यापारिक वातावरण में अंतःक्षेप करने के लिए सरकार द्वारा अपनाये गए उपकरणों के समुच्चय को व्यापार नीति कहा जाता है। व्यापारिक वातावरण से अभिप्राय एक देश द्वारा विश्व के अन्य देशों के साथ विद्यमान व्यापारिक सम्बन्धों से होता है। उदाहरण के रूप में एक देश अन्य देशों से व्यापार के लिए अपनी सीमाओं को प्रतिबन्धित कर सकता है अथवा प्रतिबंधों से मुक्त कर सकता है। इसी प्रकार एक देश दूसरे देश अथवा देशों के एक समूह के साथ व्यापारिक व्यवस्था को अधिक प्रोत्साहन दे सकता है जबकि अन्य देशों अथवा देशों के समूह के साथ अपने व्यापारिक रिश्तों को प्रतिबंधित कर सकता है। विदेश व्यापार नीति के मुख्य उपकरण प्रशुल्क, कोटा, विनिमय नियंत्रण एवं निर्यात सहायिकी है जिनके माध्यम से एक देश की सरकार अपने आयातों अथवा निर्यातों को प्रतिबंधित अथवा प्रोत्साहित कर सकती है। आयातों को प्रतिबंधित करने के लिए एक देश अपने आयातों पर आयात शुल्क की दरें बढ़ा सकता है, आयात कोटा निश्चित कर सकता है आदि। इसी

प्रकार अपने निर्यातों को प्रोत्साहित या बढ़ाने के लिए देश निर्यातों को सहायिकी प्रदान कर उन्हें अधिक कीमत प्रतियोगी बना सकता है।

4.3.2 आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण कार्यनीति

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था प्राथमिक उत्पादों के निर्यात पर निर्भर थी। माँग की कीमत लोच तथा आय के निम्न होने के कारण निर्यातों की मात्रा में वृद्धि के बावजूद निर्यात प्राप्तियों में वृद्धि नहीं हुई क्योंकि इन उत्पादों की कीमतों में कमी आयी थी। दूसरी ओर, औद्योगीकरण हेतु आवश्यक पूँजीगत वस्तुओं की माँग में वृद्धि एवं इनकी कीमतों के ऊँची होने के कारण आयातों के भुगतानों में काफी वृद्धि हुई। इसलिए आर्थिक विकास की वृद्धि दर को बढ़ाने के लिए में वृद्धि हेतु किए गए प्रयासों से देश की व्यापार शर्तें तथा भुगतान संतुलन प्रतिकूल हो गया। ऐसी स्थिति में योजनाओं के निवेश में कमी करनी पड़ी जिसके आर्थिक विकास की दर को कम कर दिया। फलस्वरुप यह माना जाने लगा कि विकास प्राथमिक उत्पादों पर आधारित नहीं हो सकता और इसके लिए औद्योगीकरण का आधार विकसित करना आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त भारत जैसे अतिजनसंख्या वाले कृषि प्रधान देशों में खेती पर दबाव अधिक होने के कारण श्रम की उत्पादकता कम होने के साथ कृषि विकास की आशा भी कम है। इसलिए औद्योगीकरण ही एकमात्र विकल्प है जो इस अतिरिक्त श्रम-शक्ति को कृषि में उपयोग कर विकास की गति को बढ़ा सकता है।

इन तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रारम्भिक दशकों में भारत में आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण की कार्यनीति को अपनाया गया। नर्क्स का मानना था कि विकासशील देशों में माँग की कमी निवेश को सीमित कर देती है। किन्तु आयातों को यदि प्रतिबंधित कर दिया गया तो यह पूर्व में आयातित उत्पादों की माँग को उत्पन्न करेंगे और उद्यमी आयात प्रतिस्थापन उद्योगों में निवेश कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्रियों का मानना था कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व अर्थव्यवस्था धीमी गति से बढ़ेगी और विकसित देश पूर्व की भाँति व्यापार पर अनेक प्रतिबंध लगायेंगे, विशेषतया विकासशील देशों द्वारा निर्मित श्रम गहन वस्तुओं के निर्यात पर प्रतिबंध होंगे। साथ ही, इन देशों को अपनी श्रमशक्ति को विश्व बाजार के लिए कुशल व अधिक उत्पादक बनाने हेतु कुछ समय की आवश्यकता होगी। इन सभी कारणों की वजह से भारत में प्रारम्भिक दशकों में आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण की कार्यनीति को अपनाया गया।

आयातों को कम करने हेतु देश द्वारा मात्रात्मक प्रतिबंध लगाए गए। यह इस ओर संकेत करता है कि निवेशक संरक्षित उद्योगों में निवेश करने के लिए आकर्षित होंगे। इस कार्यनीति को लागू करने के लिए देश आयातों को सीमित करने हेतु प्रशुल्क का प्रयोग कर सकता है किन्तु इससे कीमतों में होने वाला उच्चावचन अनिश्चित हो सकता था। अतः अधिकांश देशों में उपभोग वस्तु उद्योगों में निवेश हेतु निजी क्षेत्र की भूमिका आयात प्रतिस्थापन कार्यनीति के सम्बन्ध में प्रमुख रही थी। इसके पीछे तर्क यह था कि अन्तर्देशीय निगमों द्वारा उत्पादित आयातित उपभोग वस्तुओं को यदि प्रतिबंधित कर दिया गया तो वे स्वयं विकासशील देशों में इन वस्तुओं का उत्पादन करने लगेंगे जिससे निवेश निधियों, प्रौद्योगिकी हस्तानान्तरण और उद्यमियों की कमी जैसी समस्याओं का पर्याप्त समाधान किया जा सकेगा।

4.3.3 1950 एवं 1960 के दशक में विदेशी व्यापार नीति

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय निर्यात उत्पादों एवं स्थानों दोनों दृष्टि से पूर्णतया केन्द्रीकृत थे। भारतीय निर्यातों में तीन प्राथमिक उत्पादों – कपास, जूट एवं चाय का हिस्सा लगभग 70 प्रतिशत था और भारत इन वस्तुओं का एक प्रमुख निर्यातक देश था। इसलिए विश्व निर्यातों में इनकी हिस्सेदारी में वृद्धि बहुत कठिन थी। साथ ही भारत के लगभग 60 प्रतिशत निर्यात केवल संयुक्त ब्रिटेन को किए जाते थे। इसके अतिरिक्त देश में निर्मित वस्तुओं का विकास अत्यन्त सीमित था। प्रथम पंचवर्षीय योजना तथा द्वितीय योजना के आरंभिक वर्षों से पूँजीगत वस्तुओं तथा निवेश वृद्धि के कारण सरकारी बजट में हुए घाटे को पूरा करने हेतु सरकार विदेशी विनिमय आरक्षिति पर निर्भर थी। किन्तु द्वितीय योजना के अंत तक विदेशी विनिमय आरक्षिति के क्षय हो जाने के साथ देश में भुगतान शेष संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई। अतः इस अवधि से तृतीय योजना की समाप्ति तक सरकार विदेशी सहायता के द्वारा निवेश एवं भुगतान शेष घाटे को वित्तपोषित करती रही। द्वितीय एवं तृतीय योजना के दौरान विदेशी सहायता देश के सकल घरेलू उत्पाद के लगभग 3 प्रतिशत तथा भारतीय निवेश के 25 प्रतिशत तक पहुँच गई थी।

अतः सरकार ने विदेशी विनिमय आरक्षिति की उपलब्धता के अनुरूप आयातों पर सख्त मात्रात्मक प्रतिबंध की व्यवस्था को लागू किया। अब केवल उन्हीं आवश्यक वस्तुओं के आयात की अनुमति थी जिन्हें देश में उत्पादित नहीं किया जाता था। इसके बावजूद भुगतान शेष का विशाल घाटा नियंत्रित नहीं किया जा सका और सरकार ने भुगतान शेष घाटे को कम करने के लिए निर्यातों में वृद्धि हेतु नीतिगत परिवर्तन किए। इसके अन्तर्गत निर्यातों को सहायिकी प्रदान की गई और इनकी विभिन्न दरें रखी गई। साथ ही आयात शुल्कों में काफी वृद्धि की गई। इस अवधि में भारत की व्यापार नीति अत्यन्त जटिल एवं प्रतिबंधित थी।

आयात नीति में प्रगतिशील कठोरता 1957 से ही दृष्टिगत होने लगी थी। सामान्य खुला लाइसेंस (पाकिस्तान से आयातित कुछ उत्पादों को छोड़कर) स्थगित कर दिया गया फिर भी 1952-56 की अवधि में वास्तविक आधार पर आवश्यक वस्तुओं के आयात की अनुमति आयातकों को प्रदान की गई। इस अवधि में qकोई नया लाइसेंस निर्गत नहीं किया गया और पूँजीगत वस्तुओं के स्थगित भुगतान आधारित आयात लाइसेंस को सख्त बना दिया गया। फलस्वरुप आयातों में अधिक कमी आयी जिससे 1959-60 में भुगतान शेष की स्थिति पूर्व वर्षों की तुलना में बेहतर हुई। निर्यातों पर मात्रात्मक प्रतिबंधों को कम करने की नीति जारी रही और कुछ मदों जैसे तिलहन एवं तेल के लिए निर्यात कोटा को उदारीकृत किया गया। इसके अतिरिक्त नवीन बाजारों की खोज शुरू रही और उनके पूर्वी यूरोपिय देशों के साथ व्यापार स्तर को बढ़ाने का प्रयास किया गया।

1960-61 के वर्ष में खाद्यान्न, कच्ची कपास एवं धातुओं के आयात का हिस्सा महत्वपूर्ण था जिससे सरकारी एवं निजी दोनों क्षेत्रों के निर्यातों में वृद्धि हुई। इसी अवधि में 12 निर्यात प्रोत्साहन परिषदों की सम्बन्धित क्षेत्रों में स्थापना की गई और विशिष्ट निर्यात निर्यात योजना का भी निर्माण एवं क्रियान्वयन किया गया। वर्ष 1964-65 में पुनः भुगान शेष पर दबाव देखने को मिला क्योंकि ऋण सेवा भार में वृद्धि, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को पुनर्भुगतान, खाद्य आयात एवं विकास हेतु वस्तुओं के आयात में वृद्धि हुई।

1964-65 में देश में पड़े भीषण सूखे एवं 1965 के भारत पाकिस्तान युद्ध के कारण विदेशी सहायता बन्द कर दी गई थी और घरेलू कीमत स्तर अंतर्राष्ट्रीय कीमतों की तुलना में काफी बढ़ गया था जिससे विदेशी विनिमय की कमी उत्पन्न हो गई। साथ ही विदेशी व्यापार नीतियों में आयात लाइसेंसिंग व्यवस्था अत्यन्त कठोर थी। औद्योगिक क्षेत्र में सरकारी उपक्रमों का प्रभुत्व था और निजी क्षेत्र पर अनेक प्रतिबंध थे। इस कठोर प्रशासनिक व्यवस्था को **'लाइसेसिंग राज'** का नाम दिया। 1966 में भारतीय रूपये का अवमूल्यन किया गया जिससे निर्यातों में वृद्धि हो और विदेशी विनिमय की कमी को दूर किया जा सके।

4.3.4 1970 एवं 1980 के दशक में विदेशी व्यापार नीति

भारत में 1970 दशक के अंतिम वर्षों एवं 1980 के प्रारम्भिक वर्षों में व्यापार व्यवस्था जटिल लाइसंसिग प्रणाली पर आधारित थी और विदेशी व्यापार नीति में प्रशुल्क के स्थान पर कोटा पर बल दिया गया। यद्यपि कोटा लाइसेंसिंग हेतु दो नियम प्रमुख थे। प्रथम, आवश्यकता का नियम और द्वितीय, घरेलू अनुपलब्धता का नियम। खुला सामान्य लाइसेंस श्रणी में सूचीबद्ध वस्तुओं को छोड़कर लगभग सभी वस्तुओं के आयात का एकाधिकार राज्य व्यापार निगमों को उपर्युक्त नियमों के अन्तर्गत प्राप्त था। पूँजीगत वस्तुएँ दो श्रेणियों में विभाजित की ओ0जी0एल0 श्रेणी एवं प्रतिबंधित श्रेणी। इसी प्रकार मध्यवर्ती वस्तुएँ – निषिद्ध प्रतिबंधित, सीमित स्वीकृति तथा ओ0जी0एल0 श्रेणियों में विभाजित थी। उपभोक्ता, वस्तुओं का आयात पूर्णतया प्रतिबंधित था। केवल अनिवार्य उपभोक्ता वस्तुएँ ही सरकारी अभिकरणों के द्वारा आयातित की जा सकती थी।

1980 दशक के मध्य में निर्यातों में वृद्धि दर देखने में मिली। किन्तु निर्यातों ती तुलना में आयातों में वृद्धि अधिक हुई जिससे भुगतान संतुलन की स्थिति प्रतिकूल बनी रही। निर्मित क्षेत्र में आयत नियंत्रण कठोर थे और औद्योगिक प्रौद्योगिकी का आधूनिकीकरण करना आवश्यक हो गया था। फलस्वरुप 1980 दशक के मध्य से उदारीकरण की प्रक्रिया धीमे व अस्पष्ट रूप से शुरू हो गई। यद्यपि निर्यातों में वृद्धि हेतु अनेक प्रोत्साहन दिए गए और आयातों को सीमित रखा गया फिर भी भुगतान संतुलन की स्थिति इतनी प्रतिकूल थी कि विदेशी विनिमय की राशि मात्र एक माह के आयात बिलों के भुगतान हेतु ही पर्याप्त थी।

1977-78 की आयात-निर्यात नीति में आयातों पर नियंत्रण धीरे-धीरे व निरन्तर कम होने लगे थे। ओ0जी0एल0 श्रेणी के अन्तर्गत 1976 में आयातित वस्तुओं की संख्या 78 से बढ़कर 1988 में 1188 हो गई थी। इसी प्रकार मध्यवर्ती वस्तुएँ जो पूर्व में प्रतिबंधित अथवा सीमित स्वीकृति के साथ आयात की जा सकती थी उन्हें ओ0जी0एल0 श्रेणी के अन्तर्गत आयात करने की अनुमति प्राप्त हो गई। किन्तु इन सभी के आयात की अनुमति देश में इनके उत्पादन न होने की दशा में ही प्राप्त थी। अतः पूँजीगत एवं मध्यवर्ती वस्तुओं के स्थापित उत्पादकों में प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो गई। 1987-88 तक निर्मित वस्तुओं पर प्रशुल्क की दरें लगभग 140-160 प्रतिशत तक पहुँच गई थी।

1985 के अन्त से आयातों पर मात्रात्मक प्रतिबंधों पर आधारित संरक्षण व्यवस्था प्रशुल्कों की ओर परिवर्तित हो गई। प्रौद्योगिकीय आधुनिकीकरण को प्रोत्साहित करने हेतु पूँजीगत लस्तुओं के आयातों में और छूट प्रदान की गई। निर्यातों को बढ़ाने के लिए निर्यातकों को अनेक प्रोत्साहन दिए गए और प्रशासनिक व्यवस्था को इसके अनुरूप सुव्यवस्थित किया गया। विशिष्ट उत्पाद आधारित आयात लाइसेंस-विक्रीय की दुबारा पूर्ति के

आवंटन को निर्यातकों हेतु अधिक सुगम बना दिया गया। आयातित अदाओं पर दी जाने वाली प्रशुल्क छूट को सभी आयातित अदाओं तक विस्तारित कर सभी निर्यातकों को देय बना दी गई।

भारत में विदेश व्यापार नीति तैयार करने का दायित्व वाणिज्य मंत्रालय का है। फिर भी निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न स्वायत्त निकायों जैसे – निर्यात प्रोत्साहन परिषद पण्य बोर्ड, भारतीय विदेश व्यापार संस्थान आदि से भी नीति निर्माण हेतु सुझाव लिए गए। 1985 के पूर्व तक निर्यात-आयात नीति वाणिज्य मंत्रालय द्वारा प्रत्येक वर्ष के लिए घोषित की जाती थी। किन्तु विदेश व्यापार को निश्चितता प्रदान करने हेतु 1985 में तीन वर्षीय निर्यात-आयात नीति की घोषणा की गई जिसे 1992 में बढ़ाकर पाँच वर्ष कर दिया गया।

4.4 भारतीय विदेश व्यापार: 1950 से 1990

1950 में भारत का कुल विश्व निर्यातों में हिस्सा 1.85 प्रतिशत और विश्व आयातों में 1.71 प्रतिशत था। साथ ही भारत के निर्यातों एवं आयातों का कुल विश्व व्यापार में हिस्सा 1.78 प्रतिशत था। 1980 में निर्यातों, आयातों एवं कुल विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा घटकर क्रमशः 0.42 प्रतिशत, 0.72 प्रतिशत तथा 0.57 प्रतिशत रह गया था। यह आँकड़े प्रदर्शित करते हैं कि विश्व व्यापार में भारत का प्रदर्शन अच्छा नहीं रहा है जिसका कारण भारत की अत्यंत प्रतिबंधात्मक नीतियाँ रही हैं। 1980 के बाद से विदेश व्यापार पर प्रतिबंधों में कमी आई है। फलस्वरुप विश्व व्यापार में निर्यातों एवं आयातों में वृद्धि हुई है और इनका प्रतिशत भी बढ़ा है।

4.4.1 निर्यात-आयात स्थिति: 1950-51 से 1969-70

इस अवधि में भारत के निर्यातों एवं आयातों में कुछ उतार-चढ़ाव के साथ स्थिरता की स्थिति बनी रही जिसे तालिका 4.1 से आप समझ सकते हैं।

तालिका 4.1भारत के निर्यात-आयात की प्रवृत्ति: 1950-51 से 1969-70

(मिलियम अमरीकी डालर)

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार शेष	निर्यातों से आयातों का अनुपात
1950-51	1269	1273	–4	0.996
1951-52	1490	1852	–362	0.805
1952-53	1212	1472	–260	0.823
1953-54	1114	1279	–166	0.871
1954-55	1233	1456	–223	0.847
1955-56	1275	1620	–345	0.780
1956-57	1259	1750	–491	0.719
1957-58	1171	2160	–989	0.542
1958-59	1219	1901	–682	0.641
1959-60	1343	2016	–674	0.666
1960-61	1346	2353	–1007	0.572
1961-62	1381	2281	–900	0.605

1962-63	1437	2372	–935	0.606
1963-64	1659	2558	–899	0.649
1964-65	1701	2813	–1111	0.605
1965-66	1693	2944	–1251	0.575
1966-67	1628	2923	–1295	0.557
1967-68	1586	2656	–1071	0.598
1968-69	1788	2513	–726	0.711
1969-70	1866	2089	–223	0.893

स्रोतः वाणिज्यिक आसूचना एवं सांख्यिकी महानिदेशक, कोलकाता।

उपर्युक्त तालिका 4.1 से स्पष्ट है कि भारत के निर्यात 1950-51 में 1269 मिलियन अमरीकी डालर से बढ़कर 1969-70 में 1866 मिलियम अमरीकी डालर हो गए हैं। इसी अवधि में आयातों की मात्रा 1273 मिलियन डालर से बढ़कर 2089 मिलियन डालर हो गई है जबकि व्यापार शेष का घाटा 4 मिलियन डालर से बढ़कर 223 हो गया है। इसी प्रकार नियातों से आयातों का अनुपात जो 1950-51 में 0.996 था वह 1969-70 में घटकर 0.893 रह गया। आप यदि व्यापार शेष घाटे पर दृष्टि डालें तो देखेंगे कि उक्त अवधि में यह सर्वाधिक वर्ष 1966-67 था जबकि यह 1950-51 में न्यूनतम था। इसी प्रकार निर्यातों से आयातों का अनुपात सर्वाधिक वर्ष 1950-51 में था और न्यूनतम वर्ष 1957-58 में था।

इसके अतिरिक्त, इस अवधि में निर्यातों में वार्षिक चक्रवृद्धि दर 1.8 प्रतिशत थी जिसके कारण आयात प्रतिस्थापन पर बल तथा निर्यात प्रोत्साहन उपायों का अभाव था। दूसरी ओर आयातों में वृद्धि 4 प्रतिशत वार्षिक दर से हुई। 1950 के मध्य से 1960 के मध्य तक आयातों में वृद्धि तुलनात्मक रूप से ठीक रही क्योंकि औद्योगीकरण पर अधिक बल दिया गया, विशेषतया तृतीय पंचवर्षीय योजना से सार्वजनिक उपक्रमों को स्थापित किया गया। किन्तु यह प्रवृत्ति अधिक समय तक विद्यमान नहीं रही और व्यापार संतुलन के गहन संकट के कारण रूपये का 1966 में अवमूल्यन करना पड़ा। अतः लाइसेंसिंग प्रणाली के साथ आयात नियंत्रण काल को अधिक कठोर बनाया गया। तालिका 4.2 में निर्यातों और आयातों की उक्त अवधि में वृद्धि दरों को व्यक्त किया गया है।

तालिका 4.2 निर्यात, आयात, व्यापार शेष और वृद्धि दरेः 1950-51 से 1969-70

(मिलियन अमरीकी डालर एवं प्रतिशत में)

अवधि	निर्यात	आयात	व्यापार शेष	निर्यात वृद्धि दर	आयात वृद्धि दर
1950-51 से 1954-55	6318	7332	–1014	5.24 (0.63)	4.88 (6.75)
1955-56 से 1959-60	6267	9447	–3180	1.88 (1.70)	7.34 (7.2)
1960-61 से 1964-65	7524	12377	–4853	4.96 (5.00)	7.08 (7.22)
1965-66 से 1969-70	8561	13125	–4564	2.04 (12.62)	–5.48 (5.30)

स्रोतः आर्थिक सर्वेक्षण, 2010

नोटः 1) निर्यातों में पुनर्निर्यात भी शामिल हैं।

2) निर्यात-आयात पाँच वर्षों का कुल योग है और औसत प्रतिवर्ष वृद्धि दरें हैं।

3) कोष्ठक में रूपये के सन्दर्भ में वृद्धि दरें हैं।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारत विश्व व्यापार में 7.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि दर के अवसर से लाभ उठाने में असफल रहा क्योंकि भारत का निर्यात इस अवधि में प्राथमिक उत्पादों तक ही सीमित रहा और घरेलू उद्योग लाइसेंसिंग प्रणाली द्वारा प्रतिबंधित थे। साथ ही स्थापित सार्वजनिक उपक्रम शिशु अवस्था में था और आधुनिकीकरण किया जाना अत्यंत कठिन था। भारतीय रूपये के 1966 में अवमूल्यन के बाद निर्यातों में वृद्धि-दर डालर एवं रूपये दोनों के सन्दर्भ अधिक रही जबकि इसके पूर्व वर्षों में विपरीत स्थिति रही थी।

4.4.2 निर्यात-आयात स्थिति: 1970-71 से 1989-90

आप इस तथ्य से परिचित हो गए होंगे कि इससे पूर्व अवधि में व्यापार शेष की स्थिति निरन्तर प्रतिकूल बनी रही थी। 1970 के अंत तक व्यापार शेष की दशा में तुलनात्मक रूप से सुधार हुआ। सरकार ने आयात उदारीकरण हेतु कुछ उपायों को शुरू किया। इसके अन्तर्गत 1980 के मध्य से आयात नियंत्रण में ढील देना, एकाधिकारी नियंत्रण को उदार बनाना, प्रौद्योगिकीय उन्नयन व आधुनिकीकरण की दृष्टि से पूँजीगत वस्तुओं के आयात को उदारीकृत करना, मात्रात्मक नियंत्रण के स्थान पर प्रशुल्क लगाना, निर्यातों को सहायिकी और सक्रिय विनिमय दर ह्रास नीति को अपनाना आदि अनेक महत्वपूर्ण उपायों का अपनाया गया। तालिका 4.3 में इस अवधि में भारत के निर्यातों एवं आयातों की प्रवृत्ति को व्यक्त किया गया है।

तालिका 4.3 भारत के निर्यात-आयात की प्रवृत्ति: 1970-71 से 1989-90

(मिलियन अमरीकी डालर)

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार शेष	निर्यातों से आयातों का अनुपात
1970-71	2031	2162	–131	0.939
1971-72	2153	2443	–290	0.881
1972-73	2550	2415	134	1.056
1973-74	3209	3759	–549	0.854
1974-75	4174	5666	–1492	0.737
1975-76	4665	6084	–1420	0.767
1976-77	5753	5677	77	1.013
1977-78	6316	7031	–715	0.898
1978-79	6978	8300	–1322	0.841
1979-80	7947	11321	–3374	0.702
1980-81	8486	15869	–7383	0.535
1981-82	8704	15174	–6470	0.574
1982-83	9107	14787	–5679	0.616
1983-84	9449	15311	–5861	0.617
1984-85	9878	14412	–4534	0.685
1985-86	8904	16067	–7162	0.554
1986-87	9745	15727	–5982	0.620
1987-88	12089	17156	–5067	0.705

1988-89	13970	19497	–5526	0.717
1989-90	16612	21219	–4607	0.783

स्रोतः वाणिज्यिक आसूचना एवं सांख्यिकी महानिदेशक, कोलकाता।

उपर्युक्त तालिका 4.3 से आपको ज्ञात हो गया होगा कि भारत के निर्यात वर्ष 1985-86 को छोड़कर इस अवधि में बढ़ते रहे हैं जबकि आयातों में उतार-चढ़ाव के साथ वृद्धि होती रही है। इसी अवधि में वर्ष 1972-73 एवं 1976-77 के वर्षों में भारत का व्यापार शेष क्रमशः 134 मिलियन अमरीकी डालर व 77 मिलियन अमरीकी डालर अनुकूल रहा है जबकि शेष वर्षों में यह प्रतिकूल रहा है। इसी प्रकार निर्यातों से आयातों का अनुपात भारत में जहाँ वर्ष 1972-73 में अपने उच्चतम स्तर (1.056) पर था वहीं वर्ष 1985-86 यह अपने निम्नतम स्तर (0.554) पर आ गया था। इसी प्रकार उक्त अवधि में व्यापार का कुल परिमाण 1970-71 में 4193 मिलियन अमरीकी डालर से बढ़कर 1989-90 में 37831 मिलियन अमरीकी डालर हो गया था।

तालिका 4.4 में इस अवधि में निर्यातों, आयातों , व्यापार शेष और वृद्धि दरों को प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 4.4 निर्यात, आयात, व्यापार शेष और वृद्धि दरेः 1970-71 से 1989-90

(मिलियन अमरीकी डालर एवं प्रतिशत में)

अवधि	निर्यात	आयात	व्यापार शेष	निर्यात वृद्धि दर	आयात वृद्धि दर
1970-71 से 1974-75	14117	16445	–2328	17.82 (19.18)	24.36(25.70)
1975-76 से 1979-80	31659	38413	–6754	13.86(14.36)	15.80(15.76)
1980-81 से 1984-85	45624	75553	–29929	4.46(12.98)	6.16(13.94)
1985-86 से 1989-90	61320	89666	–28346	11.62(19.76)	8.18(15.92)

स्रोतः आर्थिक सर्वेक्षण, 2010

नोटः 1) निर्यातों में पुनर्निर्यात भी शामिल हैं।

2) निर्यात-आयात पाँच वर्षों का कुल योग है और औसत प्रतिवर्ष वृद्धि दरें हैं।

3) कोष्ठक में रूपये के सन्दर्भ में वृद्धि दरें हैं।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि उक्त पंचवर्षीय अवधि में व्यापार शेष निरन्तर प्रतिकूल बना रहा है। यद्यपि निर्यातों में वृद्धि हुई है किन्तु आयातों में वृद्धि निर्यातों की तुलना में सदैव अधिक रही है। इसी प्रकार 1985-86 से 1989-90 की अवधि में केवल निर्यातों की वृद्धि दर आयातों की तुलना में अधिक रही है जो इस अवधि में विदेश व्यापार में वृद्धि हेतु अपनाये गए महत्वपूर्ण उपायों का परिणाम है।

4.4.3 सुधार पूर्व काल में निर्यात-आयात संरचना

किसी देश की विदेशी व्यापार की संरचना से आप समझ सकते हैं कि एक देश अन्य देशों के साथ किन वस्तुओं का आयात एवं निर्यात करता है। इससे देश के आर्थिक विकास के स्तर के साथ अर्थव्यवस्था में होने वाले संरचनात्मक परिवर्तन के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त होती है।

1950 के दशक में कृषि एवं उससे सम्बन्धित उत्पादों का भारतीय निर्यातों में बाहुल्य था और इनका हिस्सा 32.75 प्रतिशत था। निर्मित उत्पादों जैसे – कपास सम्बन्धी वस्तुएँ, जूट, बोरी व कपड़े आदि का 38.85

प्रतिशत तथा खनिजों – कोयला, अभ्रक, मैंगनीज जैसी कच्ची धातुओं का हिस्सा 3.6 प्रतिशत था। 1960 के दशक से कृषि एवं उससे सम्बन्धित उत्पादों का निर्यातों में हिस्सा तेजी से कम होने लगा। किन्तु समुद्री उत्पादों के निर्यात में वृद्धि जारी रही है। इसी प्रकार 1950-51 में निर्मित वस्तुओं का कुल निर्यातों में हिस्सा लगभग 39 प्रतिशत था जो 1960-61 में बढ़कर 45.4 प्रतिशत और आर्थिक सुधारों से ठीक पूर्व 1990-91 में 72.9 प्रतिशत हो गया। तालिका 4.5 में सुधार पूर्व काल भारत के निर्यातों की संरचना को प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 4.5 भारतीय निर्यातों की संरचना

(प्रतिशत में)

	उत्पाद /वर्ष	**1950-51**	**1960-61**	**1970-71**	**1980-81**	**1990-91**
1	कृषि एवं सम्बन्धित उत्पाद	24.61	44.28	31.71	30.65	19.41
1.1	कॉफी	–	1.10	1.62	3.19	0.78
1.2	चाय एवं अन्य सहायक	13.38	19.32	9.65	6.34	3.29
1.3	खाद्य तेल एवं खली	4.23	2.15	3.59	1.86	1.87
1.4	तम्बाकू	–	2.52	2.12	2.10	0.81
1.5	काजू गिरी	1.43	2.97	3.74	2.09	1.37
1.6	मसाले	3.42	2.67	2.51	0.17	0.73
1.7	चीनी एवं खाँड	–	4.46	1.92	0.59	0.12
1.8	कच्ची कपासट	0.83	1.86	0.94	2.46	2.60
1.9	चावल	–	–	0.34	3.33	1.42
1.10	मछली व उससे बने उत्पाद	–	0.74	1.92	3.23	2.95
1.11	मांस व उसके उत्पाद	–	0.15	0.20	0.82	0.43
1.12	फल एवं सब्जियाँ, दालें व काजू गिरी, प्रसंस्करित खाद्य व रसों को सम्मिलित कर	–	0.97	0.79	1.19	0.66
1.13	मिश्रित प्रसंस्करित खाद्य (प्रसंस्करित खाद्य रसों को सम्मिलित कर)	–	0.15	0.30	0.53	0.65
2	अयस्क एवं खनिज	3.59	8.81	10.68	6.16	4.60
2.1	लौह अयस्क	–	2.67	7.63	4.53	3.22
3	विनिर्मित वस्तुएँ	46.05	45.32	50.27	55.83	72.92
3.1	बुना हुआ वस्त्र एवं अन्य निर्मित वस्त्र (हस्तनिर्मित कालीन को छोड़कर)	19.72	11.37	9.45	13.89	20.98
3.1.1	कपास सूत, वस्त्र, निर्मित आदि	–	10.10	9.26	6.08	6.45
3.1.2	बुने कपड़े से तैयार सभी वस्त्र	–	–	1.92	8.20	12.32
3.2	नारियल की जटा व उससे निर्मित	–	0.96	0.84	0.26	0.15
3.3	जूट निर्मित उत्पाद	18.15	21.03	12.41	4.91	0.92
3.4	चमड़ा व चमड़ा उत्पाद	5.85	4.38	5.22	5.81	7.99

3.5	हस्तशिल्प (हस्तनिर्मित कालीन को सम्मिलित कर)	–	1.71	4.73	14.19	18.94
3.5.1	रत्न व आभूषण	–	–	2.90	9.22	16.12
3.6	रासायनिक पदार्थ व संबन्धित उत्पाद	–	1.1	1.92	3.47	6.48
3.7	मशीनरी, परिवहन, धातुनिर्मित वस्तुएँ (लोहा व इस्पात को शामिल कर)	–	3.42	12.85	12.31	11.89
4	खनिज तेल एवं चिकनाईयुक्त तेल (कोयले को सम्मिलित कर)	–	1.1	0.84	0.41	2.91

स्रोतः विभिन्न भारतीय रिजर्व बैंक हस्तपुस्तिकाए।

नोटः 1950-51 में अयस्क व खनिज में कोयला, अभ्रक एवं मैंगनीज शामिल हैं 1960-61 से कोयला को सम्मिलित नहीं किया गया है।

तालिका 4.5 से स्पष्ट है कि सुधार पूर्व काल में भारतीय परम्परागत निर्यातों में जैसे – चाय, कपास,लौह अयस्क एवं कृषि उत्पादों का हिस्सा कम हुआ है। देश में औद्योगीकरण के विस्तार के साथ इंजीनियरिंग वस्तुओं, रासायनिक पदार्थों, विनिर्मित वस्त्रों एवं चमड़ा उत्पादों के निर्यात में वृद्धि हुई है। इस अवधि में रत्न एवं आभूषणों के निर्यात में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है जो 1970-71 के 2.90 प्रतिशत से बढ़कर 1980-81 व 1990-91 में क्रमशः 9.22 प्रतिशत व 16.12 प्रतिशत हो गयी थी।

भारतीय आयातों को मुख्यतया उपभोक्ता वस्तुओं एवं उत्पादक वस्तुओं में वर्गीकृत किया जा सकता है। उपभोक्ता वस्तुओं में अनाज, दालें व आटा प्रमुख थीं। इसी प्रकार कच्चे माल में कच्ची कपास, तेल व कच्चा जूट मुख्य मदें थी। पूँजीगत वस्तुओं के अन्तर्गत मशीनरी, इलैक्ट्रानिक वस्तुएँ, धातु, लोहा व इस्पात उत्पाद सम्मिलित थे। स्वतंत्रता के प्रारम्भिक वर्षों में भारतीय विदेश व्यापार के आयातों का स्वरुप उपनिवेशवादी ही था जो बाद के वर्षों में धीरे-धीरे परिवर्तित हुआ है। तालिका 4.6 में सुधार पूर्वकाल में आयातों की संरचना को प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 4.6 भारतीय आयातों की संरचना

(प्रतिशत में)

	उत्पाद /वर्ष	**1950-51**	**1960-61**	**1970-71**	**1980-81**	**1990-91**
1	खाद्य एवं जीवित पशु (कच्चे काजू को छोड़कर)	15.48	19.08	14.85	3.03	–
1.1	अनाज व उसेस बनी चीजें	12.96	16.15	13.04	0.80	0.42
2.	कच्चा सामान व मध्यवर्ती विनिर्मीत	36.57	46.96	54.39	77.77	59.25
2.1	काजू (गैरप्रसंस्करित)	–	–	1.80	0.07	0.31
2.2	कच्ची रबड़ (कृत्रिम व पुनः प्राप्त रबड़)	–	0.98	0.23	0.25	0.52
2.3	रेशे	23.85	9.01	7.77	–	–
2.3.1	2.3.1 कृत्रिम पुनर्सृजित रेशे (मानव निर्मित रेशे)	–	–	0.56	0.77	0.13

2.3.2	कच्ची ऊन	0.90	0.08	0.93	0.35	0.42
2.3.3	कच्ची कपास	16.17	7.31	6.06	–	–
2.3.4	कच्ची जूट	4.42	0.72	–	0.01	0.05
2.4	पेट्रोलियम, तेल, स्नेहक	6.65	6.16	8.33	41.94	25.04
2.5	पशु एवं शाकाहारी तेल	–	0.42	2.36	–	–
2.5.1	खाद्य तेल	–	0.34	1.43	5.40	0.76
	उत्पाद /वर्ष	1950-51	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91
2.6	उर्वरक एवं रासायनिक उत्पाद	3.53	7.86	13.23	–	–
2.6.1	उर्वरक एवं उर्वरक विनिर्मीत	–	1.55	5.23	6.52	4.09
2.6.2	रासायनिक तत्व एवं मिश्रण	1.48	3.48	4.16	2.85	5.30
2.6.3	रंगाना, टैनिंग व रंगने का सामान	2.05	0.08	0.56	0.16	0.39
2.6.4	चिकित्सा एवं भेषज उत्पाद	1.60	0.89	1.48	0.67	1.08
2.6.5	प्लास्टिक सामान, पुनर्सृजित सेल्यूलोज एवं कृत्रिम रेजिन	–	0.81	0.51	0.9	2.53
2.7	लुग्दी एवं वव्यर्थ कागज	–	0.64	0.74	0.14	1.06
2.8	कागज, कागज बोर्ड, कागज विनिर्मीत	–	1.06	1.53	1.49	1.06
2.9	अधात्वीय खनिज विनिर्मीत	–	0.55	2.04	4.42	–
2.9.1	मोती, बहुमूल्य व अल्प बहुमूल्य पत्थर तराशे हुए एवं बिना तराशे हुए	–	0.08	1.53	4.42	8.65
2.10	लोहा व इस्पात	–	10.96	8.97	6.79	4.89
2.11	ऊलौह धातुएँ	–	4.21	7.31	3.81	2.55
3.	पूँजीगत वस्तुएँ	23.10	31.75	24.70	15.22	24.23
3.1	धातु निर्मित उत्पाद	2.30	2.04	0.71	0.71	0.70
3.2	गैरइलेक्ट्रानिक मशीनरी, मशीन उपकरण आदि	14.04	18.10	15.77	8.68	9.82
3.3	इलेक्ट्रानिक मशीनरी, उपकरण आदि	1.52	5.10	4.30	2.07	3.94
3.4	परिवहन उपस्कर	–	6.92	4.07	3.76	3.87

स्रोतः विभिन्न भारतीय रिजर्व बैंक हस्तपुस्तिकायें।

भारतीय आयातों में 1950-51 में प्रमुख स्थान खाद्यान्न, खाद्य तेलों तथा दालों का था जो कुल आयातों का 15.48 प्रतिशत था। इसके बाद आयातों में पेट्रोलियम उत्पाद (6.65 प्रतिशत), इंजीनियरिंग व पूँजीगत वस्तुएँ (23.10 प्रतिशत) तथा लोहा व इस्पात का स्थान था। 1960-61 में कच्चे माल व मध्यवर्ती वस्तुओं का आयात सर्वाधिक (46.9 प्रतिशत) था जिसमें लोहा व इस्पात, पेट्रोलियम उत्पादक तथा रासायनिक पदार्थ शामिल थे। इसके अतिरिक्त पूँजीगत वस्तुओं के आयात का हिस्सा 31.7 प्रतिशत था। इस वर्ष खाद्य पदार्थों में विगत वर्षों की तुलना में वृद्धि हुई और उसका प्रतिशत 16.1 था। 1980-81 में कच्चे माल व मध्यवर्ती विनिर्मित वस्तुओं का आयातों में सर्वाधिक हिस्सा था जो कि 77.3 प्रतिशत था। इस वर्ष पेट्रोलियम उत्पादों में सर्वाधिक वृद्धि दर्ज की

गई जिसका कुल आयातों से अनुपात 41.9 प्रतिशत था। 1990-91 में पेट्रोलियम उत्पादों के आयातों में कमी हुई और कुल आयातों में पूँजीगत वस्तुओं के आयात का प्रतिशत 24.2 था। किन्तु इस वर्ष मोतियों व बहुमूल्य पत्थरों के आयातों के अनुपात में पूर्व की तुलना में अधिक वृद्धि देखी गई। इस प्रकार 1950-51 से 1990-91 की अवधि में मध्यवर्ती उत्पादों एवं पूँजीगत वस्तुओं की कुल आयातों के अनुपात में वृद्धि हुई। दूसरी ओर खाद्यान्नों एवं अन्य खाद्य पदार्थों के आयातों के अनुपात में कमी हुई।

4.4.4 सुधार पूर्व काल में विदेशी व्यापार की दिशा

इस अवधि में भारतीय आयात अधिकांशतया आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (ओ.ई.सी.डी.) देशों के साथ ही रहा है जिसे आप तालिका 4.7 से समझ सकते हैं।

तालिका 4.7 भारतीय आयातों की दिशा

(प्रतिशत में)

देश/संगठन	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91
ओ.ई.सी.डी.	78.0	63.8	45.7	54.0
यूरोपीय संघ	37.1	19.6	21.0	29.4
संयुक्त ब्रिटेन	19.4	7.8	5.8	6.7
जर्मनी	10.9	6.6	5.5	8.0
फ्रांस	1.9	1.3	2.2	3.0
बेल्जियम	1.4	0.7	2.4	6.3
नीदरलैण्ड	0.9	1.2	1.7	1.8
संयुक्त राज्य अमरीका	29.2	27.7	12.9	12.1
कनाडा	1.8	7.2	2.6	1.3
आस्ट्रेलिया	1.6	2.2	1.4	3.4
जापान	5.4	5.1	6.0	7.5
रूस	1.4	6.5	8.1	5.9
ईरान	2.6	5.6	10.7	2.4
साऊदी अरब	1.3	1.5	4.3	6.7
कुवैत	–	–	2.7	0.8

स्रोतः विभिन्न वर्षों के आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, नई दिल्ली।

तालिका 4.7 से स्पष्ट है कि 1960-61 में 78 प्रतिशत भारतीय आयात केवल ओ.ई.सी.डी. देशों से ही किए गए थे जो कि 1980-81 में घटकर 45.7 प्रतिशत रह गए थे। इसी अवधि में यूरोपीय संघ के देशों का आयातों में प्रतिशत 37.1 से घटकर 21.0 रह गया है। साथ ही संयुक्त ब्रिटेन व जर्मनी से भी आयातों का प्रतिशत घटा है जबकि फ्रांस, बेल्जियम व ननीदरलैण्ड का आयातों में प्रतिशत बढ़ा है। इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमरीका, जिससे भारत का आयात सर्वाधिक है, का आयात घटकर 1960-61 के 29.2 प्रतिशत से 1990-91 में 12.1 प्रतिशत रह गया था। दूसरी ओर आस्ट्रेलिया, जापान व सऊदी अरब से आयात का प्रतिशत बढ़ गया है। रूस के

साथ भी आयातों में वृद्धि हुई है जो कि वर्ष 1980-81 में सर्वाधिक 8.1 प्रतिशत थी। इसी वर्ष ईरान से भी आयात अपने उच्चतम स्तर 10.7 प्रतिशत तक पहुँच गए थे। इस प्रकार भारत के आयातों में संतुक्त ब्रिटेन व अमरीका के प्रतिशत में कमी हुई है जबकि पूर्वी यूरोपीय देशों, जापान, तेल निर्यातक देशों, रूस व अन्य विकासशील देशों से आयातों में वृद्धि हुई है।

इसी प्रकार भारतीय निर्यात भी मुख्यतया आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन तथा संयुक्त राज्य अमरीका व तेल निर्यातक देशों के साथ अधिक रहा है जिसे तालिका 4.8 में व्यक्त किया गया है।

तालिका 4.8 भारतीय निर्यातों की दिशा

(प्रतिशत में)

देश/संगठन	**1960-61**	**1970-71**	**1980-81**	**1990-91**
ओ.ई.सी.डी.	66.1	63.8	45.7	54.0
यूरोपीय संघ	37.1	19.6	21.0	29.4
संयुक्त ब्रिटेन	19.4	7.8	5.8	6.7
जर्मनी	10.9	6.6	5.5	8.0
फ्रांस	1.9	1.3	2.2	3.0
बेल्जियम	1.4	0.7	2.4	6.3
नीदरलैण्ड	0.9	1.2	1.7	1.8
संयुक्त राज्य अमरीका	29.2	27.7	12.9	12.1
कनाडा	1.8	7.2	2.6	1.3
आस्ट्रेलिया	1.6	2.2	1.4	3.4
जापान	5.4	5.1	6.0	7.5
रूस	1.4	6.5	8.1	5.9
ईरान	2.6	5.6	10.7	2.4
साऊदी अरब	1.3	1.5	4.3	6.7
कुवैत	–	–	2.7	0.8

स्रोतः विभिन्न आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, नई दिल्ली।

तालिका 4.8 से स्पष्ट है कि भारतीय निर्यातों में ओ.ई.सी.डी. देशों का 1960-61 में 66.1 रतिशत भाग था जो 1980-81 में घटकर 45.7 प्रतिशत और पुनः 1990-91 में 54.0 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार यूरोपीय संघ, संयुक्त ब्रिटेन व जर्मनी को किए जाने वाले भारतीय निर्यातों के प्रतिशत में कमी आयी थी। यद्यपि 1990-91 में इन देशों के निर्यात प्रतिशत में कुछ सुधार हुआ है। बेल्जियम, नीदरलैण्ड व फ्रांस के निर्यात प्रतिशत में आँशिक वृद्धि हुई है। संयुक्त राज्य अमरीका के निर्यात प्रतिशत में काफी कमी हुई है। दूसरी ओर आस्ट्रेलिया, जापान, रूस, ईरान तथा सऊदी अरब को किए जाने वाले निर्यातों में कुछ उतार-चढ़ाव के साथ वृद्धि हुई है। इस प्रकार 1950-51 की तुलना में भारत के निर्यात कुछ देशों की बजाय अधिक देशों तक विस्तृत हो गए हैं और इनमें विकासशील देशों को किए जाने वाले निर्यातों में वृद्धि हुई है जबकि ब्रिटेन के निर्यातों का प्रतिशत घट गया है।

4.5 अभ्यास प्रश्न

1. लघु प्रश्न

1) विदेश व्यापार नीति से क्या अभिप्राय है?

2) आयात प्रतिस्थापन से आप क्या समझते हैं?

3) 1970 के दशक की व्यापार नीति को संक्षेप में बताइये।

4) भारतीय आयातों की संरचना पर टिप्पणी लिखिए।

5) 1991 से पूर्व भारतीय विदेशी व्यापार की दिशा में होने वाले परिवर्तनों की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।

2) निम्नलिखित कथनों में से सही तथा गलत कथनों को छाँटिए

(i) भारत में स्वतंत्रता के बाद आयात प्रतिस्थापन कार्यनीति को अपनाया गया।

(ii) स्वतंत्रता के समय भारतीय निर्यातों में कपास, जूट एवं चाय का हिस्सा न्यूनतम था।

(iii) भारतीय निर्यात संयुक्त ब्रिटेन को आजादी के समय कुल निर्यातों का लगभग 60 प्रतिशत थे।

(iv) भारतीय रूपये का अवमूल्यन 1966 में किया गया।

(v) वर्ष 1972-73 में भारत का व्यापार शेष अनुकूल था।

(vi) 1950 के दशक में भारतीय निर्यातों में कृषि व उससे सम्बन्धित उत्पादों की प्रचुरता थी।

(vii) भारतीय आयातों में पेट्रोलियम उत्पादों का प्रतिशत 1980-81 में बहुत घट गया था।

3) रिक्त सस्थानों की पूर्ति कीजिए।

(i) 1950 में कुल विश्व निर्यातों में भारत का हिस्सा ..... प्रतिशत था।

(ii) 1980 में कुल विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा घटकर ..... प्रतिशत हो गया था।

(iii) संयुक्त राज्य अमरीका को किए गए निर्यातों में 1960-61 में हिस्सा ..... प्रतिशत था।

4.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप परिचित हो गए होंगे कि आजादी के प्रारम्भिक वर्षों में भारतीय व्यापार नीति अत्यन्त प्रतिबंधात्मक थी जिसके कारण विदेशी व्यापार का परिमाण सीमित था और व्यापार कुछ वस्तुओं व देशों तक सीमित था। 1980 के दशक के मध्य से व्यापारिक नीतियों में धीरे-धीरे बदलाव आने लगा और भारत के विदेशी व्यापार का आधार विस्तृत होने लगा। सुधार पूर्वकाल के बाद के वर्षों में भारत केवल कृषि व सम्बन्धित उत्पादों के निर्यात तक ही सीमित नहीं रह गया बल्कि इंजीनियरिंग वस्तुओं, विनिर्मित वस्त्रों, चमड़ा उत्पादों और रत्न व आभूषणों के निर्यात में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। भारत में आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण नीति को अपनाकर देश के औद्योगिक आधार को विकसित बनाया गया है जिससे कच्चे माल व मध्यवर्ती वस्तुओं के आयातों में वृद्धि हुई है और खाद्य पदार्थों के आयातों में कमी आयी है। इस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन के साथ विकास की दर में तेजी आयी है।

4.7 शब्दावली

- **खुला सामान्य लाइसेंस-**ऐसी मदें जिनके आयात हेतु लाइसेंस की आवश्यकता नहीं (ओ0जी0एल0) मदें होती है।
- **मात्रात्मक प्रतिबंध-** किसी समयावधि में वस्तु विशेष के आयात अथवा निर्यात की भौतिक राशि का उसके मूल्य अथवा परिमाण के अनुसार निश्चित कोटा।
- **व्यापार शेष-** देश की वस्तुओं के निर्यात से आयातों का अन्तर।
- **व्यापार नीति -** व्यापार नीति वह नीति है जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित करती है। इसमें विशेष रूप से प्रशुल्क व गैर प्रशुल्क बाधायें सम्मिलित हैं।
- **आयात प्रतिस्थापन -** पूर्व में आयातित वस्तुओं का देश में ही उत्पादन।
- **प्रतिबंधित मदें-** ऐसी मदें जिनके लिए आयात लाइसेंस की आवश्यकता थी।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2) निम्नलिखित कथनों में से सही तथा गलत कथनों को छाँटिए

(i) सही, (ii) गलत, (iii) सही, (iv) सही, (v) सही
(vi) सही, (vii) गलत

3) रिक्त सस्थानों की पूर्ति कीजिए।

(i) 1.85 प्रतिशत (ii) 0.57 प्रतिशत (iii) 29.2 प्रतिशत

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- झिंगन, एम.एल. (2011). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" षष्टम संस्करण, वृंदा पब्लिशिंग प्रा. लि., दिल्ली।
- अग्रवाल एवं बरला (2008). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र"लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- राणा, के.सी. व वर्मा, के.एन. (2012). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र"विशाल पब्लिशिंग कं., जालन्धर।
- Government of India, 'The Economic Survey', New Delhi (various years).

4.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Bhagwati, J.N. (1978). Anatomy and Consequences of Exchange Control Regimes, Cambridge: Ballinger Publishing Company.
- Joshi, V. and I.M.D. Little (1994), India: Macroeconomics and Political Economy 1964-1990, Oxford University Press, New Delhi.
- Singh, Manmohan (1964). India's Export Trend, Oxford University Press, London.
- Bhagwati, J.N. and Srinivasan, T.N. (1976). Foreign Trade Regimes and Economic Development: India, Macmillan.

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 1980 के दशक में भारत के विदेशी व्यापार में कौन-कौन से ढाँचागत परिवर्तन हुए हैं?
2. भारत में अपनायी गई आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण कार्यनीति का वर्णन कीजिए।
3. सुधारपूर्व काल में भारत के विदेशी व्यापार की संरचना की व्याख्या कीजिए।
4. 1991 से पूर्व भारतीय विदेश व्यापार की स्थिति पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

इकाई-5 भारत की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नीति सुधार काल
(International Trade Policy of India during Reform Period)

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 भारत की विदेशी व्यापार नीति तथा सुधार काल

5.3.1 भारत में व्यापार क्षेत्र में सुधार

5.3.2 विदेश व्यापार नीतिः 2004-09

5.3.3 विदेश व्यापार नीतिः 2009-2014

5.4 सुधार काल के दौरान भारत का विदेशी व्यापार

5.4.1 निर्यात-आयात स्थिति

5.4.2 निर्यात-आयात संरचना

5.4.3 विदेशी व्यापार की दिशा

5.5 अभ्यास प्रश्न

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाई के अध्ययन से आप सुधार पूर्व काल में भारत की व्यापार नीति तथा उस अवधि में विदेशी व्यापार की प्रवृत्तियों से पूर्णतया परिचित हो गए होंगे। इस इकाई में सुधारकाल में भारत की व्यापार नीति और विदेशी व्यापार में होने वाले परिवर्तनों की चर्चा की जाएगी।

भारत में नई आर्थिक नीति की घोषणा 1991 में की गई जिसके अन्तर्गत निजीकरण, उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। वर्ष 1989-90 एवं 1990-91 में देश गहन आर्थिक संकट की स्थिति से गुजर रहा था और व्यापार शेष घाटा अपने उच्चतम स्तर पर था। साथ ही प्रतिकूल भुगतान संकलन की समस्या गम्भीर थी जो कि सकल घरेलू उत्पाद के 3.1 प्रतिशत के स्तर पर था क्योंकि खाड़ी युद्ध के कारण तेल कीमतों में काफी तेजी से वृद्धि हो गई थी और अदृश्य मदों के निर्यात से अर्जित विदेशी प्राप्तियाँ बहुत कम हो गई थी। इसके अतिरिक्त विदेशी ऋण व ऋण सेवाभार की समस्या ने देश में विदेशी विनिमय संकट की स्थिति उत्पन्न कर दी थी। अतः व्यापार क्षेत्र में उदारीकरण की प्रक्रिया को लागू करने के साथ अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन करना सरकार के लिए आवश्यक हो गया था।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

- ✓ 1991 से व्यापार क्षेत्र में किए गए सुधारों की संक्षिप्त व्याख्या करना।
- ✓ सुधार काल के दौरान क्रियान्वित व्यापार नीतियों का विश्लेषण करना।
- ✓ भारत के व्यापार ढाँचे और इस अवधि में हुए परिवर्तनों का वर्णन करना।
- ✓ इस समयावधि में भारतीय विदेश व्यापार की दिशा एवं परिवर्तनों की व्याख्या करना।

5.3 भारत की विदेशी व्यापार नीति तथा सुधार काल

5.3.1 भारत में व्यापार क्षेत्र में सुधार

विगत इकाई में आपने पढ़ा था कि भारत में 1991 से पूर्व व्यापार क्षेत्र में मात्रात्मक प्रतिबंध तथा आयात प्रतिथापन की अंतःमुखी व्यापार नीति को अपनाया गया था जो निर्यातों के विस्तार में असफल रही। फलस्वरुप 1991 से व्यापार क्षेत्र में उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की बहिर्मुखी नीति को अपनाने के साथ घरेलू क्षेत्र में निजीकरण पर बल दिया गया जिससे तत्कालीन आर्थिक संकट को दूर किया जा सके। 1991 के बाद व्यापार क्षेत्र में किए गए प्रमुख सुधारों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है –

1. देश में आयातों पर मात्रात्मत प्रतिबंधों को हटा दिया गया है। यह प्रक्रिया दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) तथा दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्रों के संगठन (आसियान) जैसे क्षेत्रीय समझौतों द्वारा भी जारी है।

2. आयातों के उदारीकण की दृष्टि से आयात प्रशुल्कों में कमी कर दी गई हैं और गैर-कृषि वस्तुओं हेतु आयात शुल्क की उच्चतम दरों को काफी नीचे स्तर पर कर दिया गया है।
3. 1991 से पूर्व 'केनालाइज्ड मदों' का आयात केवल अधिकृत राज्य व्यापार अभिकरण द्वारा किया जा सकता था जिसे सुधार काल में धीरे-धीरे 'डिकेनालाइज्ड' किया गया है।
4. देश में आयातों को उदारीकृत करने तथा निर्यातों को प्रोत्साहित करने हेतु करों में अनेक छूटे एवं रियायतें दी गई हैं। उदाहरण के लिए दूरसंचार, सूचना प्रौद्योगिकी एवं मनोरंजन क्षेत्र के लिए सरकार द्वारा कर हितलाभ प्रदान किए गए हैं।
5. भारत में सेवाओं के निर्यात की अपार संभावना को देखते हुए सेवाओं के निर्यात प्रोत्साहन हेतु अनेक उपाय व्यापार नीति में किए गए हैं।
6. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की दशा में विदेशी भुगतानों के निपटान में आने वाली समस्या को दूर करने के लिए चरणबद्ध रूप से भारतीय रूपये को चालू खाते में पूर्ण परिवर्तनीय बना दिया गया है। रूपये को पूँजीखाते में परिवर्तनीय बनाने हेतु सरकार द्वारा सजगतापूर्वक प्रयास किया जा रहा है।
7. अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में निर्यातों को अधिक प्रतियोगी व बाधारहित बनाने हेतु वर्ष 2000 में विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र योजना की घोषणा की गई जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र, संयुक्त क्षेत्र अथवा राज्य सरकारों द्वारा इनकी स्थापना की जा सकती है। इसके अन्तर्गत आयात व निर्यात प्रशुल्क रहित किए जा सकते हैं और इनको अनेक छूटें भी प्राप्त होती हैं।
8. निर्यातोन्मुखी इकाई योजना को विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र के पूरक के रूप में शुरू किया गया है जिसके अन्तर्गत इनकी स्थापना के लिए अधिक गहन और विस्तृत विकल्प उपलब्ध कराए गए हैं। इसी प्रकार कृषिगत निर्यातों को प्रोत्साहित करने तथा कृषि से सम्बन्धित नवीनतम सेवाओं को उपलब्ध कराने के साथ उनके संगठित प्रयास हेतु कृषि निर्यात क्षेत्र की स्थापना भी की गई है।
9. सुधार काल की व्यापार नीति व्यापार गृहों एवं सुपर स्टार व्यापार गृहों की स्थापना और उन्हे प्रशुल्क मुक्त आयाते करने की अनुमति देती है। इसके अतिरिक्त निर्यातों के विस्तार हेतु सरकार इनकी स्थापना में 51 प्रतिशत विदेशी इक्विटी की भी अनुमति देती है।
10. विदेशी बाजारों में भारतीय उत्पादों की बिक्री बढ़ाने हेतु कुछ चुनिन्दा देशों में इन उत्पादों के बाजारों का गहन अध्ययन किया जाता है और इनकी माँग बढ़ाने हेतु व्यापार मेले, प्रदर्शनी आदि हेतु बाजार खोज पहल योजना का प्रारम्भ किया गया है। यह योजना विदेशी क्रेताओं की आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादों की गुणवत्ता बढ़ाने ने में अत्यंत सफल रही है।

इस प्रकार सुधार पश्चात् काल में पाँच वर्षीय निर्यात-आयात नीति (1992-1997) व्यापार उदारीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने तथा अधिक स्थायित्व लाने हेतु लागू की गई। इसके बाद सरकार ने मध्यमकाल निर्यात कार्यनीति (2002-2007) को शुरू किया जिसके अन्तर्गत स्थिर नीति वातावरण बनाने हेतु क्षेत्रवार लक्ष्य निर्धारित कर वर्ष 2007 तक विश्व व्यापार का 1 प्रतिशत हिस्सा प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया । इसी वर्ष नई निर्यात-आयात नीति (2002-2007) नियंत्रण एवं प्रतिबंध मुक्त वातावरण बनाने के उद्देश्य से घोषित की गई। इसमें कृषिगत निर्यातों को विशेष प्रोत्साहन दिया गया और कुटीर उद्योग व हल्तशिल्प पर विशेष ध्यान दिया गया। इसके साथ निर्यात

संवर्धन पूँजीगत वस्तुओं तथा ड्यूटी एंटाइटेलमेन्ट पासबुक योजना को अधिक आकर्षक बनाया गया। औद्योगिक क्लस्टर्स से निर्यात सम्वर्धन हेतु अतिरिक्त सुविधाएँ प्रदान की गई। अफ्रीकी महाद्वीप में निर्यात बढ़ाने हेतु कुछ अफ्रीकी देशों को फोकस किया गया। इन सभी नीतियों अथवा कार्यनीतियों का क्रियान्वयन भारतीय निर्यातों की प्रतियोगिता एवं सम्भावनाओं का पूर्वानुमान लगाने में सहायक रहा। फलस्वरुप अगस्त 2004 में सरकार ने विस्तृत विदेश व्यापार नीति (2004-2009) की घोषणा की।

5.3.2 विदेशी व्यापार नीति (2004-2009)

अगस्त 2004 में भारत सरकार ने विदेश व्यापार नीति (2004-09) की घोषणा की जिसका मुख्य उद्देश्य आगामी पाँच वर्षों में विश्व वस्तु बाजार में भारत के हिस्से को दुगुना करना तथा व्यापार द्वारा रोजगार सृजित कर आर्थिक विकास में प्रभावी भूमिका निभाना है। इसके अन्तर्गत व्यापार पर लगे नियंत्रणों को समाप्त करने तथा व्यापार व्यवहार को सरलीकृत बनाने पर बल दिया गया। इसमें भारत को विनिर्मित वस्तुओं तथा सेवाओं से सम्बन्धित व्यापार का मुख्य केन्द्र बनाने पर ध्यान दिया गया। इस हेतु नीति में प्रद्योगिकीय सुगमता तथा आधारिक संरचना का उन्नयन पूँजीगत वस्तुओं तथा उपकरणों के आयात द्वारा करने पर अर्थव्यवस्था में बल दिया गया। इसके अतिरिक्त ग्रामीण तथा अर्द्धशहरी क्षेत्रों में अतिरिक्त रोजगार अवसरों को सृजित करने हेतु ऐसे क्षेत्रों के विकास पर अधिक ध्यान दिया गया।

यह व्यापार नीति निर्यात वस्तुओं के उत्पादन हेतु आवश्यक आयातों पर लगाए जाने वाले शुल्कों के करापात को समाप्त किये जाने के साथ उल्टे प्रशुल्क ढाँचे का त्याग करने की कार्यनीति पर आधारित थी। इस व्यापार नीति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

1. इस नीति में निर्यात सम्भावनाओं और रोजगार सृजित करने वाले क्षेत्रों जैसे – कृषि, हस्तशिल्प, हथकरघा, रत्न व आभूषण तथा चमड़ा व जूते, की पहचान की गई। कृषि उत्पादों के निर्यात हेतु 'विशेष कृषि उपज योजना' जिसे बाद में 'विशेष कृषि उपज एवं ग्रामोदय योजना' कर दिया गया, को शुरू किया गया। इसके अतिरिक्त हस्तशिल्प विशेष आर्थिक क्षेत्र की भी स्थापना की गई।
2. सेवाओं के निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिए सर्व्ड फ्राम इण्डिया योजना की शुरूआत की गई। इसके अन्तर्गत 10 लाख रूपये की विदेशी मुद्रा अर्जित करने वाले व्यक्तिगत सेवा उत्पादक अपनी विदेशी प्राप्तियों के 10 प्रतिशत ड्यूटी क्रेडिट के लिए अर्ह होंगे। साथ ही चुनिंदा सेवाओं की निर्यात वृद्धि हेतु 'सेवा निर्यात सम्वर्द्धन परिषद' के गठन का प्रस्ताव किया गया है। सरकार के विभिन्न विभागों में तालमेल बढ़ाने के लिए **'बोर्ड ऑफ ट्रेड'** के पुनर्गठन करने की बात भी इस नीति में कही गई है।
3. निर्यातों की लागत को कम करने के लिए समस्त निर्यात क्षेत्र को सेवा कर से मुक्त कर दिया गया है। साथ ही सेवाओं के निर्यातकों के लिए शुल्क मुक्त आयात की सुविधा भी प्रदान की गई है।
4. निर्यात सम्वर्द्धन पूँजीगत वस्तु योजना का उदारीकरण किया गया है और पुरानी मशीनों के आयात पर प्रतिबंध को समाप्त कर दिया गया है।
5. मुक्त व्यापार को बढ़ावा देने के लिए **'मुक्त व्यापार और वेयरहाउसिंग क्षेत्र'** की स्थापना की गई है।
6. निर्यातोन्मुखी इकाइयों को स्टार निर्यात घराने के दर्जे हेतु कारोबार सीमाओं में कटौती की गई है।

7. निर्यातकों के लिए **'टारगेट प्लस योजना'** शुरू की गई। यद्यपि अप्रैल 2006 की पूरक विदेशी व्यापार नीति में इसे समाप्त कर दिया गया।
8. निर्यातों को प्रोत्साहित करने तथा आवश्यक आयातों जैसे – बीजों का आयात आदि हेतु प्रक्रियाओं को सरलीकृत कर दिया गया है।

यह विदेशी व्यापार नीति पूर्व की निर्यात-आयात नीतियों की तुलना में बेहतर थी। किन्तु यह अपने विश्व व्यापार में भारत के दुगुने हिस्से के लक्ष्य को पूरा करने में असफल रही। पुरानी मशीनरी के आयात से देश में अप्रचलित उच्च लागत प्रौद्योगिकी का संचय हुआ जिससे निर्यात तथा विकास में कोई मदद नहीं मिली। इस नीति में दी गई प्रशुल्क व कर रियायतों से राजस्व में कमी आई और निर्यात उद्योगों में एकाधिकारी प्रवृत्तियों की सम्भावना बढ़ी है। व्यावहारिक तौर पर यह देखा गया कि निर्यातकों द्वारा निर्यात छूट के लाभ के उद्देश्य से पहले निर्यात किया गया फिर उसमें कुछ मूल्यवर्द्धन के बाद आयात कर दोहरा लाभ अर्जित करने का प्रयास किया गया।

5.3.3 विदेश व्यापार नीति (2009-14)

नई विदेश व्यापार नीति की घोषणा अगस्त 2009 में उस समय पर की गई जब देश के निर्यातों में पिछले कई महीनों से लगातार गिरावट हो रही थी। अतः इस नीति का उद्देश्य निर्यात में गिरावट के रूख को रोककर विपरीत दिशा में मोड़ना था। इस नीति की अवधि 2009-2014 तक है जिसकी मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

1. भारत के निर्यातों को 2014 तक दो गुना करना है और मार्च 2011 तक निर्यात राशि को 200 अरब डालर तक पहुँचाना है जिसके बाद निर्यातों में 15 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि को लक्ष्य प्राप्ति तक जारी रखना है।
2. शुल्क हकदारी पासबुक योजना को दिसम्बर 2010 तक बढ़ा दिया गया है और निर्यातकों को दिए जाने वाले 2 प्रतिशत ब्याज अनुदान की योजना को भी मार्च 2010 तक बढ़ा दिया गया है। इसके अतिरिक्त ई0सी0जी0सी0 योजना का लाभ भी 2010 तक जारी रखा गया है।
3. निर्यातोन्मुखी और एस.टी.पी.आई. इकाइयों को आयकर में मिलने वाली छूट को 2010-11 में भी जारी रखा गया है।
4. फोकस बाजार स्कीम के अन्तर्गत 26 नये बाजारों, जिसमें 16 लेटिन अमरीका तथा 10 एशिया ओसेनिया क्षेत्र के हैं; को शामिल किया गया है। इन बाजारों में निर्यात बढ़ाने हेतु निर्यातकों को मिलने वाले एफ.एम.एस. इन्सेंटिव को बढ़ाकर 3 प्रतिशत कर दिया गया है। साथ ही फोकस प्रोडक्ट इन्सेटिव को 2.4 प्रतिशत कर दिया गया है। उत्तर-पूर्वी राज्यों के बागवानी उत्पादकों को भी फोकस प्रोडक्ट उत्पाद योजना का लाभ मिलेगा।
5. नई व्यापार नीति में जयपुर, अनंतनाग, श्रीनगर, कानपुर, देवास, मलीहाबाद और अंबूर को निर्यात उत्कृष्टता नगर के रूप में मान्यता दी गई है।
6. भारत को हीरे का अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र बनाने के उद्देश्य से हीरा एक्सचेंज स्थापित करने की योजना है।
7. शीघ्र नष्ट होने वाले कृषिगत उत्पादों के निर्यात हेतु सिंगल विंडो व्यवस्था की गई है। समुद्री उत्पाद औषधि व हथकरघा क्षेत्र को भी रियायत दी गई है।

8. इस नीति में निर्यातोन्मुख इकाइयों को अपने उत्पादों का 90 प्रतिशत घरेलू बाजार में बेचने की अनुमति प्रदान की गई है।
9. निर्यातकों की डालर ऋण की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में वित्त सचिव, वाणिज्य सचिव और भारतीय बैंक एसोसिएशन के अध्यक्ष की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया गया है।

नई व्यापार नीति के तहत भारतीय निर्यातों में वर्ष 2011-12 में 20.9 प्रतिशत (डालर मूल्यों में) वृद्धि दर्ज की गई किन्तु अप्रैल 2012 में निर्यातों में मात्र 3.2 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई। साथ ही यूरोजोन के वित्तीय संकट के कारण पश्चिमी देशों के बाजारों में मंदी की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। ऐसे समय जून 2012 में पूरक विदेश व्यापार नीति 2012-13 की घोषणा की गई जिसका उद्देश्य वस्तुगत निर्यातों में 20 प्रतिशत की वृद्धि कर कुल निर्यातों को इस वर्ष 360 अरब डालर तक पहुँचाना था।

इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अनुपूरक नीति में कुछ नीतिगत उपायों की घोषणा की गई। इसके अन्तर्गत निर्यात सम्वर्द्धन पूँजीगत सामान योजना को 2012-13 में भी लागू रखा गया और ब्याज दर पर 2 प्रतिशत वित्तीय सहायता को जारी रखने के साथ इसमें विस्तार कर श्रम आधारित क्षेत्रों को भी सम्मिलित कर लिया गया। इसके अतिरिक्त निर्यातकों को आयात शुल्कों में मिलने वाली रियायतों का इस्तेमाल उत्पाद शुल्क के एवज में करने की छूट इस नीति में पहली बार दी गई।

फोकस बाजार योजना के अन्तर्गत सात नये देशों को और शामिल किया गया है और फोकस उत्पाद योजना को मार्च 2013 तक विस्तारित कर दिया गया है। इसी प्रकार निर्यात विशिष्टता नगरों की श्रेणी में तीन नये शहरों – अहमदाबाद, कोल्हापुर व सहारनपुर को भी सम्मिलित कर लिया गया है। उल्लेखनीय है कि इन नीतिगत उपायों में भारतीय निर्यातों विशेषतया श्रम आधारित क्षेत्र, कपड़ा और इंजीनियरिंग आदि में वृद्धि की सम्भावनायें बढ़ गई हैं।

5.4 सुधार काल के दौरान भारत का विदेशी व्यापार

इस भाग के अध्ययन से आप समझ सकेंगे कि सुधार काल में भारत के विदेशी व्यापार की प्रवृत्ति क्या रही है और आयात-निर्यात ढाँचे में क्या परिवर्तन हुए हैं। इसके अतिरिक्त हम भारत के विदेशी व्यापार की दिशा और व्यापार शेष की स्थिति का भी वर्णन करेंगे।

5.4.1 निर्यात-आयात स्थिति

भारत के विदेशी व्यापार का विश्व व्यापार में हिस्सा 1990 में जहाँ लगभग 0.68 प्रतिशत था, वह बढ़कर 2004 में 1.1 प्रतिशत तथा 2009 में 2.0 प्रतिशत तक हो गया है। इसी प्रकार भारतीय निर्यातों का विश्व व्यापार में हिस्सा 1990 के 0.51 प्रतिशत से बढ़कर 2004 में 0.80 प्रतिशत हो गया है जबकि इसी अवधि में आयातों का विश्व व्यापार में हिस्सा 0.89 प्रतिशत से बढ़कर 1.52 प्रतिशत हो गया है। विश्व व्यापार संगठन की रिपोर्ट 2010 के अनुसार भारत का विश्व में वस्तुगत व्यापार में 1.4 प्रतिशत हिस्से के साथ 120वां स्थान तथा सेवाओं के

व्यापार में 3.0 प्रतिशत हिस्से के साथ 10वां स्थान हो गया है। यद्यपि वर्ष 2010 में विश्व वस्तुगत व्यापार में चीन का पहला स्थान तथा सेवाओं के क्षेत्र में अमरीका का शीर्ष स्थान था।

सुधारकाल के दौरान भारत के विदेशी व्यापार की प्रवृत्ति को तालिका 5.1 के द्वारा व्यक्त किया गया है।

तालिका 5.1 भारत के विदेशी व्यापार की प्रवृत्ति

(मिलियन अमरीकी डालर में)

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार शेष	निर्यातों से आयातों का अनुपात
1990-91	18143	24075	– 5932	0.754
1991-92	17865	19411	– 1546	0.920
1992-93	18537	21882	– 3345	0.847
1993-94	22238	23306	– 1068	0.954
1994-95	26330	28654	– 2324	0.919
1995-96	31797	36678	– 4881	0.867
1996-97	33470	39133	– 5663	0.855
1997-98	35006	41484	– 6478	0.844
1998-99	33218	42389	– 9171	0.610
1999-2000	36822	49671	– 12849	0.741
2000-01	44560	50536	– 5976	0.882
2001-02	43827	51413	– 7586	0.852
2002-03	52719	61412	– 8693	0.859
2003-04	63843	78150	– 14307	0.817
2004-05	83535	111516	– 27982	0.749
2005-06	103092	149167	– 46076	0.691
2006-07	126361	185749	– 59388	0.680
2007-08	162904	251439	– 88535	0.648
2008-09	185295	303696	– 118401	0.610
2009-10	178751	288373	– 109622	0.621
2010-11	251100	369800	– 118700	0.680
2011-12	303719	488640	– 184922	0.622

स्रोतः वाणिज्यिक आसूचना एवं सांख्यिकी महानिदेशक, कोलकाता।

तालिका 5.1 से स्पष्ट है कि भारत के निर्यात 1990-11 में 18143 मिलियन डालर से बढ़कर 2011-12 में 303719 मिलियन डालर हो गए जबकि इसी अवधि में आयात राशि 24075 मिलियन डालर से बढ़कर 488640 मिलियन डालर हो गई। फलस्वरुप व्यापार शेष का घाटा 5932 मिलियन डालर से काफी अधिक बढ़कर 488640 मिलियन डालर हो गया है। यह आँकड़े प्रदर्शित करते हैं कि भारत के विदेशी व्यापार का परिमाण सुधार काल के दौरान तेजी से बढ़ा है किन्तु इसमें निर्यातों की तुलना में आयातों में अधिक वृद्धि हुई है जिससे व्यापार शेष इस अवधि में सदैव प्रतिकूल बना रहा है। निर्यातों का आयातों से अनुपात जो देश के निर्यातों

द्वारा आयातों के भुगतान की क्षमता को बताता है, में भी इस अवधि में उतार-चढ़ाव होते रहे हैं। यह अनुपात जहाँ 1993-94 में अपने उच्चतम स्तर (0.954) पर था वहीं वर्ष 2008-09 में निम्नतम स्तर (0.610) पर आ गया था।

इस अवधि में जहाँ तक निर्यात एवं आयात वृद्धि दरों का सम्बन्ध है, इनमें परिवर्तन हुआ है। 1990-91 से 1994-95 की अवधि को छोड़कर आयातों की वृद्धि दर निर्यातों में वृद्धि-दर की तुलना में अधिक रही है। यह तालिका 5.2 से स्पष्ट है।

तालिका 5.2 सुधारकाल में निर्यात, आयात, व्यापार शेष और वृद्धि दर

(मिलियन डालर)

अवधि	निर्यात	आयात	व्यापार शेष	निर्यात वृद्धि दर (प्रतिशत में)	आयात वृद्धि दर (प्रतिशत में)
1990-91 से 1994-95	103114	117328	14215	9.98 (24.66)	7.24 (20.78)
1995-96 से 1999-2000	170313	209355	39042	7.28 (14.28)	12.02 (19.40)
2000-01 से 2004-05	288484	353022	64543	18.32 (19.06)	18.56 (19.00)
2005-06 से 2009-10	756683	1178624	421941	17.02 (18.08)	21.90 (22.90)
2010-11	251100	369800	118700	37.55	21.61
2011-12	303719	488640	184922	20.9	32.1

स्रोतः आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, नई दिल्ली।

नोटः 1) निर्यात, आयात व व्यापार शेष सम्बन्धी आँकड़े 2010-11 व 2011-12 को छोड़कर पाँच वर्ष की अवधि के योग हैं।

2) कोष्ठक में प्रदर्शित वृद्धि दर रूपये के सन्दर्भ में व्यक्त की गई है।

5.4.2 निर्यात-आयात संरचना

व्यापार सुधार के प्रभावों को भारत के विदेशी व्यापार ढाँचे में परिवर्तन तथा उत्पादन की विविधता व व्यापार के अत्यन्त खुलेपन के रूप में देखा जा सकता है। अब भारत के निर्यातों में प्रौद्योगिकी-गहन एवं विनिर्मित उत्पादों के साथ, उच्च मूल्यवर्धित कृषिगत उत्पादों की प्रमुखता हो गई है। तालिका 5.3 में भारतीय निर्यातों की संरचना को सुधारकाल के दौरान प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 5.3 भारतीय निर्यातों की संरचना

(प्रतिशत में)

	उत्पाद /वर्ष	1990-91	2000-01	2007-08	2008-09	2009-10	2010-11
1	**कृषि एवं सम्बन्धित उत्पाद**	19.41	14.04	9.93	9.13	10.0	9.9
1.1	कॉफी	0.78	0.58	0.29	0.27	0.2	0.3
1.2	चाय एवं अन्य सहायक	3.29	0.97	0.31	0.32	0.3	0.3
1.3	तेल बीज	1.87	1.01	1.24	1.21	0.9	0.9

1.4	तम्बाकू	0.81	0.43	0.29	0.41	0.4	0.3
1.5	काजू गिरी	1.37	0.93	0.34	0.35	0.3	0.2
1.6	मसाले	0.73	0.79	0.66	0.74	0.7	0.7
1.7	चीनी व खाँड	0.12	0.25	0.86	0.53		
1.8	कच्ची कपास	2.60	0.11	1.35	0.34	1.1	1.1
1.9	चावल	1.42	1.45	1.79	1.31	1.7	1.3
1.10	मछली व उससे बने पदार्थ	2.95	3.13	1.05	0.83	1.2	1.0
1.11	मांस व उससे बने पदार्थ	0.43	0.72	0.57	0.63		
1.12	फल एवं सब्जी व दालें	0.66	0.79	0.62	0.66	0.7	0.5
1.13	प्रसंस्करित खाद्य व रस आदि	0.65	0.54	0.33	0.37		
2	**अयस्क एवं खनिज (कोयले को छोड़कर)**	4.60	2.03	5.55	4.17	4.9	4.0
2.1	लौह अयस्क	3.22	0.88	3.56	2.55	3.4	1.9
3	**विनिर्मीत वस्तुएँ**	72.92	78.95	64.13	66.44	67.4	68.0
3.1	टैक्सटाइल रेशे व विनिर्मीत	20.98	–	–	–	–	–
3.1.1	कपास धागा, रेशे, निर्मित	6.45	7.85	2.85	2.22	2.1	2.2
3.1.2	सिले सिलाए वस्त्र	12.32	12.52	5.94	5.90	6.0	4.5
3.2	नारियल की जटा व विनिर्मीत	0.15	0.11	0.10	0.08	–	–
3.3	जूट विनिर्मीत	0.92	0.46	0.20	0.16	–	–
3.4	चमड़ा व चमड़ा विनिर्मीत	7.89	4.38	2.08	1.87	1.9	1.5
3.5	हस्तशिल्प (हस्तनिर्मित कालीन शामिल)	18.94	2.50	0.88	0.57	0.1	0.1
3.5.1	रत्न व आभूषण	16.12	16.57	12.06	15.09	16.3	14.7
3.6	रासायन व संबन्धित उत्पाद	6.48	11.23	10.65	10.06	6.3	5.5
3.7	मशीनरी, परिवहन, धातु विनिर्मीत (लोहा व इस्पात शामिल)	11.89	15.56	22.82	22.45	15.6	18.1
4	4खनिज तेल व स्नेहक(कोयला शामिल)	2.91	4.33	17.80	14.94	16.2	16.8
5	5. अन्य	–	–	–	–	1.5	1.2

स्रोतः आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, नई दिल्ली व भारतीय रिजर्व बैंक हस्तपुस्तिका।

सुधारकाल के दौरान भारतीय निर्यातों में अनेक संरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं। एक ओर जहाँ परम्परागत निर्यातों जैसे चाय, कपास, चमड़ा व सिले सिलाय वस्त्रों की भागीदारी में कमी आई है वहीं निर्यातों में गैर परम्परागत वस्तुओं जैसे रासायानों व इंजीनियरिंग वस्तुओं के प्रतिशत हिस्से में वृद्धि हुई है। विगत वर्षों में इलेक्ट्रानिक्स, सॉफ्टवेयर तथा दस्तकारी का सामान जिसमें रत्न व आभूषण सम्मिलित हैं, के निर्यातों में प्रमुखता रही है। तालिका 20.3 के अध्ययन से स्पष्ट है कि 1990-91 में कृषि व सम्बन्धित उत्पादों का निर्यातों में हिस्सा 19.4 प्रतिशत से घटकर 2010-11 में 9.9 प्रतिशत रह गया है। इसके अतिरिक्त मशीनरी, परिवहन व धातु

विनिर्मीत का निर्यात 1990-91 के 11.89 प्रतिशत से बढ़कर 2008-09 में 22.45 प्रतिशत हो गया है। किन्तु खनिज तेल व स्नेहक (कोयले सहित) का निर्यात उक्त अवधि में 2.91 प्रतिशत से बढ़कर 16.8 प्रतिशत हो गया है। उल्लेखनीय है कि भारत के निर्यातों में इस अवधि में विनिर्मित वस्तुओं का हिस्सा कुछ कमी होने के बावजूद सर्वाधिक बना हुआ है।

इसी प्रकार सुधार काल के दौरान व्यापार उदारीकरण की नीति के अन्तर्गत आवश्यक आयात तथा अन्य आयात के बीच भेद को शिथिल कर दिया गया है जिससे विदेशी विनिमय की स्थिति को सन्तोषजनक बनाए रखा जा सके। इस अवधि के दौरान भारतीय आयातों की संरचना को तालिका 5.4 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 5.4 भारतीय आयातों की संरचना: 1990-91 से 2010-11

(प्रतिशत में)

.	**उत्पाद /वर्ष**	**1990-91**	**2000-01**	**2007-08**	**2008-09**	**2009-10**	**2010-11**
1.	खाद्य पदार्थ एवं सम्बन्धित उत्पाद	0.42	0.04	0.28	0.02	3.7	3.9
2.	कच्चा माल एवं मध्यवर्ती विनिर्मीत	59.25	53.37	54.56	57.54	–	–
2.1	काजू (अप्रसंस्करित)	0.31	0.42	0.17	0.19	0.2	0.2
2.2	कच्ची रबड़	0.52	0.30	0.31	0.28	–	–
2.3.1	कृत्रिम एवं पुनर्सृजित रेशे	0.13	0.12	0.05	0.05	–	–
2.3.2	कच्ची ऊन	0.42	0.20	0.11	0.07	–	
2.3.3	कच्ची कपास	–	0.51	0.09	0.12	–	–
2.3.4	कच्ची जूट	0.05	0.04	0.02	–	–	–
2.4	पेट्रोलियम, तेल व स्नेहक	25.04	30.97	31.68	30.07	30.1	28.6
2.5.1	खाद्य तेल	0.76	2.64	1.02	1.13	1.9	1.8
2.6.1	उर्वरक एवं उर्वरक विनिर्मीत	4.09	1.31	2.01	4.27	2.3	1.9
2.6.2	रासायनिक पदार्थ, मिश्रण	5.30	0.67	0.65	0.69	5.2	5.2
2.6.3	रंगना, टैनिंग व रंगने का सामान	0.39	0.38	0.30	0.27	–	–
2.6.4	चिकित्सा, भेषज	1.08	0.75	0.67	0.62	–	–
2.6.5	प्लास्टिक सामान	2.53	1.10	1.47	1.30	–	–
2.7	कागज एवं लुग्दी	1.06	0.56	0.31	0.26	–	–
2.8	कागज, कागज बोर्ड, अन्य विनिर्मीत	1.06	0.87	0.57	0.58	0.5	0.6
2.9	अधात्वीय विनिर्मीत	–	0.34	–	–	–	–
2.9.1	मोती, बहुमूल्य व अल्प बहुमूल्य रत्न	8.65	9.57	3.17	5.45	5.6	9.4

2.10	लोहा व इस्पात	4.89	1.55	3.46	3.12	2.9	2.8
2.11	अलौह धातुएँ	2.55	1.07	8.50	9.07	1.0	1.1
3.	पूँजीगत वस्तुएँ	24.23	10.95	19.03	15.50	15.0	13.1
3.1	धातु विनिर्मित वस्तुएँ	0.70	0.77	1.06	1.07	10.3*	11.5*
3.2	गैरइलेक्ट्रानिक मशीनरी, उपकरण, सामग्री	9.82	7.33	8.77	7.82	7.4	6.4
3.3	बिजली सम्बन्धी वस्तुएँ व व्यावसायिक उपकरण	3.94	0.96	1.20	1.21	2.4	2.1
3.4	परिवहन उपस्कर	3.87	1.89	8.0	4.35	4.1	3.1
3.5	परियोजना वस्तुएँ	–	–	–	–	1.6	1.7
4.1	कोयला	–	–	–	–	3.1	2.7
4.2	इलेक्ट्रानिक सामान	–	–	–	–	7.3	7.2

स्रोतः आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, नई दिल्ली व भारतीय रिजर्व बैंक हस्तपुस्तिका।

नोटः * सोना व चांदी का आयात

तालिका 5.4 के अध्ययन से आपको स्पष्ट हुआ होगा कि भारतीय आयातों में पेट्रोलियम उत्पादों का आयात निरन्तर इस अवधि में सर्वाधिक बना हुआ है। इसी प्रकार पूँजीगत वस्तुएँ तथा अन्य निर्यात सम्बन्धित उत्पादों का आयात भी 1990-91 और इसके बाद के वर्षों में महत्वपूर्ण बना रहा है। यद्यपि पूँजीगत वस्तुओं के आयात का प्रतिशत हिस्सा 1990-91 के 24.2 प्रतिशत से घटकर 2010-11 में 13.1 प्रतिशत तथा इस अवधि में लौह व इस्पात का प्रतिशत घटकर 4.89 प्रतिशत से 2.8 प्रतिशत रह गया है। खाद्य पदार्थों का आयात हिस्सा 1990-91 के 0.42 प्रतिशत से घटकर 2008-09 में 0.2 प्रतिशत रह गया किन्तु 2009-10 व 2010-11 में पुनः बढ़कर क्रमशः 3.7 प्रतिशत व 3.9 प्रतिशत हो गया है। उर्वरकों व उर्वरक विनिर्मीत का प्रतिशत हिस्सा 1990-91 के 4.09 प्रतिशत से घटकर 1.9 प्रतिशत हो गया है। भारतीय आयातों में मोती, बहुमूल्य व अल्पबहुमूल्य रत्नों के आयातों में उतार-चढ़ाव के साथ वृद्धि, इसके प्रतिशत हिस्से में वृद्धि हुई है। यह 1990-91 में 8.65 प्रतिशत से घटकर 2007-08 में 3.17 प्रतिशत रह गया था और पुनः बढ़कर 2010-11 में 9.4 प्रतिशत हो गया है।। वर्ष 2010-11 में पेट्रोलियम, तेल व स्नेहक के बाद सोने-चाँदी का आयात सर्वाधिक रहा है जो क्रमशः 28.6 प्रतिशत तथा 11.5 प्रतिशत के स्तर पर था। यद्यपि पेट्रोलियम तेल व स्नेहक का आयात 2007-08 में अपने उच्चतम स्तर (31.68 प्रतिशत) पर था जो प्रतिकूल भुगतान संतुलन के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार रहा है जबकि देश के तीव्र आर्थिक विकास हेतु घरेलू माँग की तुलना में उत्पादन न होने के कारण इनका आयात आवश्यक हो जाता है।

5.4.3 विदेशी व्यापार की दिशा

विदेश व्यापार नीति में उदारीकरण के बाद भारत का विदेशी व्यापार परम्परागत कुछ देशों की तुलना में अन्य देशों के साथ भी बढ़ा है। अब भारतीय आयात-निर्यात कुछ यूरोपीय देशों और संयुक्त राज्य अमरीका तक ही न सीमित होकर एशियाई एवं अफ्रीकी देशों में विस्तृत हो गए हैं। भारत संभावित देशों के साथ अपने विदेशी

व्यापार को बढ़ाने हेतु द्विपक्षीय मुक्त व्यापार समझौतों तथा क्षेत्रीय व्यापार व्यवस्थाओं के द्वारा निरन्तर प्रयास कर रहा है। तालिका 5.5 में भारतीय निर्यातों की दिशा को प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 5.5 भारतीय निर्यातों की दिशाः 1990-91 से 2010-11

(प्रतिशत हिस्सा)

देश/संगठन	1990-91	2000-01	2006-07	2007-08	2009-10	2010-11
यूरोपीय सहयोग एवं विकास संगठन	53.5	52.7	44.0	41.3	–	–
यूरोपीय संघ	27.5	22.7	21.3	21.2	18.7	17.5
संयुक्त ब्रिटेन	6.5	5.2	4.4	4.1	2.9	2.8
जर्मनी	7.8	4.3	3.2	3.1	2.7	2.7
फ्रांस	2.4	2.3	1.7	1.6	2.0	1.3
बेल्जियम	3.9	3.3	2.8	2.4	2.5	2.5
नीदरलैण्ड	2.0	2.0	2.1	3.2	3.1	3.1
इटली	–	–	2.9	2.6	1.8	1.7
स्वीडन	–	–	–	1.6	0.2	0.3
संयुक्त राज्य अमरीका	11.1	20.9	14.9	12.7	10.2	11.3
कनाडा	0.9	1.5	0.9	0.8	0.5	0.6
आस्ट्रेलिया	1.4	0.9	0.2	0.7	0.7	0.7
जापान	8.9	4.0	2.2	2.4	2.1	1.8
रूस	18.3	2.0	0.7	0.6	0.6	0.6
ईरान	1.8	0.5	1.2	1.2	1.1	0.9
कुवैत	–	0.4	0.5	0.4	0.8	0.4
साऊदी अरब	–	1.8	2.0	2.3	2.1	2.0
सिंगापुर	–	–	4.8	4.5	4.1	6.2
मलेशिया	–	–	–	2.4	1.6	1.2
इंडोनेशिया	–	–	–	1.9	2.5	2.3
चीन	–	–	6.6	6.6	7.8	5.2
रिपब्लिक कोरिया	–	–	2.0	1.8	1.6	1.5
संयुक्त अरब अमीरात	–	–	9.5	9.6	13.7	11.9
हांगकांग	–	–	3.7	3.9	4.1	4.5

स्रोतः आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, विभिन्न वर्ष।

तालिका 5.5 से स्पष्ट है कि 1990-91 के बाद यूरोपीय सहयोग एवं विकास संगठन को किया जाने वाला भारतीय निर्यात 2007-08 में घटकर 41.3 प्रतिशत रह गया है। इसी प्रकार यूरोपीय संघ को किया जाने वाला निर्यात घटकर 2010-11 में 17.5 प्रतिशत हो गया है। संयुक्त राज्य अमरीका को किए जाने वाले भारतीय निर्यातों में भी कमी आई है और यह 2000-01 के अपने उच्चतम स्तर 20.9 प्रतिशत से कम होकर 2010-11 में 11.3 प्रतिशत

रह गए हैं। दूसरी ओर विकासशील देशों जैसे चीन, हांगकांग, संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब, सिंगापुर, मलेशिया, इंडोनेशिया, नाइजीरिया, टर्की इत्यादि देशों को भारतीय निर्यातों में वृद्धि हुई है। पूर्वी एशियाई क्षेत्रों में भारतीय निर्यात में वृद्धि का कारण जापान तथा आसियान (ASEAN) राष्ट्रों में विकास दर अच्छी रहने के कारण माँग का ऊँचा बना रहना रहा है जबकि यूरोपीय राष्ट्रों में माँग शिथिल रहने के कारण निर्यात का प्रतिशत कम रहा है। उल्लेखनीय है कि वर्ष 2010-11 में अमरीका भारत के निर्यातों का अकेला सबसे बड़ा खरीददार रहा था।

तालिका 5.6 भारतीय आयातों की दिशाः 1990-91 से 2010-11 (प्रतिशत हिस्सा)

देश/संगठन	**1990-91**	**2000-01**	**2006-07**	**2007-08**	**2009-10**	**2010-11**
यूरोपीय सहयोग एवं विकास संगठन	54.0	39.9	40.0	38.5	–	–
यूरोपीय संघ	29.4	39.9	40.0	38.5	12.0	11.6
संयुक्त ब्रिटेन	6.7	6.3	2.2	2.0	1.5	1.6
जर्मनी	8.0	3.5	6.7	3.9	3.2	3.3
फ्रांस	3.0	1.3	2.2	2.5	1.0	0.8
बेल्जियम	6.3	5.7	2.2	1.7	2.3	1.6
नीदरलैण्ड	1.8	0.9	0.6	0.8	0.5	0.5
इटली	–	–	1.4	1.6	1.2	1.2
स्वीडन	–	–	1.0	0.8	0.4	0.5
स्विट्जरलैण्ड	–	–	4.8	3.9	6.7	6.6
संयुक्त राज्य अमरीका	12.1	6.0	6.6	8.4	5.4	4.7
कनाडा	1.3	0.8	0.8	0.8	0.5	0.4
आस्ट्रेलिया	3.4	2.1	3.6	3.1	2.9	3.0
जापान	7.5	3.6	2.4	2.5	2.3	2.4
रूस	5.9	1.0	1.1	1.0	1.0	0.8
ईरान	2.4	0.4	0.4	4.3	3.0	2.2
कुवैत	0.8	0.2	3.1	3.1	2.8	2.8
सऊदी अरब	6.7	1.2	7.0	5.4	5.5	6.0
नाइजीरिया	–	–	3.7	3.0	2.9	3.4
दक्षिण अफ्रीका	–	–	1.3	1.4	1.9	2.2
सिंगापुर	–	–	2.9	3.2	1.9	2.0
मलेशिया	–	–	2.8	2.4	1.8	2.0
इंडोनेशिया	–	–	2.2	1.9	2.7	3.1
चीन	–	–	9.1	10.8	11.8	11.8
संयुक्त अरब अमीरात	–	–	4.5	7.7	8.9	7.5

स्रोतः आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, नई दिल्ली।

तालिका 5.6 के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वर्ष 1990-91 में भारतीय आयातों में यूरोपीय सहयोग एवं विकास संगठन तथा यूरोपीय संघ का हिस्सा सर्वाधिक था जो बाद में कम हो गया है जबकि तेल निर्यातक देशों के संगठन का हिस्सा बढ़ा है। इसी प्रकार संयुक्त ब्रिटेन सहित लगभग अन्य यूरोपीय देशों से भी भारत के आयात प्रतिशत में कमी आई है। यद्यपि स्विटजरलैण्ड का भारतीय आयातों में हिस्सा वर्ष 2006-07 के 4.8 प्रतिशत से बढ़कर 2010-11 में 6.6 प्रतिशत हो गया है। इसके अतिरिक्त संयुक्त अरब अमीरात, इंडोनेशिया व सऊदी अरब से भारत के आयातों के हिस्से में भी वृद्धि हुई है। उल्लेखनीय है कि विकासशील देशों से भारतीय आयातों में चीन का विगत वर्षों में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

5.5 अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय अभ्यास प्रश्न

1) भारतीय रूपये को पूर्ण परिवर्तनीय बना दिया गया है –

(क) चालू खाता (ख) पूँजी खाता

(ग) उपर्युक्त दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

2) अगस्त 2004 में घोषित विस्तृत विदेश व्यापार नीति की अवधि थी –

(क) 2004-2005 (ग) 2004-09

(ख) 2004-2007 (घ) 2005-10

3) 'सर्व्ड फ्रॉम इण्डिया योजना' का सम्बन्ध निम्नलिखित में से किससे था?

(क) वस्तुओं के निर्यात (ग) सेवाओं के निर्यात

(ख) पूँजीगत प्रवाह (घ) वस्तुओं के आयात

4) अगस्त 2009 में घोषित विदेश व्यापार नीति के अन्तर्गत निर्यातों को बढ़ाने का लक्ष्य है–

(क) 1.5 गुना (ग) 2.5 गुना

(ख) 2 गुना (घ) इनमें से कोई नहीं

5) विदेश व्यापार नीति 2009-14 में निर्यातोन्मुखी इकाइयों को अपने उत्पादों का कितने प्रतिशत घरेलू बाजार में बेचने की अनुमति थी?

(क) 50 प्रतिशत (ग) 80 प्रतिशत

(ख) 60 प्रतिशत (घ) 90 प्रतिशत

6) भारत के विदेशी व्यापार का 2009 में विश्व व्यापार में हिस्सा था –

(क) 0.6 प्रतिशत (ग) 1.5 प्रतिशत

(ख) 1.0 प्रतिशत (घ) 2.0 प्रतिशत

7) विश्व व्यापार संगठन की रिपोर्ट (2010) के अनुसार भारत का सेवाओं के व्यापार में कौन सा स्थान है?

(क) द्वितीय स्थान (ग) दसवाँ स्थान

(ख) पाँचवा स्थान (घ) बीसवाँ स्थान

8) वर्ष 2008-09 में निर्यातों का आयातों से अनुपात था –

(क) 0.61 (ग) 0.84

(ख) 0.75 (घ) 0.92

9) भारतीय निर्यातों में वर्ष 2010-11 में विनिर्मित वस्तुओं का प्रतिशत हिस्सा था –

(क) 50 प्रतिशत (ग) 68 प्रतिशत

(ख) 60 प्रतिशत (घ) 72 प्रतिशत

10) भारतीय आयातों में वर्ष 2010-11 में पेट्रोलियम, तेल व स्नेहक का क्या हिस्सा था–

(क) 25.4 प्रतिशत (ग) 30.1 प्रतिशत

(ख) 28.6 प्रतिशत (घ) 31.5 प्रतिशत

11) भारतीय निर्यातों में रूस का हिस्सा 1990-91 के 18.3 प्रतिशत से घटकर कितना रह गया है?

(क) 10 प्रतिशत (ग) 2 प्रतिशत

(ख) 5 प्रतिशत (घ) 0.6 प्रतिशत

12) वर्ष 2010-11 में भारतीय आयातों में सर्वाधिक हिस्सा किस देश का था?

(क) संयुक्त राज्य अमरीका (ग) चीन

(ख) संयुक्त अरब अमीरात (घ) सऊदी अरब

5.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप परिचित हो गए होंगे कि भारत की विदेश व्यापार नीति का मुख्य उद्देश्य विकास की उच्च दर को प्राप्त करना तथा देश में गरीबी को दूर करना है। भारत में चूँकि आरम्भिक दशकों में प्रतिबंधात्मक व्यापार नीति को अपनाया गया था जिससे उत्पादन में धीमी वृद्धि के साथ विश्व व्यापार में भारत के हिस्से में कमी आई थी। अतः यह अनुभव किया जाने लगा कि इन संरक्षणवादी नीतियों के क्रियान्वयन से देश में औद्योगिक अकुशलता पनप रही है और विकास की प्रक्रिया अत्यंत मंद है। अतः 1991 के आर्थिक संकट तथा चीन व अन्य पूर्वी एशियाई देशों द्वारा अपनी अर्थव्यवस्थाओं में उदारीकरण एवं निर्यातोन्मुखी विकास कार्यनीति को अपनाकर की गई प्रगति ने भारत में भी आधारभूत नीतिगत सुधार उपायों को शुरू करने के लिए प्रेरित किया। फलस्वरुप 1991 की नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत भारतीय अर्थव्यवस्था में अनेक क्षेत्रों, विशेषतया व्यापार क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुधार शुरू किए गए। इसके अन्तर्गत सभी प्रकार के कोटा को समाप्त करने के साथ प्रशुल्कों को धीरे-धीरे कम किया गया है। विदेशी व्यापार में स्थायित्व एवं प्रगति बनाए रखने के लिए वार्षिक निर्यात-आयात नीति के स्थान पर पाँच वर्षीय विदेशी व्यापार नीति को लागू किया गया। फलस्वरुप सुधार काल के दौरान भारत में तीव्र विकास के साथ अर्थव्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन हुए। इस अवधि में भारत के विदेशी व्यापार का हिस्सा 1990 के 0.68 प्रतिशत से बढ़कर 2009 में लगभग 2.0 प्रतिशत हो गया है। इसके अतिरिक्त, भारत के निर्यातों एवं आयातों की संरचना में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। साथ ही भारत के विदेशी व्यापार की दिशा में भी परिवर्तन हुए हैं और अब यह एशियाई एवं अफ्रीकी विकासशील देशों के साथ अधिक है।

5.7 शब्दावली

- **व्यापार नीति** – यह वह नीति है जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित करती है। इसमें विशेषतया प्रशुल्क एवं गैर प्रशुल्क बाधाओं को सम्मिलित किया जाता है।
- **विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र** – भारत में सरकार द्वारा निर्यातों में वृद्धि हेतु स्थापित क्षेत्र जिसमें उत्पादों को अनेक छूट व सुविधाएँ प्रदान की गई हैं।
- **फोकस प्रोडक्ट** – ऐसे निर्यात उत्पाद जिनके निर्यात को बढ़ाने हेतु सरकारी योजना द्वारा प्रयास किया जा रहा है।
- **आयात कोटा** – किसी वस्तु के आयात पर लगाई गई मात्रात्मक सीमा जिससे अधिक उस वस्तु का आयात नहीं किया जा सकता।
- **अदृश्य व्यापार** – सेवाओं जैसे – बीमा, बैंक, जहाजरानी आदि के व्यापार को अदृश्य व्यापार कहा जाता है।
- **खुली अर्थ व्यवस्था** – ऐसी अर्थ व्यवस्था जिसमें दूसरे देशों के साथ विदेशी व्यापार स्वतंत्र होता है और विदेशी व्यापार में किसी प्रकार का सरकारी हस्तक्षेप नहीं होता है।

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1) (क) चालूखाता	2) (ग) 2004-09	3) (ग) सेवाओं के निर्यात
4) (ख) 2 गुना	5) (घ) 90 प्रतिशत	6) (घ) 2.0 प्रतिशत
7) (ग) दसवाँ स्थान	8) (क) 0.61	9) (ग) 68 प्रतिशत
10) (ख) 28.6 प्रतिशत	11) (घ) 0.6 प्रतिशत	12) (ग) चीन

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- झिंगन, एम.एल. (2011). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" षष्टम संस्करण, वृंदा पब्लिशिंग प्रा. लि., दिल्ली।
- अग्रवाल एवं बरला (2008). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र"लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- राणा, के.सी. व वर्मा, के.एन. (2012). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" विशाल पब्लिशिंग कं., जालन्धर।
- Government of India, 'The Economic Survey', New Delhi (various years).

5.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Bhagwati, J.N. (1993). Indian Economy. The Shackled Giant, Clarendon Press.
- Joshi, V. and I.M.D. Little (1994), India: Macroeconomics and Political Economy 1964-1990, Oxford University Press, New Delhi.

- Kenen, Peter B. (1994). The International Economy, 3rd ed., Cambridge University Press.

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 1990 के बाद की भारतीय व्यापार नीति का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. भारतीय व्यापार नीति में 1990 के पश्चात् किए गए सुधारों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
3. सुधारकाल के दौरान भारत के विदेशी व्यापार की प्रवृत्ति तथा दिशा का वर्णन कीजिए।
4. भारत के विदेशी व्यापार की संरचना में हाल में हुए परिवर्तनों की समीक्षा कीजिए।
5. भारत के आयात एवं निर्यात में सम्मिलित प्रमुख वस्तुओं का विवरण दीजिए।
6. भारत की विदेश व्यापार नीति 2009-2014 पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

इकाई-6 वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार (International Trade under the Imperfect Competition in the Commodity Market)

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता का आशय

6.3.1 अपूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादक का उद्देश्य एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

6.3.2 अपूर्ण प्रतियोगिता में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आवश्यकता

6.4 वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाऐं

6.4.1 अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाऐं एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

6.4.2 अपूर्ण प्रतियोगिता में विश्व व्यापार की विशेषताऐं

6.5 अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में लाभ की स्थिति

6.6 अभ्यास प्रश्न

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.11 सहायक/उपयोगी ग्रन्थ सूची

6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

यह इकाई वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर आधारित की गयी है। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय व्यपार को बाजार की एक विशेष श्रेणी तक ही सीमित किया गया है। अपूर्ण प्रतियोगिता सामान्य बाजार व्यवस्था का एक भाग है जो पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के बीच कार्यशील रहती है।

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता के आशय को स्पष्ट करने के साथ-साथ इस स्थिति में उत्पादक या विक्रेता के उद्देश्यों को भी स्पष्ट किया गया और अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत विदेशी व्यापार की क्या आवश्यकता है? इसे बताते हुए बाजार की विभिन्न दशाओं के अन्तर्गत होने वाले विदेशी व्यापार का विश्लेषण किया गया है। इसके साथ बाजार की इस अवस्था के अन्तर्गत लाभों की स्थिति को भी समझाने का प्रयास किया गया है। अपूर्ण प्रतियोगिता में विदेशी व्यापार की विशेषताओं के बारे में जानकारी दी गयी है।

प्रस्तुत इकाई को भली भांति समझाने के लिए अनेक भागों एवं उपभागों के अन्तर्गत वर्गीकरण का सहारा लिया गया है क्योंकि इकाई की विषयवस्तु का क्षेत्र अत्यन्त जटिल है। विदेशी व्यापार के लगातार विस्तार तथा बदलती दिशाओं के साथ व्यापार की वास्तविक स्थिति को समझना अत्यन्त आवश्यक है ताकि सरकार एवं व्यापारी उचित निर्णय इस दिशा में ले सकें।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप समझ सकेंगे कि -

- ✓ वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत विदेशी व्यापार क्यों किया जाता है तथा विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाऐं किस प्रकार लागू होती हैं?
- ✓ अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के द्वारा लाभ की किस सीमा तक लाया जा सकता है? इसके द्वारा विक्रेता तथा उपभोक्ता दोनों वर्गों के लाभों के बारे में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शक्तियां किस प्रकार कार्य करती हैं?
- ✓ बाजार की शक्तियां अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत किस सीमा तक अपना कार्य स्वतंत्रता पूर्वक नहीं कर सकती हैं तथा देश की अर्थव्यवस्था के विकास में अपूर्ण प्रतियोगी बाजार किस हद तक उपयोगी सिद्ध होगा।
- ✓ अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत विश्व व्यापार की नवीनतम विशेषताऐं क्या हैं?

6.3 वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता का आशय

आपने शायद वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त की हो। सामान्य रूप से वस्तु बाजार में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पूर्ण प्रतियोगिता की कल्पना ही की जा सकती है। वास्तविकता के आधार पर पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति का पाया जाना अत्यन्त कठिन है। ठीक यही स्थिति एकाधिकार के संदर्भ में पायी जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संदर्भ में आपने देखा होगा कि विश्व स्तर पर सभी

देशों की अर्थव्यवस्थाओं की अपनी अलग-अलग विशेषताऐं पायी जाती है जिनका एक दूसरे के साथ पूर्ण एकरूपता स्थापित किया जाना संभव नहीं है। इसीलिए सभी देशों में उत्पादन की मात्रा, तकनीकी तथा उत्पादन पर अधिकार एवं गुणवत्ता आदि में पर्याप्त समानता स्थापित नहीं हो पाती है। विश्व व्यापार का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत होने के कारण पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की स्थितियों का उत्पन्न होना संभव नहीं है।

इसी संदर्भ में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार बाजार की स्थिति के मध्य एक अन्य बाजार विकसति होता है जिसे अपूर्ण प्रतियोगी बाजार के रूप में जाना जाता है। अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति बाजार में उस समय पायी जाती है जब पूर्ण प्रतियोगिता की कोई दशा पूरी नहीं हो रही होती है। अर्थात् पूर्ण प्रतियोगिता के किसी भी तत्त्व की अनुपस्थिति में अपूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है।

प्रो. लर्नर के अनुसार - ***''अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार में उस समय पायी जाती है जब कि विक्रेता अपनी वस्तु के लिए एक गिरती हुई मांग रेखा का सामना करना पड़ता है।''***

आपको यहां पर एक महत्वपूर्ण पक्ष पर भी ध्यान दिलाना होगा कि अपूर्ण प्रतियोगिता के साथ-साथ एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का भी उल्लेख मिलता है। कहीं-कहीं पर एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के लिए ही अपूर्ण प्रतियोगिता शब्द का प्रयोग कर लिया जाता है लेकिन वास्तव में दोनों प्रतियोगी बाजारों में बाजार की दशाओं के आधार पर अन्तर किया जाता है जिससे पाठकों में भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

यहां पर अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं के अन्तर्गत विदेशी व्यापार का अध्ययन कर रहे हैं। इसीलिए यहां पर किसी बारीक तथा महत्वपूर्ण तथ्य को भुलाना उचित नहीं होगा। इसीलिए एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का अर्थ भी आपको समझना आवश्यक होगा।

सामान्य रूप से भी एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार बाजार के मध्य की स्थिति पायी जाती है। कुछ विद्वानों ने एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता को अपूर्ण प्रतियोगिता की एक अवस्था बताया है। अमेरिका के हार्वर्ड विश्व विद्यालय के **प्रो. ई. एच. चैम्बरलिन** ने इस एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। कभी-कभी एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता को समूह संतुलन के नाम से भी अध्ययन में शामिल किया जाता है। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करती है तथा अपनी कीमत उत्पादन नीति का स्वयं ही निर्माण करती है। प्रत्येक फर्म अपने मांग अनुमानों एवं लागत अनुसूचियों के आधार पर ही अपनी कीमत उत्पादन नीति का निर्धारण करती है। यह मानते हुए कि अन्य फर्मों के उत्पादन की कीमतें दी हुई हैं, प्रत्येक फर्म की वस्तु का अपना निश्चित मांग वक्र होता है।

6.3.1 अपूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादक का उद्देश्य एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

जिस प्रकार से एकाधिकारी अपने लाभ को अधिकतम करना चाहता है उसी प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत भी एक फर्म अपने लाभ को अधिकतम् करना चाहती है। ठीक इसी प्रकार अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में एक उत्पादक अपने लाभ को अधिकतम् करना चाहता है।

आपको यहाँ पर यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अभी पूर्ण प्रतियोगिता नहीं है और जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया है कि विभिन्न देशों की नीतियां एवं जनता की आवश्यकताओं के आधार पर एक देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में पूर्ण प्रतियोगिता की कुछ दशाओं को पूरा नहीं कर पाता है। अपूर्ण प्रतियोगिता

के अन्तर्गत एक उत्पादक अपनी फर्म का संतुलन उस विन्दु पर करता है जहां पर वह उत्पादन में और अधिक वृद्धि या सुधार नहीं कर सकता। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अधिकतम् विन्दु पर ले जाने के लिए बाजार में मांग भी खोजनी होती है। इसी प्रकार अन्य फर्में भी अपने उत्पादन को अधिकतम् करना चाहती हैं। विश्व व्यापार में मांग को सृजित करने के लिए जो उपाय किये जाते हैं उनके द्वारा ही बाजार अपूर्ण होता है। निकट प्रतिस्थापन वस्तुओं का उत्पादन करके फर्म अपने सन्तुलन की ओर अग्रसर होती है तथा अधिकतम् लाभ तक पहुँच सकती है।

आपको यहां पर यह बताना भी अत्यन्त आवश्यक है कि अधिकतम् लाभ के उद्देश्यों को अपूर्ण प्रतियोगिता में दो प्रकार से प्राप्त किया जाता है। अपने उत्पाद को बाजार में अपेक्षाकृत श्रेष्ठ प्रदर्शित करके अधिक कीमत वसूल की जाय या अपने उत्पादन में गुणवत्ता पैदा करके अधिकतम् बिक्री कर ली जाय। इस बाजार में स्थानापन्न वस्तुओं की अलग-अलग कीमतें वसूली जाती हैं इसीलिए दोनों प्रकार से अधिकतम् लाभ प्राप्त करने के लिए फर्म स्वतंत्र होती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया से अपूर्ण प्रतियोगिता को और बल दिया गया है। फर्मों को अधिकतम् बिक्री एवं अधिक कीमत वसूलने के लिए नवीन बाजारों की खोज के लिए भौगोलिक तथा राजनैतिक सीमाओं की बाधाओं में नहीं रहना होता। इसके साथ सूचना तकनीकी की प्रगति के कारण विज्ञापन आदि के द्वारा भी इस उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

आपको यहां पर यह भी बता दें कि वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का उद्देश्य अधिकतम् लाभ के साथ फर्मों के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अत्यधिक विस्तृत करना भी बनता जा रहा है। एकाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता के दुष्परिणामों से बचने के लिए भी व्यापार के सहयोगी राष्ट्रों द्वारा अपने यहां पर प्रतिस्थापन वस्तुओं का उत्पादन प्रारम्भ किया जाता है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों एवं विदेशों द्वारा उत्पादित माल की मांग कम हो जाती है। जिसका प्रभाव उस वस्तु की कीमत पर भी प्रतिकूल रूप में पड़ता है।

6.3.2 अपूर्ण प्रतियोगिता में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आवश्यकता

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आवश्यकता का सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अपनायी जाने वाली बाजार व्यवस्था से है। आपको यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि वर्तमान वैश्विक अर्थव्यवस्था प्रणाली के अन्तर्गत किसी उत्पादन का एकाधिकार बनना न तो आसान है और न ही व्यापार विस्तार की आवश्यकता के लिए पर्याप्त है। इसीलिए विदेशी व्यापार के उद्देश्य पूर्ति एवं देशों के लिए आवश्यक व्यापार विस्तार के लिए अपूर्ण प्रतियोगिता एक आवश्यक स्थिति है। इस सम्बन्ध में और अधिक प्रासंगिक बनाने के लिए एडम स्मिथ के निम्न कथन पर ध्यान देना अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होगा।

एडम स्मिथ के अनुसार - ***''विदेशी व्यापार किन्हीं भी दो स्थानों के मध्य हो, इससे दो लाभ अवश्य प्राप्त होते हैं। प्रथम तो जिस वस्तु की एक स्थान पर मांग नहीं है उसके स्थानान्तरण के बदले में विदेशी व्यापार के माध्यम से वह वस्तु प्राप्त होती है जिसकी वहां मांग है। एक स्थान पर लोगों के पास जो वस्तुऐं आवश्यकता से अधिक हैं, विदेशी व्यापार से उनका भी मूल्य प्राप्त हो जाता है तथा बदले में प्राप्त वस्तुओं के उपभोग से लोगों की आवश्यकताओं के एक अंश की पूर्ति होने के फलस्वरूप उनकी कुल संतुष्टि में वृद्धि होती है। विदेशी व्यापार के माध्यम से घरेलू बाजार की सीमितता किसी वस्तु विशेष के क्षेत्र में श्रम विभाजन को अवरूद्ध नहीं कर पाती। लोग अपने श्रम द्वारा जिन वस्तुओं का***

उत्पादन करते हैं, घरेलू उपभोग के पश्चात् शेष माल के लिए अधिक विस्तृत बाजार की उपलब्धि द्वारा विदेशी व्यापार देश की उत्पादक शक्तियों में वृद्धि करने की प्रेरणा देता है तथा उत्पादन में अधिकतम् सीमा तक वृद्धि करने की प्रेरणा प्रदान करके देश की वास्तविक आय में वृद्धि करता है।'' अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं की स्थिति के अन्तर्गत वस्तुओं की आकृति, रंग, रूप तथा विशेषताओं में अन्तर के कारण कीमतों में अन्तर आना स्वाभाविक हो जाता है। इसी सन्दर्भ में **प्रो. हैरोड** का यह कथन आपके लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रो. हैरोड के अनुसार - ***''एक देश को विदेशी व्यापार से उस समय लाभ प्राप्त होता है जबकि उस देश के व्यापारियों को यह मालूम हो कि विदेशों में मूल्य अनुपात उनके देश में प्रचलित मूल्य अनुपात में मूल्य अनुपात की तुलना में बहुत अधिक मिलता है। ऐसे समय में जो वस्तुऐं उन्हें सस्ती प्रतीत होती हैं उन्हें खरीदते हैं तथा जो वस्तुऐं महँगी मालूम होती हैं उन्हें बेचते हैं। इस प्रकार उनको ज्ञात हुए निम्नतम् एवं उच्चतम् विन्दुओं में जितना अधिक अन्तर होता है तथा उन वस्तुओं का महत्व जितना अधिक होगा उतना ही अधिक व्यापार से लाभ प्राप्त होगा।''***

उक्त कथन पर ध्यान दें तो आपको स्पष्ट होगा कि कीमत, अन्तर, सस्ती-महंगी वस्तुऐं, कम व अधिक महत्व की वस्तुओं का सम्बन्ध सामान्य रूप से अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं को पैदा करता है जो पूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार के अन्तर्गत देशों को मौद्रिक तथा गैर-मौद्रिक दोनों प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता में मौद्रिक लाभों में कमी तथा एकाधिकार में गैर-मौद्रिक लाभों में कमी पायी जाती है जो विदेशी व्यापार के लिए अत्यधिक अनुकूल नहीं हैं।

6.4 वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाऐं

वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की निम्नलिखित दशाऐं पायी जाती हैं।

1. **क्रेता एवं विक्रेता की कम संख्या:-** यदि आपने पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं का इससे पूर्व अध्ययन किया हो तो यहां पर यह कहा जाता है कि अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत क्रेता एवं विक्रेताओं की संख्या पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा कम पायी जाती है। अपूर्ण प्रतियोगिता में निकट स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता के कारण क्रेता एवं विक्रेताओं की संख्या अलग-अलग वस्तुओं के आधार पर विभोजित हो जाती है। इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि क्रेता एवं विक्रेताओं की संख्या समान हो। क्रेता एवं विक्रेताओं की संख्या आपस में कम या अधिक हो सकती है।
2. **निकट की स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता:-** अपूर्ण प्रतियोगिता की दूसरी दशा के अन्तर्गत निकट स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता का क्रय-विक्रय अलग-अलग कीमतों पर किया जाता है। कभी-कभी एक ही किस्म की वस्तुओं में दिखावटी अन्तर पैदा कर लिया जाता है तथा कुछ वस्तुओं के लिए ऊँची कीमत वसूल ली जाती है। यह अन्तर वस्तुओं का अलग-अलग तरीके से प्रचार एवं विज्ञापन करके भी किया जाता है जिससे उपभोक्ताओं को एक विशेष दिशा में मोड़ दिया जाता है। ग्राहकों को साख सुविधाऐं तथा अन्य प्रलोभन देकर भी निकट की स्थानापन्न वस्तुऐं बना दिया जाता है। फलस्वरूप बाजार में गैर-कीमत प्रतियोगिता पैदा होती है।

3. **ऊँचा यातायात व्यय:-** ऊँचा यातायात व्यय भी अपूर्ण प्रतियोगिता की एक आवश्यक शर्त है। वस्तुओं को अलग-अलग किस्म का बनाकर अलग-अलग कीमत वसूलने के लिए एक विक्रय केन्द्र से दूसरे विक्रय केन्द्र तक ले जाने के लिए यातायात व्यय बढ़ जाता है। कम उत्पादकों या विक्रेताओं की संख्या के कारण भी वस्तुओं का उत्पादन स्थानीय आवश्यकताओं के अनरूप नहीं हो पाता। स्थानीय उपलब्धता के कारण भी यातायात व्यय ऊँचा हो जाता है।
4. **क्रेता एवं विक्रेता का सीमित ज्ञान:-** वस्तु व्यापार में अनेक प्रकार की कठिनाईयों के कारण क्रेता वस्तुओं के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं कर पाता है। सामान्य रूप से परम्परागत रूप से भी वस्तुओं का क्रय किया जाता है। फैशन तथा दिखावा के कारण भी उपभोक्ता बाजार के बारे में अधिक ज्ञान नहीं रख पाता है। अशिक्षा, अज्ञानता, गरीबी तथा अन्य कारणों से भी क्रेता सामान्य रूप से ही वस्तुओं को खरीदता है तथा उसका उपभोग करता है। बाजार की जानकारी प्राप्त करने के प्रयास में भी विक्रेताओं द्वारा ग्राहकों को पूर्ण जानकारी नहीं दी जाती है जिससे वे अपनी वस्तु का अधिक विक्रय कर सके। सामान्य रूप से निकट स्थानापन्न वस्तुओं की स्थिति में प्रत्येक विक्रेता अपनी वस्तु को श्रेष्ठतम् रूप में प्रस्तुत करके बेचना चाहता है।

6.4.1 अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाऐं एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

इससे पूर्व में आपने अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं का अध्ययन किया जिसके आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में वस्तुओं के क्रय एवं विक्रय से सम्बन्धित अनेक पक्षों के बारे में विश्लेषण कर सकेंगे। अपूर्ण प्रतियोगिता की प्रथम दशा के अन्तर्गत क्रेता एवं विक्रेता की संख्या कम पायी जाती है। आपने ध्यान दिया होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार वाली वस्तुओं के उपभोक्ताओं की संख्या तो अत्यधिक होती है लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वस्तुओं का क्रय एवं विक्रय सामान्यरूप से सीधे उपभोक्ताओं द्वारा न होकर सरकार, सरकारी प्राधिकरण एवं निजी कम्पनियों आदि द्वारा किया जाता है। इसके साथ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत होता है लेकिन अर्थशास्त्र में एक वस्तु का एक बाजार होता है इसीलिए एक वस्तु का बाजार शायद आपकी संकल्पना से कहीं कम विस्तृत होता है। इसी आधार पर अपूर्ण प्रतियोगिता की प्रथम अवस्था अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में बिल्कुल सही पायी जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सीधे उपभोक्ताओं एवं सामान्य क्रेता-विक्रेताओं में गतिशीलता का अभाव पाया जाता है। इसीलिए भी वस्तु बाजार में क्रेता एवं विक्रेताओं की कमी पायी जाती है। इसके साथ अनेक प्रकार की अन्य सरकारी तथा गैर सरकारी बाधाओं के कारण भी प्रथम स्तर की दशा उत्पन्न हो जाती है।

द्वितीय दशा वस्तु बाजार में निकट स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता पायी जाती है। द्वितीय दशा के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु बाजार पर दृष्टि डालें तो यह पाया जाता है कि नवीन तकनीकी तथा सरकारी नीतियों एवं आवश्यकताओं के कारण समान वस्तुओं का उत्पादन करना संभव तो है लेकिन देशों के लिए आवश्यक नहीं है।

विभिन्न देशों के उत्पादन के सम्बन्ध में बौद्धिक सम्पदा का अधिकार तथा कापी राइट आदि के चलते भी अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की सभी शर्तों को लागू नहीं किया जा सकता है। शायद आपको ध्यान हो कि पूर्ण प्रतियोगिता की किस शर्त की अनुपस्थिति में ही अपूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है। एकाधिकार

सम्बन्धी अनेक समस्याओं एवं पिछड़े तथा विकासशील देशों के प्रति शोषण की नीति के चलते भी निकट स्थानापन्न वस्तुओं की खोज एवं उपलब्धता भी अपूर्ण प्रतियोगिता के लिए आधार प्रदान करती है। अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु बाजार का क्षेत्र अधिक बड़ा होने के कारण किसी संस्था द्वारा वस्तुओं का उत्पादन एवं वितरण अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुकूल संभव नहीं है। विश्व के देशों के मध्य आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा अन्य भौगोलिक अन्तरों के कारण समान वस्तुओं से आवश्यकता पूर्ति नहीं की जा सकती। अतः किसी विदेशी व्यापार में अपनी सहभागिता को बढ़ाने के उद्देश्य से निकट स्थानापन्न वस्तुओं की पूर्ति भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर की जाती है जिससे अपूर्ण प्रतियोगिता की द्वितीय शर्त पूरी की जाती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता की तीसरी शर्त के सम्बन्ध में भी पूर्ण समानता पायी जाती है। ऊँचा-याता व्यय तीसरी शर्त को इंगित करती है। ऊँचा-याता व्यय अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में एक सामान्य सत्य है। देशों के आकारा में अन्तर तथा देशों की आपसी भौगोलिक दूरी में अन्तर कारण यातायात व्यय में काफी अन्तर आता है। इसके साथ यह भी सत्य काफी सार्थक है कि देशों के अन्तर्गत यातायात के साधनों को भी अलग-अलग व्यवस्थाऐं हैं। परिवहन मार्गों की स्थिति भी यातायात व्यय को ऊँचा बनाता है।

अपूर्ण प्रतियोगिता की चौथी दशा क्रेता एवं विक्रेता का सीमित ज्ञान है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में क्रेता एवं विक्रेता एक समझौता विशेष के अन्तर्गत ही व्यापार करते हैं। सामान्य बाजार की तरह मोल भाव या स्थानीय स्तर पर उपलब्धता संभव नहीं है। देशों के मध्य आपसी सहयोग एवं मित्रता तथा पारस्परिक वैमनस्य राजनैतिक द्वन्दता के कारण वस्तु बाजार की पूर्ण जानकारी हो पाना अत्यधिक कठिन है। वहीं विदेशी व्यापार में वस्तुओं की सुलभ उपलब्धता तथा उपभोक्ताओं की रूचि एवं आकर्षण भी बाजार के पूर्ण ज्ञान को सीमित करता है।

इस आधार पर शायद आपको यह भली-भांति समझ में आ गया हो कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में न तो पूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है और न ही एकाधिकार की स्थिति पायी जाती है। अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं के अन्तर्गत ही विदेशी व्यापार का क्रियान्वयन एवं विस्तार हो रहा है।

6.4.2 अपूर्ण प्रतियोगिता में विश्व व्यापार की विशेषताऐं

आपने अपूर्ण प्रतियोगिता वाले वस्तु बाजार के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बन्धित अनेक पक्षों के बारे में जानकारी प्राप्त कर ली होगी। इसी क्रम में अपूर्ण प्रतियोगिता में विदेशी व्यापार की मुख्य विशेषताओं के बारे में आपको जानकारी देना भी लाभदायक होगा। ये मुख्य विशेषताऐं निम्न विन्दुओं के आधार पर स्पष्ट की जा सकती हैं:-

1. **फर्मों की संख्या में वृद्धि:-** विश्व व्यापार के क्षेत्र में यह देखने को मिला है कि विश्व की बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति करने एवं देशों की महत्वाकांक्षी योजनाओं की पूर्ति के लिए विश्व बाजार में नवीन फर्मों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। बढ़ती फर्मों की संख्या तथा बढ़ता उत्पादन का स्तर देशों के आर्थिक विकास का भाग समझा गया है। गरीबी तथा बेरोजगारी जैसे वैश्विक समस्याओं के हल के लिए भी इसे उचित माना गया है। क्योंकि नवीन फर्में रोजगार सृजित करके देश की आर्थिक वृद्धि में योगदान करती हैं।

2. **उत्पाद विभेदीकरण का विस्तार:-** वर्तमान में समाज में होने वाले सामाजिक परिवर्तनों ने उत्पाद विभेदीकरण को बल दिया है। फैशन तथा आर्थिक उन्नतिकरण के कारण भी व्यक्ति वस्तु के उपयोग तथा उपभोग को विभेदीकृत करता जा रहा है जिसकी पूर्ति विश्व के देशों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के द्वारा की गयी है। विश्व व्यापार में नवीन मांग का सृजन करने तथा बाजार के नवीन क्षेत्रों की खोज के कारण विश्व व्यापार का विस्तार हुआ है। उत्पाद-विभेदीकरण वर्तमान समाज की विश्व स्तर पर एक आवश्यकता बन गयी है।
3. **स्वतन्त्र बाजार प्रवेश:-** अपूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताओं के संदर्भ में विकसित तथा विकासशील देशों द्वारा व्यक्तिगत तथा सामूहिक स्तर पर किये गये आर्थिक सुधार कार्यक्रमों के कारण विश्व व्यापार में नवीन तथा पुरानी फर्मों का स्वतन्त्र वहिर्गमन तथा प्रवेश संभव हुआ है। इसके साथ तकनीकी तथा वित्तीय सुधारों के कारण बहु उत्पाद प्रणाली से भी विश्व व्यापार में फर्मों के स्वतन्त्र प्रवेश को बल मिला है।
4. **फर्मों का स्वतन्त्र नीति निर्धारण:-** विश्व व्यापार में संलग्न फर्मों द्वारा उदारीकरण तथा निजीकरण की प्रक्रिया में स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी नीतियों का निर्धारण कर रही है। तकनीकी प्रगति तथा वैश्विक राजनैतिक परिदृश्य के बदलते स्वरूप के कारण दूसरी फर्मों को आधार मानकर कोई फर्म विश्व बाजार में अधिक विस्तार के रूप में सफल नहीं हो सकती। स्वतन्त्र नीति के कारण ही बाजार में प्रतियोगिता की कमी होती जा रही है।
5. **प्रतियोगिता का निम्न स्तर:-** अर्थशास्त्रियों द्वारा विश्व स्तर पर बाजार को अधिक प्रतियोगी बनाने के सुझाव दिये जा रहे हैं लेकिन क्षेत्रीय अधिकता तथा देशों की जनता की सामाजिक आर्थिक स्तर में भिन्नता के कारण बाजार में प्रतियोगी वस्तुओं की मांग अलग-अलग आधार पर की जा रही है जिससे विश्व व्यापार में स्पर्द्धा का स्तर निम्न हो गया है। विभिन्न देशों की अलग-अलग व्यापारिक नीतियों से भी प्रतियोगिता प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुई है।
6. **विक्रय लागतें:-** वर्तमान विश्व व्यापार में विभिन्न देशों के लिए वस्तुओं की लागतें भिन्न-भिन्न स्तर पर पायी जाती हैं। इसके लिए देशों एवं फर्मों के लिए विज्ञापनों का माध्यम तथा विक्रय प्रणाली भी उत्तरदायी है। अलग-अलग फर्मों द्वारा अपने उत्पादनों की बिक्री के लिए अलग-अलग बाजार रणनीतियाँ तय की जाती हैं तथा उत्पादन के प्रचार के लिए अलग-अलग उपकरणों तथा माध्यमों का सहारा लिया जा रहा है। उदाहरण के लिए टैक्टर, टूथपेस्ट, सीमेन्ट, खाद्य तथा पेय पदार्थों का उत्पादन वैश्विक स्तर पर हो रहा है तथा विश्व बाजार में कुछ उत्पादों ने विक्रय तकनीकी का उचित प्रयोग करके आधिपत्य स्थापित कर लिया है।

6.5 अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में लाभ की स्थिति

पूर्व के बिंदुओं के अध्ययन के बाद आप वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत विदेशी व्यापार से सम्बन्धिक अनेक पक्षों को भलीभांति समझ गये होंगे। इस विन्दु के अन्तर्गत यह भी जानना आवश्यक है कि इस प्रकार के बाजार में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ की स्थिति क्या है? आपको पूर्व में बताया गया है कि अपूर्ण

प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तु की मांग का वक्र (Demand Curve) लोचदार होता है। जो व्यापारियों या उत्पादकों के लाभ की मात्रा या स्तर को प्रभावित करता है। शायद आपने ध्यान दिया हो कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वस्तुओं की मांग व पूर्ति की लोच का आकार तथा व्यापार की शर्तों में गहरा सम्बन्ध पाया जाता है। व्यापार की शर्तें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में लाभ को निर्धारित करने में सहायक होती हैं। व्यापार की शर्ते निर्यात कीमतों तथा आयात कीमतों के बीच सम्बन्ध को व्यक्त करती हैं। व्यापार की शर्तों की प्रकृति वस्तु की विदेशों में मांग की कीमत लोच तथा पूर्ति की लोच पर निर्भर रहती है। एक देश में दूसरे देश की वस्तु की मांग की लोच जितनी अधिक बेलोचदार होती है, पहले देश के लिए व्यापार की शर्तें उतनी की प्रतिकूल होंगीं तथा मांग की लोच अधिक होने की दशा में उसके लिए व्यापार की शर्तें अनुकूल होगीं।

आपको यहाँ पर यह भी स्पष्ट करना लाभदायक होगा कि एक देश की निर्यात की जाने वाले वस्तुओं की पूर्ति लोचदार है तो व्यापार की शर्तें उनके अनुकूल होगी तथा वस्तुओं की पूर्ति बेलोचदार होने पर व्यापार की शर्तें प्रतिकूल होंगीं। इसी संदर्भ में व्यापार से लाभी अधिक प्राप्त करने के लिए उस देश को व्यापार की शर्तों को अनुकूल बनाने पर जोर देना होगा। इसके विपरीत प्रतिकूल व्यापार शर्तों की स्थिति में उस देश को सीमान्त वस्तुओं पर हानि उठानी होगी। आपको यहां पर यह भी जोर देना होगा कि अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तु की मांग की लोच इकाई से अधिक होती है। जिसके सम्बन्ध में एक देश द्वारा विदेशी व्यापार से लाभ प्राप्त करने की दशा में अधिक प्रयास किया जा सकता है। जैसा कि आपने इकाई के अन्तर्गत पूर्व के विन्दुओं में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में ऊँचा यातायात व्यय को भी दर्शाया है। विदेशी व्यापार का क्षेत्र तथा वस्तुओं की मात्रा में अपेक्षाकृत अधिकता पायी जाती है। जिससे यातायात व्यय में अन्तर आता है। यातायात व्यय में यह अन्तर दो देशों में भौगोलिक दूरी तथा यातायात के साधनों की उपलब्धता पर निर्भर करता है। परिवहन लागत भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त होने वाले लाभों को प्रभावित करती है। यदि परिवहन लागत में कमी होती है तो विदेशी व्यापार का विस्तार होता है तथा विदेशी व्यापार से प्राप्त होने वाले लाभों की मात्रा भी बढ़ जाती है। इसके विपरीत परिवहन लागत के अधिक हो जाने पर व्यापार का क्षेत्र सीमित हो जाता है जिससे लाभ प्रतिकूल रूप में प्रभावित होते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों के संदर्भ में **प्रो. टॉजिंग** का यह कथन महत्वपूर्ण हो जाता है कि ***''अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से उस देश को सबसे अधिक लाभ होगा जिसके निर्यातों की मांग अधिक हो और उन वस्तुओं की मांग जिनका वह आयात करता है बहुत कम हो या उस देश में दूसरे देशों के निर्यातों की मांग कम हो। जिस देश में दूसरे देशों की उत्पादित वस्तुओं की मांग बहुत अधिक होती है उसे सबसे कम लाभ होता है।''***

आपको यहां पर यह ध्यान देना होगा कि अपूर्ण प्रतियोगी वस्तु बाजार में निकट की स्थानापन्न वस्तुऐं पायी जाती हैं जिससे अलग-अलग देशों के लिए प्रत्येक वस्तु की उपयोगिता अलग-अलग होती है जिससे मांग की लोच तथा पूर्ति पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है।

विद्वानों का विचार है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण बाजार प्रतियोगी हो जाता है। साधनों का पूर्ण उपयोग तथा विशिष्टीकरण के कारण लागतों में कमी आती है। किसी भी वस्तु के उत्पादन में अनेक साधनों की आवश्यकता होती है। प्राकृतिक साधनों का कुशलतम् तथा पूर्ण प्रयोग करने के लिए तकनीकी तथा दुर्लभ साधनों

के उचित प्रयोग की आवश्यकता होती है। जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर विदेशों से भी आयात करना होता है जिससे निजी संसाधनों का ईष्टतम् प्रयोग संभव हो जाता है।

6.6 अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. वस्तु बाजार से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में बताओ?
2. अपूर्ण प्रतियोगिता को संक्षेप में लिखो?
3. अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाऐं बताओ?
4. वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार किस प्रकार की श्रेणी का है?
5. गैर-कीमत प्रतियोगिता किस प्रकार के बाजार में पायी जाती है?
6. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अपूर्ण प्रतियोगिता के लाभ संक्षेप में बताओ?
7. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में क्रेता एवं विक्रेताओं की कम संख्या का कारण बताओ?
8. अपूर्ण प्रतियोगिता की कौन-कौन सी दशाऐं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में लागू होती हैं?

2. निम्न कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति ..... में पायी जाती है।
2. ..... तथा ..... के मध्य की स्थिति अपूर्ण प्रतियोगिता है।
3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में निकट ..... वस्तुऐं पायी जाती हैं।
4. आर्थिक, ... तथा ..... असमानताऐं पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अनुकूल नहीं होती हैं।

6.7 सारांश

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति पायी जाती है। अपूर्ण प्रतियोगिता, पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के निकटतम् स्थिति होती है। क्रेता-विक्रेताओं की कम संख्या, निकटतम् स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता, ऊँचा यातायात व्यय तथा क्रेता-विक्रेताओं को बाजार की अपूर्ण जानकारी अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाऐं हैं। अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाऐं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भी लागू होती है। इन दशाओं की उपस्थिति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर सरकारी तथा गैर सरकारी कारक उत्तरदायी है।

वैश्विक अर्थव्यवस्था की विशेषताओं तथा अलग-अलग देशों की अर्थव्यवस्थाओं की प्रवृत्तियों के कारण यह आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाऐं उत्पन्न की जाय। ताकि विश्व व्यापार के सहयोगी देशों को व्यापार के लाभों की प्राप्ति हो सके। पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार बाजार पिछड़े तथा अकुशल देशों के लिए अत्यन्त ही घातक है। आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा भौगोलिक कारक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति बनाने में सहायक हैं।

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत क्रेता व विक्रेता गिरती हुई मांग रेखा का सामना करता है। इसीलिए अपूर्ण प्रतियोगिता में विभिन्न देशों के व्यापारिक लाभों में भी अन्तर पाया जाता है। देशों के संरक्षण एवं जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी अपूर्ण प्रतियोगिता को आवश्यक समझा जाता है।

6.8 शब्दावली

- **वस्तु बाजार:-** वस्तु बाजार से हमारा तात्पर्य उस क्षेत्र से है जहां पर वस्तुओं का ही क्रय व विक्रय किया जाता है।
- **अपूर्ण प्रतियोगिता:-** अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत पूर्ण रूप से प्रतियोगिता नहीं हो पाती है एवं कुछ अपूर्णताऐं बाजार में पायी जाती हैं।
- **पूर्ण प्रतियोगिता:-** पूर्ण प्रतियोगिता में बाजार में सभी प्रकार की पूर्णताऐं पायी जाती हैं।
- **एकाधिकार:-** उत्पादन तथा विक्रय पर एक ही व्यक्ति या संस्था (उत्पादक) का अधिकार होता है तथा बाजार की शक्तियां स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं करती हैं।
- **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार:-**दो या दो से अधिक देशों के मध्य होने वाला व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कहलाता है।
- **मांग-पूर्ति:-** किसी समय विशेष में दी हुई कीमत पर वस्तुओं को क्रय करने एवं विक्रय करने की तत्परता मांग-पूर्ति कहलाती है।
- **गैर-कीमत प्रतियोगिता:-** गैर कीमत प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत को छोड़कर वस्तुओं के गुण, स्वरूप सम्बन्धी प्रतियोगिता की जाती है तथा अधिकतम् बिक्री का प्रयास किया जाता है।
- **व्यापार की शर्त:-** जिन शर्तों पर दो देशों के मध्य आयात-निर्यात सम्बन्धी निर्णय लिये जाते हैं उन्हें व्यापार की शर्तें कहा जाता है।

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2. निम्न कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. सामाजिक-भौगोलिक 2. स्थानापन्न 3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार 4. पूर्ण प्रतियोगिता-एकाधिकार

6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- आहूजा एच.एल. (2010) उच्चतर व्याप्ति आर्थिक सिद्धान्त, एच. चन्द एण्ड क. लि., रामनगर, दिल्ली।
- अग्रवाल एवं बरला (2008) अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, संजय पैलेस, आगरा।
- सेठ एम.एल. (2006) माइक्रो अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, संजय पैलेस, आगरा।

6.11 सहायक / उपयोगी ग्रंथ सूची

- मिश्र जगदीश नारायण (2010) भारतीय अर्थव्यवस्था, पुस्तक महल पब्लिशर्स, दरियागंज, नई दिल्ली।
- जालान, विमल (2008) 21वीं सदी में भारतीय अर्थव्यवस्था, प्रभात प्रकाशत, दिल्ली।

6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आवश्यकता को स्पष्ट कीजिए?
2. अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत विदेशी व्यापार से होने वाले लाभों को स्पष्ट कीजिए?
3. अपूर्ण प्रतियोगी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के उद्देश्यों की विस्तृत विवेचना कीजिए?
4. वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं के अन्तर्गत होने वाले विदेशी व्यापार के लाभों की स्थिति की विवेचना कीजिए?

इकाई-7 क्षेत्रीय गुट बहुपक्षवाद एवं विश्व व्यापार पद्धति
(Regional Faction, Multilateralism and World Trade System)

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 क्षेत्रीय गुट, बहुपक्षवाद

7.3.1 क्षेत्रीय गुट का अर्थ

7.3.2 बहुपक्षवाद का अर्थ

7.3.3 क्षेत्रीय गुट एवं बहुपक्षवाद की आवश्यकताऐं

7.4 क्षेत्रीय गुट एवं विश्व व्यापार पद्धति

7.4.1 क्षेत्रीय गुट एवं विश्व व्यापार के लाभ

7.4.2 क्षेत्रीय गुट एवं विश्व व्यापार की सीमाऐं

7.5 बहुपक्षवाद एवं विश्व व्यापार

7.5.1 बहुपक्षवाद की विशेषताऐं

7.5.2 बहुपक्षवाद एवं विश्व व्यापार के दोष

7.6 बहुपक्षवाद से जुड़ी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाऐं

7.6.1 विकसित देशों के क्षेत्रीय गुट

7.7 क्षेत्रीय गुट एवं भारत

7.7.1 अन्य विकासशील तथा पिछड़े देशों वाले क्षेत्रीय गुट

7.8 अभ्यास प्रश्न

7.9 सारांश

7.10 शब्दावली

7.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.13 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

7.14 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आप यह भलीभाँति समझ गये होंगे कि जब अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति विद्यमान हो तब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की क्या स्थिति होती है तथा इसका विभिन्न श्रेणी के देशों का व्यापार सम्बन्धी दशाओं पर क्या प्रभाव पड़ता है?

प्रस्तुत इकाई विश्व व्यापार के सम्बन्ध में क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद पर आधारित की गयीं हैं। इस इकाई के अध्ययन से आप अच्छी तरह समझ सकेंगे कि क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद क्या है एवं विश्व व्यापार पद्धति में इसकी क्या आवश्यकता है? दोनों स्थितियों में होने वाले लाभ-हांनि की दशाओं से भी आप परिचित हो सकेंगे। इस इकाई में यह समझाने का भी पूरा प्रयास किया गया है कि क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद विकासशील तथा विकसित देशों की अर्थ-व्यवस्थाओं के लिए कहाँ तक प्रसांगिक है तथा दोनों अर्थव्यवस्थाऐं किस पद्धति से विश्व व्यापार को संचालित करती है?

क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद का विश्व व्यापार से सम्बन्ध भलीभाँति समझने के बाद आपको अच्छी तरह से स्पष्ट होगा कि ये दोनों स्थितियाँ भारत के विदेशी व्यापार से क्या सम्बन्ध रखती है तथा भारत के विदेशी व्यापार की पद्धति को किस रूप में समय-समय पर प्रभावित करती है। प्रस्तुत इकाई से सम्बन्धित महत्वपूर्ण विश्लेषण को अग्रिम शीर्षकों एवं उपशीर्षकों के अन्तर्गत भलीभाँति स्पष्ट किया गया है।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के उद्देश्यों को निम्नलिखित रूप से स्पष्ट किया गया है:-

- ✓ क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद क्या है तथा विश्व व्यापार पद्धति से इसका क्या अन्तर्सम्बन्ध है?
- ✓ क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद की आवश्यकता विश्व व्यापार के सम्बन्ध में क्यों दिखाई देती है?
- ✓ क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद विश्व व्यापार के लिए कितना लाभदायक है तथा इसके दोषों को स्पष्ट करते हुए विकासशील तथा विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर पड़ने वाले प्रभावों को भी आप अच्छी तरह समझ सकेंगे?
- ✓ भारत के विश्व व्यापार में क्षेत्रीय गुटों एवं बहुपक्षवाद के क्या प्रासंगिकता है तथा यह दोनों स्थितियाँ भारत के विदेशी व्यापार को किस दिशा की ओर प्रभावित कर रहीं हैं?

7.3 क्षेत्रीय गुट, बहुपक्षवाद

वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्रिया में श्रम विभाजन, विशिष्टीकरण के आधार पर उत्पादन साधनों की दक्षता और कार्यकुशलता में वृद्धि करने में विदेशी व्यापार महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। ऐसी स्थिति में किसी देश की अर्थव्यवस्था को एक बन्द अर्थव्यवस्था के रूप में बनाये रखना सम्भव नहीं रह गया है। उपभोग एवं उत्पादन के लिए विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के मध्य पारस्परिक निर्भरता के कारण वस्तुओं का आयात एवं निर्यात अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गया है। सरकारी हस्तक्षेप की कमी तथा विश्व व्यापार बढ़ते स्वतन्त्र रूप के कारण विकासशील एवं पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं के सामने अनेक प्रकार की चुनौतियाँ भी व्यापारिक क्षेत्र

में उभरती रही है जो मुख्य रूप से प्रत्यक्ष या परोक्षतः विकसित देशों की विदेश व्यापार नीतियों से सम्बन्ध रखती है। वैश्विक परिदृश्य में छोटे तथा विकासशील राष्ट्रों के लिए अपनी अर्थव्यवस्थाओं को सुरक्षित रखना एवं उचित रूप में संचालित करना भी अत्यन्त आवश्यक है।

विकसित तथा विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की विदेश व्यापार नीतियों में उचित समन्वयन की कमी तथा विरोधी लक्ष्यपूर्ति के कारण वैश्विक अर्थव्यवस्था में क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद की उत्पत्ति होना स्वाभाविक है।

7.3.1 क्षेत्रीय गुट का अर्थ

''क्षेत्रीय गुट से तात्पर्य विदेशी व्यापार में शामिल ऐसे देशों के समूह से लगाया जाता है जो अपने पड़ोसी या समान लक्ष्य वाले दशों के साथ मिलकर व्यापारिक क्रियाओं में सहयोग करते हैं तथा सामान्यतः इन समूहों का अस्तित्व भौगोलिक राजनैतिक सीमाओं में शामिल रहता है।''

आपको यहाँ पर यह समझना अत्यन्त आवश्यक है कि क्षेत्रीय गुट का उदय या अस्तित्व दो आधारों पर किया जाता रहा है प्रथमतः व्यापारिक सहयोग के आधार पर तथा द्वितीयतः मौद्रिक सहयोग के आधार पर। सामान्यतः क्षेत्रीय गुटों को पाँच भागों में विभक्त किया जाता है।

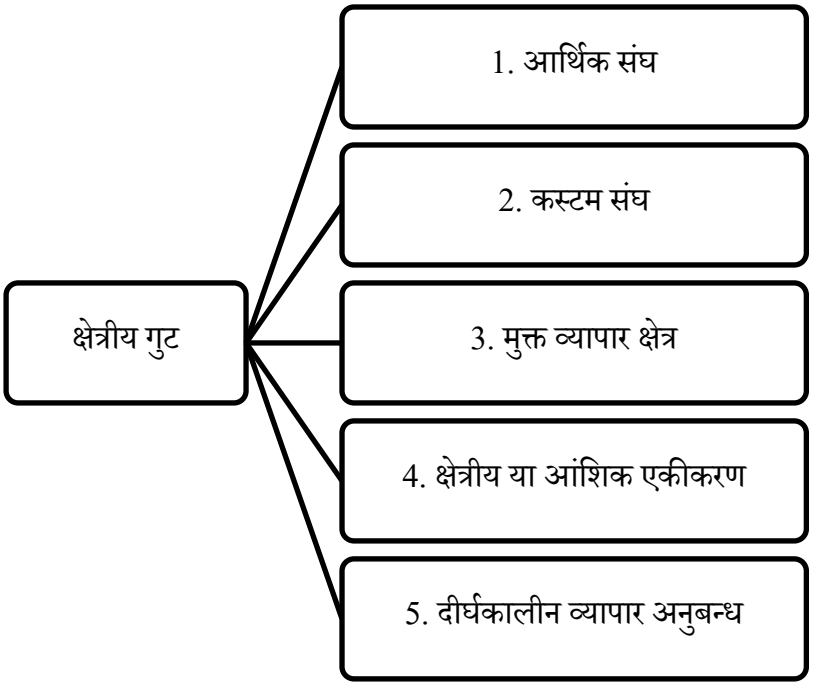

1. **आर्थिक संघ-** आर्थिक संघ के अन्तर्गत सदस्य देशों के मध्य पूँजी, श्रम, वस्तुओं एवं सेवाओं का राष्ट्रीय सीमाओं से स्वतंत्र होकर आवागमन होता है। सामान्य रूप से सदस्य देशों द्वारा अपनी-अपनी अर्थव्यवस्थाओं का एकीकृत कर दिया जाता है। संघ के सदस्य देशों की आर्थिक नीतियाँ समरूप एवं सामूहिक रूप से निर्धारित होती है। यहां पर अत्यन्त ध्यान देना होगा कि आर्थिक संघ की नीतियों में व्यक्तियों, वस्तुओं का स्वतन्त्र आवागमन, सामूहिक परिवहन सुविधाऐं, सामूहिक कृषि नीतियां, आर्थिक

विकास बैंक की स्थापना, प्रतियोगिता नियमों का निर्धारण, श्रम की गतिशीलता, सामाजिक कोष की स्थापना, रोजगार वृद्धि नीतियां आदि को शामिल किया जाता है।

2. **कस्टम संघ -** कस्टम संघ/यूनियन के अन्तर्गत सदस्य देशों के मध्य एक कस्टम सीमा का निर्धारण किया जाता है जिसके अन्तर्गत दो पक्षों पर ध्यान दिया जाता है।
   1. विदेशी व्यापार सदस्यों के साथ कोई प्रशुल्क नहीं लगाया जाता है।
   2. संघ से बाहर वाले देशों के साथ विदेशी व्यापार में समान रूप से प्रशुल्क की दरें निर्धारित की जाती है।
3. **मुक्त व्यापार क्षेत्र -** मुक्त व्यापार क्षेत्र के अन्तर्गत सदस्य क्षेत्रो के मध्य होने वाला व्यापार प्रशुल्क दरों से मुक्त होता है। लेकिन यह उत्पादन व्यापार करने वाले देशों में ही होना चाहिए। गैर सदस्य देशों के साथ समान रूप से प्रशुल्क दरें निर्धारित की जाती हैं लेकिन यह केवल पारस्परिक व्यापार की दशा में ही लागू होता है। अर्थात मुक्त व्यापार क्षेत्र का प्रत्येक सदस्य देश बाहरी देशों के साथ इच्छानुसार प्रशुल्क नीति अपनाने को स्वतंत्र है।
4. **क्षेत्रीय या आंशिक एकीकरण -** क्षेत्रीय या आंशिक एकीकरण के अन्तर्गत किसी विशेष वस्तु या वस्तुओं के समूह के विषय में एक साझा बाजार स्थापित किया जाता है जिसके अन्तर्गत आयात-निर्यात किसी प्रकार का प्रशुल्क नहीं लगाया जाता है और न ही मात्रात्मक, भेदात्मक, विरोधात्मक व बाजार विभाजन सम्बन्धी नीतियों का अस्तित्व पाया जाता है।
5. **दीर्घकालीन व्यापार अनुबन्ध -** दीर्घकालीन व्यापार अनुबन्ध के अन्तर्गत दो देशों के मध्य एक विशेष समयावधि के लिए एक या अधिक वस्तुओं के व्यापार सम्बन्धी अनुबन्ध किये जाते हैं। यह एक द्विपक्षीय व्यापार व्यवस्था है।

यहां पर आपको ध्यान देना होगा कि आर्थिक संघ की नीतियों में विदेशी व्यापार के साथ-साथ गैर-व्यापारिक नीतियों को भी समाहित किया जाता है। शेष अन्य गुटों में विदेशी व्यापार नीतियों पर ही विशेष वल दिया गया है।

7.3.2 बहुपक्षवाद का अर्थ

''सामान्य रूप से बहुपक्षवाद का अर्थ उस स्थिति से लगाया जाता है जिसमें विदेशी व्यापार में शामिल देश वस्तु व्यापार के साथ-साथ सेवाओं के व्यापार, व्यापार सम्बद्ध बौद्धिक सम्पदा अधिकार, व्यापार सम्बन्ध बौद्धिक सम्पदा अधिकार, व्यापार सम्बद्ध निवेश उपाय आदि मामलों में बिना किसी भेदभाव के वे समस्त सुविधाऐं प्राप्त करता है जिन्हें इन मामलों से सम्बन्धित अन्य देश सुविधाऐं प्राप्त करता है।''

आपको ध्यान देना होगा कि उक्त कथन में दो साक्ष्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं प्रथम बहुपक्षवाद का सम्बन्ध केवल वस्तुओं के आयात एवं निर्यात तक ही सीमित न रहकर व्यापार सम्बन्धी अन्य विषयों तक विस्तृत होता है। वही द्वितीयत बहुपक्षवाद को केवल दो या दो से अधिक कुछ देशों तक सीमित नहीं रखा जाता है। बहुपक्षवाद भौगोलिक-राजनैतिक विस्तार के साथ-साथ मदों के अत्यधिक विस्तार से जुड़ा हुआ एक महत्वपूर्ण आयाम है।

7.3.3 क्षेत्रीय गुट एवं बहुपक्षवाद की आवश्यकताऐं

एक लम्बी समयावधि में संचालित बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली का लाभ विश्व व्यापार में संलग्न देशों को उनकी वास्तविक आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं मिल सका जिसके परिणामस्वरूप अनेक देशों को अपने व्यापारिक हितों की सुरक्षा के लिए क्षेत्रीय आधार पर समझौते करने के लिए मजबूर होना पड़ा। बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली पर बड़े तथा विकसित देशों के लगातार बढ़ते अनावश्यक प्रभावों को देखते हुए विकासशील तथा छोटी अर्थव्यवस्था वाले राष्ट्रों के साथ व्यापारिक समझौते किये जाना अति आवश्यक हो गया।

विद्वानों का मानना है कि बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली को विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों के संसाधनों को अपने हितों में प्रयोग करने के लिए अपनाया जाने लगा तथा विकसित देशों के संसाधनों से पिछड़े तथा विकासशील देशों को दूर रखा जाने लगा। परिणामस्वरूप विकसित देशों ने भी क्षेत्रीय गुटों की नींव रख ली जिससे विकासशील तथा पिछड़े देशों के लिए अपने व्यापारिक तथा गैर व्यापारिक हितों की रक्षा करनी की चिंता बढ़ गयी। वर्तमान में भी अनेक ऐसे मुद्दे हैं जिनका समाधान बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली को नियंत्रित करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाऐं अभी तक नहीं निकाल सकी है। इसके पीछे विकसित देशों की पक्षपातपूर्ण गोपनीय रणनीतियां ही कही जा सकती हैं।

क्षेत्रीय गुट की आवश्यकता का तर्क इस आधार पर भी दिया गया है कि यह गुट सीमावर्ती देशों के साथ ही सामान्य रूप से स्थापित किये जाते हैं जिससे विदेशी व्यापार में परिवहन लागत सम्बन्धी अनेक कठिनाईयों से बचा आता रहा है। सदस्य देशों की संख्या कम होने से समस्याओं पर सभी देशों के हितों को ध्यान में रखा जाता है।

जहां तक बहुपक्षवाद की आवश्यकता का प्रश्न है, यह एक अत्यन्त जटिल विषय है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में उत्पापद के बढ़ते स्तर के कारण यह आवश्यक है कि नवीन तथा बड़े बाजारों की खोज की जाये इसके लिए अपने देश की भौगोलिक सीमाओं को पार करना अत्यन्त आवश्यक होने के साथ राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति भी एक महत्वपूर्ण कारक है। दो विश्व युद्धों के परिणामस्वरूप विश्व व्यापार में एकपक्षीय व्यापार का विकास प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ में विकासशील तथा युद्ध से पीड़ित राष्ट्रों एवं अन्य पिछड़े राष्ट्रों के हितों को प्रमुखता दी गयी। लेकिन बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के विकास के आधार पर इन देशों की आवश्यकताओं पर जोर दिया गया तथा विकसित देशों ने भी अपनी अर्थव्यवस्थाओं को भविष्य के लिए इतना सुरक्षित कर लिया है कि पिछड़े तथा विकासशील देशों पर दबाव बनाकर बहुपक्षीय व्यापार के लिए सहमत किया जा सके।

इस प्रकार बहुपक्षवाद के अन्तर्गत विश्व व्यापार प्रणाली विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं को सुदृढ़ करने, विदेशी व्यापार का विस्तार करने, राजनैतिक दबाव पैदा करने तथा विदेशी संसाधनों का प्रयोग समृद्ध राष्ट्रों के हितों में करने की एक आवश्यकता बनकर रह गयी है। वर्तमान में भी बहुपक्षीय व्यापार मंचों पर विकासशील देशों की अनदेखी की जा रही है। वास्तव में पिछड़े तथा विकासशील राष्ट्रों के विदेशी व्यापार में सहभागिता बढ़ाने तथा उनके संसाधनों का उनके हितों में कुशलतापूर्वक प्रयोग करने के लिए बहुपक्षवाद की आवश्यकता बनी हुई है।

7.4 क्षेत्रीय गुट एवं विश्व व्यापार पद्धति

क्षेत्रीय गुटों के अन्तर्गत अपनायी जाने वाली विश्व व्यापार पद्धति में समय में परिवर्तन के साथ-साथ अनेक प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं। बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के दोषों के समाधान खोजने का प्रयास क्षेत्रीय संघों/गुटों के माध्यम से किया गया है वहीं पर बड़े स्तरों पर अत्यन्त आवश्यक वस्तुओं एवं सेवाओं के आयात-निर्यात के लिए गैर सदस्य देशों पर भी निर्भर रहना होता है। इस संदर्भ में विश्व व्यापार के लाभ उनकी सीमाओं की विवेचना करना अत्यन्त आवश्यक होगा जिसे निम्नलिखित रूप में समझाया जा सकता है।

7.4.1 क्षेत्रीय गुट एवं विश्व व्यापार के लाभ

बहुपक्षीय व्यापार पद्धति के अन्तर्गत कुछ विशेष समस्याओं तथा मुद्दों को लेकर उपजे पिछड़े तथा विकासशील राष्ट्रों में असंतोष से जिन क्षेत्रीय गुटों की स्थापना हुई उनसे सदस्य देशों को लाभ मिलना स्वभाविक बात है। क्षेत्रीय गुटों के माध्यम से विश्व व्यापार सम्बन्धी लाभों को निम्न रूप में दर्शाया जा सकता है।

1. यदि क्षेत्रीय गुटों के सदस्य देशों से उपभोग की वस्तुऐं आयात की जाती हैं तो सदस्य देश में उपभोक्ताओं के उपभोग पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। पारस्परिक व्यापार की दशा में प्रशुल्क दरों की समाप्ति से वस्तुओं की कीमतों में कमी आती है।
2. सदस्य देशों की इकाईयों द्वारा क्षमता में विस्तार करने से उन्हें पैमाने की बचतें प्राप्त होती हैं। गैर सदस्य देशों से व्यापार करने के लिए साद्वत्मिक क्षमता का विकास होता है।
3. क्षेत्रीय गुटों के सदस्यों की सामूहिक नीतियों के चलते राष्ट्रीय आय, निवेश तथा रोजगार आदि पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।
4. क्षेत्रीय गुटों के सदस्य अनेक प्रकार की पूँजीगत तथा नवीन तकनीकी सम्बन्धी सुविधाऐं प्राप्त करते हैं तथा सदस्य देशों में राजनैतिक व सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण सौहार्दपूर्ण बनता है जिससे ये सदस्य देश विकसित देशों की शोषणकारी तथा अन्यायपूर्ण दबाव वाली नीतियों का कड़ा मुकावला करते हैं तथा अपने हितों की रक्षा करने में समर्थ होते हैं
5. क्षेत्रीय गुटों के अन्तर्गत व्यापारिक लाभों के साथ-साथ गैर-व्यापारिक लाभ भी प्राप्त करते हैं जिससे प्राकृतिक आपदा तथा अन्य अवसरों पर अनेक प्रकार की सहायताऐं प्राप्त होती हैं।
6. क्षेत्रीय गुटों से सदस्य देश सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार स्थापित करते हैं जिससे राजनैतिक द्वन्दता तथा युद्धकारी सम्भावनाओं से छुटकारा मिलता है जो सदस्य देशों के विदेशी व्यापार के विस्तार तथा आर्थिक विकास में अत्यन्त ही सहायक है।
7. क्षेत्रीय गुट समान विशेषताओं को लेकर ही स्थापित किये जाते हैं जिसके कारण सदस्य देशों की आन्तरिक समस्याओं वेरोजगारी, गरीबी, क्षेत्रीय विषमताऐं, अशांति-व्यवस्था, अशिक्षा, स्वास्थ्य समस्या आदि का समाधान निकालने में काफी सहायता प्राप्त होती है।

8. क्षेत्रीय गुटों की स्थापना सामान्यरूप से सीमावर्ती राष्ट्रों के साथ ही की जाती है जिससे विदेशी व्यापार के दौरान आने वाली परिवहन लागतों में कमी आती है तथा आयात-निर्यात में समय बचत के कारण जोखिमों में कमी आती है।

7.4.2 क्षेत्रीय गुट एवं विश्व व्यापार की सीमाऐं

क्षेत्रीय गुटों के अन्तर्गत होने वाला विदेशी व्यापार अनेक प्रकार की सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक तथा भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा सीमित होता है। आपको शायद ध्यान हो कि विश्व व्यापार के समझौतों में अनेक गतिरोध उत्पन्न होने से क्षेत्रीय संघों/मुक्त व्यापार क्षेत्रों आदि के गठन को बढ़ावा मिला लेकिन कुछ अर्थशास्त्रियों का मानना है कि मुक्त व्यापार क्षेत्रों के अन्तर्गत वैश्विक व्यापार में समृद्धि नहीं लायी जा सकती हैं सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री **प्रो. जे. भगवती** जैसे विचारक उद्गम स्थल के नियम को मुक्त व्यापार क्षेत्र की सफलता में सबसे बड़ी बाधा मानते हैं। लेकिन यह तर्क विकसित तथा विकासशील देशों के मध्य स्थापित क्षेत्रीय गुटों में ही अधिक प्रभावशाली कहा जा सकता है। इसके साथ ही गैर सदस्य देशों से होने वाला विश्व व्यापार मुक्त व्यापार क्षेत्र के अनुकूल प्रभावों को सीमित करता है।

विकासशील तथा पिछड़े देशों के मध्य राजनैतिक धार्मिक, सीमा-विवाद आदि विषयों को लेकर आये दिनों विवादास्पद स्थिति पायी जाती है ऐसी स्थिति में विश्व व्यापार बढ़ाने के लिए क्षेत्रीय गुटों की स्थापना सफलतापूर्वक नहीं की जा सकती है। भारत-पाकिस्तान, भारत-चीन, भारत-बांग्लादेश आदि देशों के मध्य राजनैतिक तथा सीमा विवादों के कारण क्षेत्रीय गुटों की सार्थकता नहीं हो सकी है। मुक्त व्यापार के परिमाण, वस्तुओं एवं सेवाओं की प्रकृति में अप्रत्याशित अन्तर आदि विभिन्नताऐं पायी जाती है जिससे सदस्य देशों के हितों की पूर्ण सुरक्षा नहीं हो सकती है और गैर सदस्य देशों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने होते हैं।

7.5 बहुपक्षवाद एवं विश्व व्यापार

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व के देशों की अर्थव्यवस्थाऐं अलग-अलग पड़े से एक पक्षीय व्यापार को वरीयता दी गयी जो देशों के व्यापार तथा विकास के लिए पर्याप्त नहीं थां ऐसी स्थिति में बहुपक्षवाद का उदय होना स्वाभाविक बना गया तथा बहुपक्षवाद एवं विश्व व्यापार एक दूसरे के पूरक के रूप में समझे जाने लगे। विश्व व्यापार को बढ़ावा देने के लिए इन देशों की अर्थव्यवस्थाओं से जुड़े अनेक गैर-व्यापारिक मुद्दों को भी सुलझाया जाना अति आवश्यक समझा गया जिन्हें बहुपक्षवाद में शामिल किया गया।

7.5.1 बहुपक्षवाद की विशेषताऐं

क्षेत्रीय गुट की उत्पत्ति एवं विश्व व्यापार सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने से आपको पूर्व ही विदित होगा कि बहुपक्षवाद की मूलभूत कठिनाईयों के कारण ही विकासशील तथा अर्थव्यवस्था वाले देशों ने क्षेत्रीय आधार पर संगठित होना प्रारम्भ किया जिससे उनके पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हो सकी। क्षेत्रीय आधार पर व्यापारिक समझौतों के मुख्य विशेषताओं का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि विश्व व्यापार के विस्तार, समृद्धि तथा

आपसी सहयोग शांति बनाये रखने के आधार पर बहुपक्षीय व्यापार का समर्थन लेना आवश्यक हो जाता है। बहुपक्षवाद की कुछ मुख्य विशेषताऐं निम्नलिखित हैं।

1. बहुपक्षीय व्यापार पद्धति अपनाने वाले देशों को बड़े पैमाने पर उत्पादन वितरण सम्बन्धी आन्तरिक तथा बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं जिससे देशों की राष्ट्रीय आय में वृद्धि सम्भव होती है तथा वहां की जनता की आवश्यकताऐं समयानुसार पूरी हो पाती हैं।
2. बहुपक्षीय व्यापार पद्धति में वे सब सुविधाऐं भी सदस्य देशों को आसानी से उपलब्ध हो जाती है जो एक क्षेत्रीय व्यापार संघ के सदस्यों को सामूहिक प्रयास के बाद भी उपलब्ध नहीं हो पाती है। विश्व व्यापार में आने वाली अन्य आर्थिक-राजनैतिक बाधाऐं भी समाप्त हो जाती हैं जो क्षेत्रीय गुटों के उदय से उत्पन्न होती हैं। नवीन तकनीकी, वित्तीय सहयोग एवं ऋण की सुलभ उपलब्धता पिछड़े तथा विकासशील देशों के विकास को तीव्र करने में सहयोगी हुई हैं।
3. बहुपक्षीय व्यापार पद्धति को नियंत्रित करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाऐं व्यापार सम्बन्धी समस्याओं का समाधान सामूहिक स्तर पर करती है जिनका लाभ विकसित देशों के साथ पिछड़े तथा विकाशील देशों को भी प्राप्त होता है।
4. व्यापार विस्तार तथा वित्तीय सहायता से पिछड़े तथा विकासशील देशों की कार्यकुशलता तथा उत्पादन स्तर में वृद्धि होती है। इसके साथ बाजार सम्बन्धी प्रतिस्पर्द्धात्मक क्षमता का विकास होता है। इन देशों में रोजगार के नये अवसर उत्पन्न होते हैं।
5. बहुपक्षीय व्यापार पद्धति से विकसित देशों के वित्तीय संसाधनों का प्रयोग विकासशील तथा पिछड़े देशों के हितों में बेरोजगारी-गरीबी दूर करने के लिए जाता है जिससे विकसित देशों को भी विनियोग का प्रतिफल प्राप्त होता है तथा पिछड़े एवं विकासशील देशों में बाजार का विस्तार होता है।
6. बहुपक्षीय व्यापार संस्थाओं के पास वित्तीय तथा गैर वित्तीय संसाधनों की अधिकता होती है जो प्राकृतिक आपदा तथा अन्य समस्याओं के समय सभी सदस्य देशों को समय से उपलब्ध हो जाती है। बहुपक्षीय व्यापार में शामिल देशों की संख्या अधिक होती है इसीलिए कोई विशेष देश सभी विषयों पर मनमानी नहीं कर सकता है। छोटे देशों की समस्याओं पर भी खुलकर विचार-विमर्श किया जाता है तथा उस समस्या का समाधान निकाला जाता है।

7.5.2 बहुपक्षवाद एवं विश्व व्यापार के दोष

बहुपक्षवाद द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से किये गये उपायों का ही परिणाम है। यद्यपि बहुपक्षवाद के माध्यम से अनेक देशों की अर्थव्यवस्थाओं को सुधारा गया। समय तथा बदलती राजनैतिक परिस्थितियों के आधार पर बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली में अनेक दोष पैदा हो गये जो पिछड़े तथा विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं के संचालन के अनुकूल नहीं थे और न ही इनकी समस्याओं पर गम्भीरता से विचार किया गया।

सबसे महत्वपूर्ण दोष यह पैदा हुआ कि छोटे तथा पिछड़े देशों के व्यापार विस्तार के लिए विकसित देशों ने कोई स्थान नहीं छोड़ा तथा विश्व व्यापार पर अपना आधिपत्य स्थापित करने की रणनीतियां तय की जिससे छोटे देशों के अस्तित्व पर खतरा उत्पन्न होने लगा। छोटे तथा विकासशील देशों के प्राकृतिक तथा गैर प्राकृतिक

संसाधनों पर विकसित देशों ने प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से अधिकार स्थापित करना प्रारम्भ किया तथा उनका शोषण करने की नीतियां तय की गयीं जिससे उन पर राजनैतिक दबाव भी बनाया जाने लगा।

7.6 बहुपक्षवाद से जुड़ी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाऐं

बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली से सम्बद्ध अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाऐं कार्यरत हैं जिनमें कुछ महत्वपूर्ण निम्नलिखित हैं।

1. **अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष** - अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्यों में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सन्तुलित विकास को शामिल किया गया। यह विभिन्न देशों के मध्य विश्व व्यापार के विस्तार के क्रम को जारी रखने में सहायता करता है तथा विश्व व्यापार से सम्बन्धित अनेक समस्याओं का निपटारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर करता है।
2. **विश्व बैंक** - विश्व बैंक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के दीर्घकालीन व्यापार हेतु तथा भुगतान संतुलन बनाये रखने हेतु दीर्घकालीन अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी विनियोग के द्वारा सदस्य देशों में उत्पादकता बढ़ाता है तथा इसके माध्यम से जीवन स्तर एवं श्रम की स्थिति में सुधार भी उत्पन्न करता है।
3. **प्रशुल्क-दरों एवं व्यापार पर सामान्य समझौता (गैट)** - युद्धोत्तर काल में एकपक्षीय व्यापार प्रणाली को बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली में बदलने के लिए गैट की स्थापना 1947 में की गयी थी। सदस्य देशों के मध्य बिना किसी भेदभाव के विदेशी व्यापार को बढ़ावा दिया गया तथा व्यापार से अनेक व्यापार के प्रतिबन्धों हटाया गया।
4. **विश्व व्यापार संगठन (WTO)** - एक जनवरी 1995 से गैट का स्थान विश्व व्यापार संगठन ने ले लिया। इसके अन्तर्गत विश्व व्यापार प्रणाली को और अधिक विस्तृत एवं विकसित किया गया। विश्व व्यापार संगठन में विश्व व्यापार समझौता एवं बहुपक्षीय तथा बहुवचनीय समझौतों के कार्य विनियम, प्रशासन एवं परिचालन हेतु, सुविधाओं हेतु प्रयासों पर विशेष ध्यान दिया गया है।
5. **संयुक्त राष्ट्र संघ का व्यापार एवं आर्थिक विकास पर अधिवेशन (अंक्टाड)** - संयुक्त राष्ट्र संघ का व्यापार एवं आर्थिक विकास पर अधिवेशन 1964 में संयुक्त राष्ट्र संघ की एक स्थाई एजेन्सी के रूप में स्वीकार किया गया। अंक्टाड बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली को विकसित करने का एक सशक्त माध्यम माना जाता है। इसका प्रमुख उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन देना था ताकि विकासशील तथा विकसित देशों के मध्य व्यापार का विस्तार हो सके। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बन्धित सिद्धान्तों, नीतियों एवं क्रियान्वयन पर अत्यधिक कार्य किया गया।

7.6.1 विकसित देशों में क्षेत्रीय गुट

विकसित देशों द्वारा अपने संसाधनों पर पूर्ण नियन्त्रण एवं विकासशील देशों तथा पिछड़े देशों को संसाधनों का अपने हित में प्रयोग करने के लिए क्षेत्रीय गुटों का सहारा लिया गया। विकसित देशों के मुख्य क्षेत्रीय गुट निम्नलिखित हैं।

1. आठ विकसित देशों का समूह (G-8)

2. उत्तर अमेरिकी मुक्त व्यापार समझौता (NAFTA)
3. यूरोपीय मुक्त व्यापार संघ (EFTA)

7.7 क्षेत्रीय गुट एवं भारत

विकसित देशों की दबावकारी एवं एकपक्षीय लाभ वाली नीतियों से बचाव के लिए पिछड़े तथा विकासशील देशों के साथ विकसित देशों के साथ भी क्षेत्रीय आधार पर व्यापार को बढ़ावा देने का प्रयास भारत द्वारा किया गया है। भारत अब तक 10 मुक्त व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर कर चुका है जो निम्नलिखित रूप में है:-

1. भारत की श्रीलंका मुक्त व्यापार समझौता
2. साफ्टा पर समझौता (भारत, पाकिस्तान, नेपाल, श्रीलंका, बांग्लादेश, भूटान और मालदीप)
3. भारत और नेपाल की सरकारों में अनाधिकृत व्यापार पर नियंत्रण के लिए संशोधित समझौता।
4. भारत, भूटान, व्यापार वाणिज्य और पारगमन समझौता।
5. भारत, थाईलैण्ड मुक्त व्यापार समझौता पूर्वतर फसल योजना
6. भारत सिंगापुर-सी.ई.सी.ए.
7. भारत आसियान - सी.ई.सी.ए. - वस्तु व्यापार समझौता (ब्रुनेई, कंबोडिया, लाओस, इंडोनेशिया, मलेशिया, म्यांमार, फिलीपींस, सिंगापुर, थाईलैण्ड, वियतनाम)
8. भारत-दक्षिण कोरिया-सी.ई.सी.ए.
9. भारत-जापान-सी.ई.सी.ए.
10. भारत-मलेशिया-सी.ई.सी.ए.

इसके साथ भारत द्वारा 5 सीमित क्षेत्र वरीय समझौते भी किये गये जो निम्न प्रकार हैं:-

1. एशिया प्रशांत व्यापार समझौता 'आप्टा (APTA) (बांग्लादेश, चीन, भारत, कोरिया, जापान, श्रीलंका)
2. व्यापार वरीयताओं की वैश्विक प्रणाली (GSTP) (अल्जीरिया, अर्जेन्टीना, बंग्लादेश, बेनिन, बोलीविया, ब्राजील, चिली, कोलम्बिया, क्यूबा, डी.पी.आर., कोरिया, इक्वेडोर, मिश्र, घाना, गिनी, गुयाना, भारत, इन्डोनेशिया, इराक, लीबिया, मलेशिया, मैक्सिको, मोजंबिक, म्यांमार, निकारागुवा, नाइजीरिया, पाकिस्तान, पेरू, फिलीपींस, कोरिया, गणराज्य, रोमानिया, सिंगापुर, श्रीलंका, सूड़ान, थाइलैण्ड, त्रिनिडॉड और टोबागो, ट्यूनिशिया, तंजानिया, बेनेजुएला, वियतनाम, यूगोस्लाविया, जिम्बाबे)
3. भारत-अफगानिस्तान
4. भारत-मर्कोसुर
5. भारत-चिली

7.7.1 अन्य विकासशील तथा पिछड़े देशों वाले क्षेत्रीय गुट

बहुपक्षीय प्रणाली के अन्तर्गत विकासशील देशों को यह महसूस होने लगा कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सुधार एवं विस्तार की रणनीति के सहारे विकसित देश पिछड़े तथा विकासशील देशों को आर्थिक सहायता का लालच देकर उन्हें अपनी रणनीति के चक्कर में फंसा लेते हैं और व्यापारी सम्बन्धी अनेक मुद्दों पर अनावश्यक

शर्तें इन देशों पर थोप देते हैं जिससे विकासशील तथा पिछड़े देशों की व्यापार शर्तें प्रतिकूल बनी रहती हैं और इनकी विकसित देशों पर निर्भरता बढ़ जाती है। इसी संदर्भ में भारत ने भी विकसित देशों की इस रणनीति के विरोध में अपना विदेशी व्यापार छोटे तथा विकासशील देशों के साथ बढ़ाने का भी लगातार प्रयास किया है तथा वर्तमान में भी इस दिशा में कार्य किया जा रहा है।

1. **यूरोपीय आर्थिक समुदाय (EEC) -** फ्रांस, बेल्जियम, लक्जमबर्ग, पं. जर्मनी, इटली, नीदरलैण्ड, आयरलैण्ड, डैनमार्क, ब्रिटेन, पुर्तगाल, स्पेन, ग्रीस, पोलैण्ड, हंगरी, स्लोवेनियां, लियुआनिया, चैक गणराज्य, एस्टोनियां, लाटविया, साइप्रस, माल्टा, बुल्गारिया, रोमानियां सहित 28 देश शामिल हैं।
2. **आर्थिक सहयोग तथा विकास संगठन (OEDC) -** परस्पर आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण के लिए नीतियों का समन्वयन करना तथा विकासशील देशों के कल्याण के लिए कार्य करना।
3. **दक्षिण-पूर्वी एशियाई राष्ट्रों का संघ आसियान (ASEAN)**
4. **एशिया प्रशान्त आर्थिक सहयोग (APEC) - 'इसे विश्व मामलों में एशिया प्रशान्त की आवाज'** कहा जाता है। इसका संयुक्त व्यापार विश्व के कुल व्यापार का 40 प्रतिशत से भी अधिक है।
5. **दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन-दक्षेस (SAARC) -** इसकी स्थापना दिसम्बर 1985 में हुई। इसका मुख्यालय काठमाण्डु में है। ठाका में सार्क कृषि केन्द्र स्थापित किया गया है तथा इस्लामाबाद में सार्क मानव संसाधन विकास केन्द्र स्थापित है।
6. **पेट्रोलियम निर्यातक देशों का संगठन-ओपेक (OPEC) -** तेल के विश्व व्यापार को बढ़ावा देने तथा तेज विश्व व्यापार सम्बन्धी समस्याओं के समाधान हेतु 1960 में स्थापित किया गया।
7. **शंघाई सहयोग संगठन (SCO) -**
8. **इब्सा (IBSA) -** विकसित देशों से विकासशील राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं को सुरक्षित करने के लिए 6 जून 2003 को स्थापित किया गया।
9. **बिम्सटेक (BIMSTEC) -** 6 जून 1997 को स्थापित किया गया।

7.8 अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में लिखिए?

(क) क्षेत्रीय गुट से आपका क्या तात्पर्य है?

(ख) बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली क्या है?

(ग) क्षेत्रीय व्यापार संगठनों के चार लाभ बताओ?

(घ) बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के दो दोषों को संक्षेप में लिखिए?

(ड़) बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली से जुड़ीं तीन संस्थाओं के नाम का उल्लेख कीजिए?

2. निम्नलिखित कथनों में से सही तथा गलत कथनों को छाँटिए -

(क) भारत विश्व व्यापार संगठन का सदस्य है।

(ख) भारत तेल निर्यात देशों के संगठन-ओपेक में संस्थापक सदस्य है।

(ग) भारत का पाकिस्तान के साथ मुक्त व्यापार समझौता है।

(घ) जी-8 विकासशील देशों का संगठन है।

(ड़) विश्व व्यापार संगठन 1 जनवरी 1995 को अस्तित्व में आया।

3. एक पंक्ति या एक शब्द वाले प्रश्न

(क) विकासशील देशों के व्यापार वृद्धि हेतु गठित तीन क्षेत्रीय गुटों का नाम बताओ?

(ख) इब्सा की स्थापना कब की गयी थी?

(ग) सार्क का मानव संसाधन विकास केन्द्र कहाँ पर स्थित है?

4. नीचे दिये गये कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(क) क्षेत्रीय गुटों की स्थापना ..... के दोषों के परिणामस्वरूप हुई।

(ख) क्षेत्रीय मूल का नियम ..... देशों की अर्थव्यवस्थाओं के सम्बन्ध रखता है।

(ग) भारत द्वारा ..... मुक्त व्यापार समझौते तथा ..... सीमित क्षेत्र वरीय समझौते किये गये हैं।

(घ) गैट की स्थापना ..... में की गयी।

(ड़) क्षेत्रीय गुट तथा ..... देशों के विदेशी व्यापार में अत्यधिक सहायक हैं।

(च) बहुपक्षीय विश्व व्यापार प्रणाली पर ..... देशों का आधिपत्य होता जा रहा है।

5. अंक्टाड पर संक्षिप्त लेख लिखो?

6. विश्व व्यापार संगठन का मुख्य उद्देश्य संक्षेप में लिखो?

7.9 सारांश

दो विश्व युद्धों की मार को झेलने के बाद विश्व की अधिकांश अर्थव्यवस्थाऐं लड़खड़ा गयीं तथा एक दूसरे के सम्पर्क में आने से कतराने लगीं। विश्व व्यापार की पद्धति एकपक्षीय बनकर रह गयी। ऐसे में यह आवश्यक था कि विश्व की अर्थव्यवस्थाओं को व्यापार तथा अन्य मुद्दों के द्वारा आपस में जोड़ा जाये तथा उनकी अर्थव्यवस्था की स्थिति को सुदृढ़ बनाया जाय। सामान्य रूप से इस प्रणाली को ही बहुपक्षवाद कहा जाने लगा जिसमें बहुत सारे देशों की अर्थव्यवस्थाओं से जुड़े व्यापारिक तथा अन्य मुद्दों को शामिल किया जाता है। बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली गति तेज होने पर विश्व समुदाय आर्थिक आधार पर दो गुटों में विभाजित होने लगा। प्रथम गुट विकसित देशों का तथा द्वितीय गुट गैर विकसित देशों का, जिसमें विकासशील तथा पिछड़े व छोटे देशा शामिल हुये। बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली में विकसित तथा पिछड़े देशों के व्यापारिक हितों की अनेक मामलों में अनदेखी की गयी परिणामस्वरूप क्षेत्रीय सहयोग या संघों का अस्तित्व उभरने लगा और विश्व में अनेक क्षेत्रीय गुटों की स्थापना हुई।

एक ओर बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली से सभी देशों को आर्थिक लाभ प्राप्त हुये तथा विश्व व्यापार का विस्तार हुआ वहीं क्षेत्रीय आधार पर संघों के अन्तर्गत छोटे तथा उभरती अर्थव्यवस्थाऐं को मजबूती मिली तथा बहुपक्षीय व्यापारिक समस्याओं का निराकरण आपसी सहयोग के आधार पर किया गया।

वर्तमान में बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली तथा क्षेत्रीय गुटों के अन्तर्गत व्यापार एक दूसरे पूरक है क्योंकि विकसित देशों ने भी अपनी स्वार्थ पूर्ति तथा पिछड़े देशों के संसाधनों के अधिक उपयोग हेतु क्षेत्रीय गुटों का

सहारा लिया है। भारत वर्तमान में बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली को अपनाते हुए बहुत अधिक संख्या में क्षेत्रीय गुटों में सहभागिता निभा रहा है।

7.10 शब्दावली

- **श्रम विभाजन** - श्रमिको की कार्यकुशलता एवं उनकी रूचियों के आधार पर कार्य विभाजन करना श्रम विभाजन कहलाता है।
- **विशिष्टिकरण -** जो साधन जिस कार्य में अधिक उत्पादकता एवं विशेष क्षमता रखता है उसे उसी कार्य पर संलग्न बनाये रखा जाता है।
- **वैश्विक अर्थव्यवस्था** - विश्व के देशों की व्यक्तिगत अर्थ व्यववस्थाओं की भौगोलिक सीमाओं को तोड़कर संचालन वैश्विक अर्थव्यवस्था कहलाता है।
- **विश्व व्यापार** - एक देश की भौगोलिक सीमाओं से बाहर दो या दो से अधिक देशों के मध्य होने वाला आयात-निर्यात विश्व व्यापार कहलाता है।
- **अंतर्राष्ट्रीय संगठन/समस्याऐं** - इस श्रेणी में वे संगठन या संस्थाऐं आती हैं जिनका कार्यक्षेत्र एक से अधिक देशों तक विस्तृत होता है तथा अंतर्राष्ट्रीय विषयों या मुद्दों को प्रभावित करती हैं।

7.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2. निम्नलिखित कथनों में से सही तथा गलत कथनों को छाँटिए –

(क) सत्य (ख) असत्य (ग) सत्य (घ) असत्य (ड) सत्य

3. एक पंक्ति या एक शब्द वाले प्रश्न

(क) 1. आठ विकसित देशों का समूह (G-8) 2. उत्तर अमेरिकी मुक्त व्यापार समझौता (NAFTA)3. यूरोपीय मुक्त व्यापार संघ (EFTA)

(ख) 6 June 2003

(ग) इस्लामाबाद

4. नीचे दिये गये कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(क) विकसित (ख) 1994 (ग) 10-5

(घ) छोटे-विकासशील (ड) बहुपक्षवाद (च) विकसित

7.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- अग्रवाल एवं बरला (2008) अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशन एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा संजय पैलेस, आगरा-282002
- मिश्र एण्ड पुरी (2011) भारतीय अर्थव्यवस्था हिमालय पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली।
- दत्त एवं सुन्दरम (2010) भारतीय अर्थव्यवस्थाएस चन्द एण्ड क0लि0, रामनगर, नई दिल्ली

- Cherunilam, Francis (2009) International Economics Oxford University Press India

7.13 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

- मिश्र, जगदीश नरायन (2011) भारतीय अर्थव्यवस्था, किताब महल पब्लिशर्स, हरिसदन अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।
- जालान, विमल (2008) 21वीं सदी में भारतीय अर्थव्यवस्था, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।

7.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद से आप क्या समझते हैं? विश्व व्यापार से इसका क्या सम्बन्ध है? स्पष्ट कीजिए।
2. विकासशील तथा विकसित देशों के विश्व व्यापार के लिए क्षेत्रीय गुट, बहुपक्षवाद की उपयोगिता को भलीभांति समझाइए?
3. बहुपक्षवाद से विकासशील देशों के विदेशी व्यापार पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों का उल्लेख कीजिए?
4. क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद का भारतीय विदेशी व्यापार पर पड़ने वाले प्रभावों की समीक्षा कीजिए?
5. बहुपक्षवाद के सम्बन्ध में विकसित देशों की रणनीति को समझाओ?

इकाई-8 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष
(International Monetary Fund)

8.1 प्रस्तावना

8.2 उददेश्य

8.3 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का आशय

8.4 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य

8.5 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का गठन, सदस्यता एवं पूंजी

8.6 भारत एवं मुद्रा कोष

8.7 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का कार्यकरण

8.7.1. वित्तीय संसाधन

8.7.2. कोष का आधार

8.7.3. कोष का उधार देना

8.7.4. अन्य सुविधाएं

8.8 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोषः उपलब्धियां और असफलताए

8.9 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में सुधार के सुझाव

8.10 अभ्यास प्रश्न

8.11 साराशं

8.12 शब्दावली

8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.15 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

8.16 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व इकाई में विश्व व्यापार के सम्बन्ध में क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद पर आधारित की गयी हैं। इस इकाई के अध्ययन से आप अच्छी तरह समझ सकेंगे कि क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद क्या है एवं विश्व व्यापार पद्धति में इसकी क्या आवश्यकता है? दोनों स्थितियों में होने वाले लाभ-हानि की दशाओं से भी आप परिचित हो सकेंगे। इस इकाई में आप ने क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद विकासशील तथा विकसित देशों की अर्थ-व्यवस्थाओं के लिए कहाँ तक प्रसांगिक है तथा दोनों अर्थव्यवस्थाएं किस पद्धति से विश्व व्यापार को कैसे संचालित करती है को जान सके है। प्रस्तुत इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना प्रमुख उद्देश्य, कार्यों, प्रशासन और मूल सिद्धान्त के साथ अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अब तक हुए कार्य विस्तार का वर्णन किया गया है। विश्व व्यापार के भुगतान संतुलन संकट को निपटाने में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की भूमिका किस रूप में प्रभावी है इसकी व्याख्या की गयी है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोषः उपलब्धियां और असफलतांए सुधार के उपाय से आप को अवगत कराया जायेगा।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगें कि

- ✓ अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना किस परिपेक्ष में की गई?
- ✓ इस संगठन का प्रमुख उद्देश्य क्या है?
- ✓ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इस संगठन की भूमिका क्या है?
- ✓ अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान संतुलन को निपटाने में संगठन की क्या भूमिका है?

8.3 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का आशय

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एक अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संगठन है, ब्रेटनबुड सम्मेलन के निर्णयानुसार 27 दिसम्बर,1945 को इसकी स्थापना वाशिंगटन में हुई थी, किन्तु इसने वास्तविक रूप में 1 मार्च, 1947 से कार्य प्रारम्भ किया था अप्रैल 2012 तक की स्थिति के अनुसार 188 राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के सदस्य हैं, 188वाँ सदस्य दक्षिणी सूडान को अप्रैल 2012 में बनाया गया है क्रिस्टीन लेगार्डे (Christine Lagarde) वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रबन्ध निदेशक है।

8.4 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के समझौता अनुच्छेदों (Articles of Agreement) के अनुसार इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है:

1. अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को प्रोत्साहित करना।
2. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सन्तुलित विकास करना।
3. विनिमय दरों में स्थिरता बनाए रखना

4. बहुपक्षीय भुगतानों (Multilateral payments) की व्यवस्था स्थापित करके विनिमय प्रतिबन्धों को समाप्त करना अथवा कम करना।
5. सदस्य देशों के प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन को ठीक करने के लिए अस्थायी तौर पर आर्थिक सहायता प्रदान करना।
6. अन्तर्राष्ट्रीय अदायगी के संकट के समय असन्तुलन की मात्रा एवं अवधि में कमी करना।

8.5 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का गठन, सदस्यता एवं पूंजी

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का नियन्त्रण एवं प्रबन्ध एक बोर्ड ऑफ गवर्नर्स (Board of Governors) में निहित है प्रत्येक सदस्य देश एक गवर्नर को मनोनीत करता है, जिन्हें मिलकर बोर्ड ऑफ गवर्नर्स का गठन होता है इस मनोनयन के साथ ही प्रत्येक देश एक वैकल्पिक गवर्नर को भी नियुक्त करता है, जो मुख्य गवर्नर की अनुपस्थिति में मतदान करता है प्रत्येक गवर्नर को कितने मताधिकार प्राप्त हों, यह उसके देश को प्राप्त कोटा के आधार पर निर्भर करता है प्रत्यक गवर्नर को 250 मत सदस्यता के तथा उसके देश को प्राप्त कोटे में प्रत्येक एक लाख विशेष आहरण अधिकार (एस.डी.आर.) पर एक अतिरिक्त मत देने का अधिकार है इन दोनों का योग ही सदस्य राष्ट्र के मताधिकार को व्यक्त करता है उदाहरण के लिए भारत का मताधिकार उसके 30555 लाख विशेष आहरण अधिकार (SDR) अभ्यंश के अनुसार 250 + 30555 = 30805 मत है इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में अधिक मत देने का अधिकार धनी एवं औद्योगिक देशों को मिला हुआ है क्योंकि उन्हीं के कोटे की राशि अपेक्षाकृत अधिक है आम तौर पर वर्ष में एक बार सितम्बर-अक्टूबर में इसके बोर्ड ऑफ गवर्नर की बैठक होती अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के संसाधनों में सर्वाधिक महत्व सदस्य देशों को आवंटित अभ्यशों (कोटा) का है 1971 तक मुद्रा कोष के समस्त अभ्यशों (Quotas) तथा इससे निकाली जाने वाली सहायता राशियों को डॉलर के रूप में व्यक्त किया जाता था किन्तु दिसम्बर 1971 से अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के समस्त लेन-देन विशेष आहरण अधिकार (Special Drawing Right SDR) के रूप में व्यक्त किए जाने लगे है 1971 में एक डॉलर को एक SDR के समान माना गया था किन्तु डॉलर का मूल्य गिरने के कारण अप्रैल 1995 के अन्त में एक एस.डी.आर. का मूल्य 1-585 डॉलर हो गया था वर्तमान (वर्ष 2008) में एक विशेष आहरण अधिकार (एस0डी0आर0) का मूल्य लगभग 1.54 डॉलर/Rs. 69.48 है। 1 जनवरी 1981 से SDR का मूल्य पांच सबसे बडे निर्यातक सदस्य देशों की मुद्राओं (U.S. Dollar, Mark. Yen Franc and Pound Sterling) की पिटारी (Basket) के आधार पर निर्धारित किया जाने लगा है।

वर्ष 1991 में विशेष आहरण अधिकार (SDR) के मूल्य निर्धारण में इन पॉच मुद्राओं का भार इस प्रकार था- अमरीक डॉलर 40%, जर्मन मार्क 21%, जापान येन 17%, ब्रिटिश पाउण्ड 11% तथा फ्रांस फ्रैंक 11% अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक क्षेत्र में SDR स्वर्ण मुद्रा की भूमिका अदा करता है इसलिए इसे कागजी स्वर्ण (Paper Gold) के नाम से भी जाना जाता है जनवरी 2008 में 13वीं सामान्य समीक्षा के बाद अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की कुल कोटा राशि 2,17,300 मिलियन विशेष आहरण अधिकार (SDR) थी। वैश्विक मन्दी से निपटने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने सदस्य राष्ट्रों को उनके अभ्यंशो के आधार पर 250 अरब विशेष आहरण अधिकार (SDR) की राशि का आवटन करने का निर्णय लिया था।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अभ्यंशों को स्वर्ण तथा स्थानीय करेन्सी के रूप को स्वर्ण तथा स्थानीय करेन्सी के रूप में जमा प्रवेश के समय कोटे की 25% राशि स्वर्ण या डॉलर के रूप में जमा करनी होती है तथा कोटे का शेष भाग वह करेन्सी के रूप में जमा करा सकता है अब तक 14 बार अभ्यंशों (Quotas) में परिवर्तन किया जा चुका है अभ्यंशों के आधार पर प्रथम स्थान अमरीका का है दूसरे स्थान पर जापान तथा जर्मनी का समान अभ्यंश है चौथे स्थान पर फांस तथा इंगलैण्ड का समान अभ्यंश है फरवरी 2003 में की गई अभ्यशों की 12वीं समीक्षा के बाद अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की कुल अभ्यंश राशि 213 अरब विशेष आहरण अधिकार (SDR) थी।

13वीं समीक्षा के अन्तर्गत सदस्य राष्ट्रों के कोटों में परिवर्तन उनकी अर्थव्यवस्था की स्थिति के अनुरूप ही किया गया था। कोटा पुनरीक्षण के चलते सदस्य देशों की मत शक्ति में भी परिवर्तन हो जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और वित्तीय समिति (IMFC) के द्वारा 13वीं बार अभ्यंशों में परिवर्तन की संस्तुति की थी जिसे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के निदेशक मण्डल ने 28 अप्रैल 2008 की बैठक में स्वीकृति प्रदान कर दी थी।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) में भारत का कोटा 582.15 करोड. एसडीआर से बढाकर 582.15 करोड. एसडीआर कर दिया गया है (एक एसडीआर का मूल्य वर्तमान में लगभग 1.54 डॉलर/ रू0 69.48 है) कोटा सम्बर्द्धन से देश पर पड़ने वाले अतिरिक्त वित्तीय भार को केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ने 11 सितम्बर, 2008 की बैठक में अनुमोदन प्रदान कर दिया था कोटा वृद्धि से अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में भारत का कोटा 1.91 प्रतिशत से बढकर 2.44 प्रतिशत हो गया कोटा वृद्धि से अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में भारत की मत शक्ति में भी वृद्धि हुई है।
साथ ही भारत आईएमएफ में 11वीं बड़े कोटा वाला देश हो गया है सर्वाधिक कोटा वाले 11 देशों का कोटा (प्रतिशत में) निम्नलिखित प्रकार से हो गया -

क्रम सं.	**देश**	**कोटा (प्रतिशत में)**
1.	संयुक्त राज्य अमेरीका	17.09
2.	जापान	6.13
3.	जर्मनी	5.99
4.	यू0के0	4.94
5.	फ्रांस	4.94
6.	चीन	3.72
7.	इटली	3.25
8.	सऊदी	3.21
9.	कनाडा	2.93
10.	रूस	2.74
11.	भारत	2.44

भारत, जो अभी तक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) से समय-समय पर अपनी आवश्यकतानुसार ऋण लेता रहा है, अब इसके वित्त पोषक राष्ट्रों में शामिल हो गया है दूसरे शब्दों में अब भारत इस बहुपक्षीय संस्था को ऋण अपलब्ध कराने लगा है मई व जून 2003 में दो अलग-अलग किश्तों में कुल मिलाकर 205 मिलियन विशेष

आहरण अधिकार (SDR) (291.70 मिलियन डॉलर) की राशि लागत ने मुद्रा कोष को फाइनेशियल ट्रांजेक्शन प्लान (FTP) के तहत् उपलब्ध कराई थी।

इस सम्बन्ध में रिजर्व बैंक द्वारा 28 जून, 2003 को जारी एक विज्ञप्ति में बताया गया था सितम्बर-नवम्बर 2002 की तिमाही से भारत को कोष के **'फाइनेंशियल ट्रांजेक्शन प्लान'** (FTP) की सदस्यता हेतु चुन लिया गया था फाइनेंशियल ट्रांजेक्शन प्लान में योगदान के लिए ऐसे राष्ट्रों को चुना गया है जिनकी स्वयं की भुगतान संतुलन (BOP) की स्थिति सुदृढ हो तथा जिनके पास पर्याप्त विदेशी मुद्रा कोष उपलब्ध हों ऐस राष्ट्रों से **'फाइनेंशियल ट्रांजेक्शन प्लान'** (FTP) में वित्तीय योगदान की अपेक्षा की गयी है ताकि दुर्बल भुगतान संतुलन वाले राष्ट्रों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जा सके। रिजर्व बैंक की विज्ञप्ति में कहा गया कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के फाइनेंशियल ट्रांजेक्शन प्लान के लिए भारत का चयन पहली बार ही किया गया तथा यह अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के लिए देश के मजबूत वैदेशिक क्षेत्र का संकेत है।

रिजर्व बैंक के अनुसार मुद्रा कोष के फाइनेंशियल ट्रांजेक्शन प्लान के लिए 5 मिलियन विशेष आहरण अधिकार (6.96 मिलियन डॉलर) की पहली किश्त भारत ने 7 मई, 2003 को अदा की थी,जबकि 284.21 मिलियन डॉलर की दूसरी किश्त 17 जून 2003 को अदा की इन अदायगियों के लिए इन तिथियों में इतनी ही विदेशी मुद्रा (क्रमशः 6.96 मिलियन डॉलर 284.21 मिलियन डॉलर) रिजर्व बैंक के आरक्षित कोष से सरकार ने खरीदी थी।

13वीं कोटा समीक्षा के बाद भी कोष सर्वाधिक कोटा होल्डर राष्ट्र अमरीका यद्यपि मुद्रा कोष की कुल कोटा राशि उसका अंश 17.52 प्रतिशत से कम होकर 17.09 प्रतिशत रह गया है।
13वीं कोटा समीक्षा के पश्चात् अर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की कुल कोटा राशि उसका अंश 2.44 प्रतिशत हो गया है कोटा पर आधारित भारत की सापेक्षिक स्थिति 12वीं हो गई है।

वर्तमान वैश्विक मन्दी से निपटने के लिए 14वीं समीक्षा के तहत् सदस्य राष्ट्रों की मदद के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) द्वारा लगभग 250 अरब एसडीआर (SDR 250b) का आवंटन सदस्य देशों में किया गया इससे इन देशों को अपने विदेशी मुद्रा कोष सुदृढ कर तरलता का प्रवाह बढाने में मदद मिलेगी मुद्रा कोष के प्रबन्धक मण्डल के अनुमोदन के पश्चात सदस्य राष्ट्रों को यह राशि 28अगस्त, 2009 को आवंटित की गई।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के 14वें कोटा पुनिरीक्षण (14th Quota Review) के तहत् भारत के 'कोटा' में होने वाली वृद्धि के प्रस्ताव को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने 25 अक्टूबर, 2011 को मंजूरी प्रदान की है इस पुनिरीक्षण के प्रभाव होने के पश्चात् कोष में भारत का कोटा 5821.5 मिलियन एसडीआर से बढकर 13114.4 मिलियन एसडीआर हो गया है तथा वह इस संस्था का आठवाँ बडा कोटाधारी (QuotaHolder) हो गया है अब भारत का कोटा 2.44 प्रतिशत से बढकर 2.75 प्रतिशत हो गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने अपने सदस्य राष्ट्रों को भुगतान सन्तुलन को ठीक करने के लिए सहायता हेतु 27 फरवरी,1963 को क्षतिपूर्ति वित्तीय सुविधा (Compensatory Financing Facility) स्थापित की 1974 तथा 1975 में अल्पकालीन तेल सुविधा (Temporary Oil Facility) 1976 में एक ट्रस्ट फण्ड तथा 13 सितम्बर, 1974 को सदस्यों की विशेष भुगतान सन्तुलन समस्या के लिए मध्यमकालीन सहायता हेतु विस्तारित

फण्ड सुविधा (Extended fund Facility-EFF) की स्थापना की मार्च 1986 में संरचनात्मक व्यवस्था सुविधा (Structural Adjustment Facility-SAF) की स्थापना की।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष के वित्त वर्ष 30 अप्रैल, 2003 को समाप्त होने के समय यह कोष 14 सदस्य देशों को आरक्षित सुविधा, 3 देशों को विस्तारित सुविधा तथा 36 निर्धन देशों को विस्तारित सुविधा तथा 36 निर्धन देशों को गरीबी हटाने तथा विकास सुविधा के अन्तर्गत उधार दे रहा था 30 अप्रैल, 2003 को इसका कुल उधार बकाया आरक्षित सुविधा के तहत् 48839 अरब विशेष आहरण अधिकार (SDR) विस्तारित सुविधा के तहत् 7206 अरब विशेष आहरण अधिकार (SDR) तथा विकास सुविधा के तहत् 4630 अरब विशेष आहरण अधिकार (SDR) थी।

स्वर्ण के बड़े भण्डार वाले देश (अक्टूबर 2009 के अन्त की स्थिति)

क्रम सं.	**देश**	**स्वर्ण भण्डार (टन)**
1	अमरीका	8133.5 2
2	जर्मनी	3408.5
3	इटली	2451.8
4	फ्रांस	2445.1
5	चीन	1054.0
6	स्विट्जरलैण्ड	1041.5
7	जापान	765.2
8	नीदरलैण्ड्स	612.5
9	रूस	568.4
10	भारत	557.7

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) द्वारा अपने ऋण योग्य संसाधनों में वृद्धि के लिए जो 403.3 टन सोने की बिक्री की गई है इसमें से 200 टन की खरीद भारत ने अक्टूबर 2009 में की आईएमएफ द्वारा 19-30 अक्टूबर, 2009 के दौरान प्रतिदिन की गई यह बिक्री उस दिन के बाजार मूल्य पर की गई थी तथा 200 टन सोने की खरीद के लिए 6.7 अरब डॉलर (रू0 31490 करोड) भारत ने चुकाए थे।सोने की इस खरीद से भारत के आरक्षित स्वर्ण भण्डार 357.7 टन से बढकर 557.7 टन हो गए थे तथा भारत विश्व के 10 बडे स्वर्ण भण्डारों वाले देशों में शामिल हो गया है :

8.6 भारत एवं मुद्रा कोष

भारत का मुद्रा कोष से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और उसकी नीतिःनिर्माण एंव कार्य संचालन में भारत निरन्तर योगदान देता रहा है समय-समय पर आर्थिक सहायता और परामर्श द्वारा भारत मुद्रा कोष से लाभान्वित हुआ है भारत कोष के संस्थापक सदस्यों में से एक है वित्त मंत्री अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के गवर्नर मण्डल का पदेन (**Exofficio**) गवर्नर होता है और भारतीय रिजर्व बैंक, भारत का प्रतिनिधित्व एक कार्यकारी निदेशक करता है जो

अन्य तीन देशों -बांग्लादेश, श्रीलंका तथा भूटान का भी प्रतिनिधित्व करता है 1970 तक भारत अधिकतम अभ्यंशों वाले प्रथम पांच देशों में से था और इस नाते उसको कार्यकारी निदेशक मण्डल में स्थायी स्थान प्राप्त था अन्य राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं के बेहतर निष्पादन के परिणामस्वरूप अब तक हुए विभिन्न कोटा पुनर्निरीक्षणों में कोष के कोटा धारकों में भारत का स्थान अब 11वॉ हो गया है 13वीं समीक्षा के अन्तर्गत भारत का कोटा कोष के कुल 21.73 अरब SDR में से 582.15 करोड विशेष आहरण अधिकार (SDR) था अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की 13वीं कोटा समीक्षा के फलस्वरूप इसकी कोटा राशि एवं मतशक्ति में भी वृद्धि हुई है अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के 14वीं कोटा समीक्षा के तहत् भारत का कोटा 5821.5 मि0 विशेष आहरण अधिकार (SDR) से बढकर 13114.4 मि0 SDR हो जाएगा तथा इस अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) में इसका आठवॉ बड़ा कोटाधारी स्थान हो जाएगा भारत ने 1981-84 की अवधि में 3.9 अरब डॉलर अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से उधार लिये थे 1991-93 के बीच में भारत ने 3.56 अरब डॉलर का ऋण लिया था कम्पेंसेटरी एण्ड कन्टीन्जेंसी फाइनेन्सिंग फैसिलिटी के तहत 1.35 अरब डॉलर तथा 2. 21 करोड़ डॉलर स्टैण्डबाई व्यवस्था के अन्तर्गत लिए थे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से लिए गए सभी ऋणों की आदायगी भारत ने पूरी कर दी है वर्ष 2002 से फरवरी 2006 तक भारत ने 493.230 मिलियन विशेष आहरण अधिकार (SDR) का लेनदेन अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से किया था और 466.474 मिलियन विशेष आहरण अधिकार (SDR) की पुनर्खरीद की थी। जुलाई 2004 में भारत और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने पुणे के राष्ट्रीय बैंक प्रबन्धन संस्थान में संयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम भारतीय कर्मचारियों और दक्षिण एशिया तथा पूर्व अफ्रीकी देशों के कर्मचारियों को अर्थशास्त्र तथा उससे सम्बन्धित क्षेत्र में नीति आधारित प्रशिक्षण मुहैया कराएगा पहला प्रशिक्षण कार्यक्रम जुलाई 2006 में आयोजित किया गया भारतीय रिजर्व बैंक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के साथ नोडल निकाय के रूप में इस कार्यक्रम को चलाएगा।

भारत दान के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सब्सिडी खाते में पैसा देता है औ 10 लाख डॉलर प्रतिवर्ष अर्थात् 15 वर्षों तक कुल 1.5 करोड़ डॉलर प्रदान करने का वायदा भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से किया है भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के (Poverty Reduction Growth Facility- PRGF) ट्रस्ट के सब्सिडी खाते को जुलाई 2006 के दौरान तेरहवीं वार्षिक किश्त के रूप में 10 लाख डॉलर का भुगतान किया था जोकि लगभग रू0 4.7 करोड के बराबर था।

8.7 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का कार्यकरण

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने विश्व आर्थिक परिस्थितियों में समय-समय हो रहे परिवर्तनों के अनुसार अपनी पूंजी, कोटे (अभ्यंश), उधार देने की प्रकिया, विनिमय दरों और अन्य नीतियों में संशोधन किए हैं। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है

8.7.1. वित्तीय संसाधन (Financial Resources)

कोटा और उनका निर्धारण (Quotas and their Fixation)- जब कोई देश कोष में शामिल होता है, तो उसका कोटा नियत कर दिया जाता है, जो उसके अंशदान की मात्रा, मताधिकार और निकासी अधिकारों को निर्धारित करता है। जब अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष बनाया गया था तब प्रत्येक सदस्य के लिए आवश्यक था कि वह

अपने कोटे का 25 प्रतिशत स्वर्ण के रूप में रखे, जिसे 1978 में समाप्त कर दिया गया। अब यह अंतर्राष्ट्रीय रिजर्व परिसम्पत्तियों में दिया जाता है। कोटा शेष 75 प्रतिशत भाग देश की अपनी करेंसी में अदा किया जाता हैं। हर पांच वर्ष के बाद कोटे का पुनरीक्षण किया जाता है और उसे समय-समय पर बढ़ा दिया जाता है। परन्तु कोटा तभी बढ़ाया जा सकता है जब कोष के सदस्यों की कुल मतदान शक्ति के 85 प्रतिशत बहुमत से प्रस्ताव पारित हो।

8.7.2. कोष का आधार (Fund Borrowing)

कोटा के अंशदानों के अतिरिक्त. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष सदस्यों को सोना बेचकर अपना कोष बढ़ाता है, यह सरकारों केन्द्रीय बैंकों अथवा औद्योगिक देशों की निजी संस्थाओं से, अन्तर्राष्ट्रीय परिशोधन बैंक से और सउदी अरब जैसे OPEC देशों तक से भी उधार लेता है।

8.7.3. कोष का उधार देना (Fund Lending)

कोष अपने सदस्यों को अपने संशाधन उधार लेने की अनेक प्रकार की सुविधाएं हैं। कोष की ओर से सदस्यों को उधार उनके चालू खाते में भुगतान-शेषों के असंतुलनों को वित्त, अस्थायी सहायता करने के लिए दिया जाता है। यदि किसी सदस्य की कोष के पास राशि उसके कोटे से कम है, तो यह अन्तर रिजर्व भाग (reserve tranche) कहलाता है। वह देश को आवेदन कर अपनी भुगतान-शेष आवश्यकताओं के लिए अपने आप रिजर्व भाग में 25 प्रतिशत भाग तक निकाल सकता है। उसे इस प्रकार के निकासों पर कोई ब्याज नहीं देना पड़ता परन्तु राशि तीन से पांच वर्ष के भीतर लौटानी पड़ती है। भुगतान-शेष की गंभीर समस्याओं को हल करने के लिए ऋण भाग के अनतर्गत कोष के संशाधनों के कुल निवल प्रयोग में से अपने कोटा के 300 प्रतिशत के बराबर तक निकाल सकते हैं। ये सीमाएं CCFF, BSAF, SAF, STF और ESAF के अन्तर्गत लागू नहीं होती। इन सुविधाओं से कर्जे, ऋण भागों से भिन्न हैं तथा दीर्घ अवधि के लिए उपलब्ध होते हैं। ये निम्नलिखित हैं:

1. **बफर स्टॉक वित्तपोषक सुविधा (Buffer Stock Financing Facility - BSFF)-** सदस्य देशों के वस्तु बफर स्टॉक के वित्त की व्यवस्था करने के लिए बफर स्टॉक वित्तपोषक सुविधा 1969 में स्थापित की गई थी।
2. **विस्तृत वित्तपोषक सुविधा (Extended Fund Facility - EFF) -** यह भी एक विशिष्ट सुविधा है जो 1974 में बनाई गई थी। EFF के अन्तर्गत, सदस्य देशों को कोष इस उद्देश्य के लिए ऋण प्रदान करता है कि वे अपेक्षाकृत लम्बी अवधियों के अपने भुगतान-शेष घाटों को पूरा कर सकें।
3. **पूरक वित्तपोषक सुविधा (Supplementary Financing Facility - SFF) -** इसकी स्थापना 1977 में हुई थी। इसका उद्देश्य था कि सदस्यों को विस्तृत या उद्यम प्रबंधों के अन्तर्गत पूरक वित्तपोषक व्यवस्था प्रदान की जाए ताकि वे अपने उन गम्भीर भगतान–शेष घाटों को पूरा कर सकें जो उनकी अर्थव्यवस्थाओं और उनके कोटों की तुलना में बहुत अधिक हों।
4. **संगठनिक समायोजन सुविधा (Structural Facilitv - SAF) -** कोष ने मार्च. 1986 में दरिद्रतम विकासशील देशों को रियायती समायोजन प्रदान करने के लिए SAF की स्थापना की। इसके अन्तर्गत

उन्हें भुगतान–शेष समस्याओं को सुलझाने तथा मध्य अवधि समष्टि-आर्थिक एवं संगठनिक समायोजन प्रोग्रामों को कार्यन्वित करने के लिए ऋण दिये जाते हैं।

5. **वर्धित संगठनिक समायोजन सुविधा (Enhanced Structural Adjustment Facility - ESAF)** - कोष ने दिसम्बर, 1887 में SDR 6 बिलियन के संसाधनों से निम्न आय देशों की मध्य अवधि की वित्तपोषक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए की ESAF स्थापना की।
6. **क्षतिपूरक एवं आकस्मिकता वित्तपोषक सुविधा (Compensating and Contingency Financing Facility - CCFF) -** क्षतिपूरक एवं आकस्मिक वित्तपोषक सुविधा अगस्त, 1988 में निर्मित की गई थी। इसका उद्देश्य आयातित अनाज की लागतों में अस्थायी कमियों का आधिक्य के लिए समय पर क्षतिपूर्ति प्रदान करना है जो सदस्यों के नियंत्रण के बाहर कारकों के कारण होती है और आकस्मिक वित्तपोषक का उद्देश्य बाह्य झटकों के होने पर कोष समर्थिक समायोजन प्रोग्रामों की गति कायम रखने के लिए सदस्यों को सहायता करना है जा सदस्यों के नियंत्रण के बाहर कारकों के कारण उत्पन्न होते है।
7. **व्यवस्थित रूपांतरण सुविधा (Systematic Transformation Facility - STF) -** अप्रैल 1993 में कोष ने रूस तथा अन्य केन्द्रीय एशियाई गणतंत्रों के लिए एक विशेष व्यवस्थित रूपांतरण सुविधा स्थापित की जिसमें 6 बिलियन डॉलर निश्चित किए गए हैं। जिन्हें व्यापार और भुगतान व्यवस्थाओं में गड़बड़ होने के कारण तीव्र भुगतान शेष संकट का सामना करना पड़ता है।
8. **आपात संरचनात्मक समायोजना ऋण (Emergency Structural Adjustment Loans - ESAL) -** 1999 के प्रारम्भ में कोष ने एशिया और लैटिन अमेरिका के वित्तीय संकट से ग्रस्त देशों की सहायता के लिए ESAL सुविधा स्थापित की है।

8.7.4. अन्य सुविधाएं (Other Facilities)

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अपने सदस्य देशों को विभिन्न प्रकार की परामर्श सहायता देता है। यह भुगतान शेष एवं प्रथम केनद्रीय बैंकिग सेवा विभाग है तीसरा, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष संस्थान है जो विभिन्न सदस्य देशों विशेषकर अल्पविकसित देशों के कर्मचारियों के लिए मौद्रिक, राजकोषीय, बैंकिग, विनिमय तथा भुगतान-शेष विषयक नीतियों पर अल्पावधि प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करता है। इनके अतिरिक्त कोष का रिसर्च विभाग वर्ष में अनेक रिपोर्ट प्रकाशित करता है जिनमें विभिन्न नीति विषयक सामग्री होती है। इन प्रकाशनों में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष वार्षिक रिपोर्ट और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष स्टाफ पेपर्स महत्वपूर्ण

8.8 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोषः उपलब्धियां और असफलताए (Achievements and Failures of IMF)

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की उपलब्धियों और असफलताओं की विवेचना निम्न प्रकार की जा रही है।

उपलब्धियां (Achievements)

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की मुख्य उपलब्धियां निम्न है :

1. **सुरक्षित कोष की स्थापना** - मुद्रा कोष के प्रावधान के अन्तर्गत प्रत्येक सदस्य देश को अपने कोटे का एक बड़ा भाग अपनी मुद्रा में जमा करना पड़ता है। इससे कोष के पास सभी सदस्य देशों की मद्राओं का अच्छा सरक्षित कोष बन गया है।
2. **विदेशी व्यापार का विस्तार -** अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष के कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का पर्याप्त विस्तार हुआ है।
3. **विदेशी विनिमय दरों में स्थिरता -** मुद्रा कोष की स्थापना के बाद विदेशी विनिमय दरों में पर्याप्त स्थिरता रही हैं। विदेशी विनिमय दरों में स्थिरता रहने से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को काफी बढ़ावा मिला है।
4. **भुगतान शेष असंतुलन में सुधार** - मुद्रा कोष ने भुगतान संतुलन में उत्पन्न अल्पकालिन असंतुलन को दूर करने के लिए सदस्य देशों को वित्तिय सहायता प्रदान की है।
5. **मुद्रा अवमूल्यन पर रोक** - किन्तु अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना से इसमें उल्लेखनीय रोक लगी है। इसका मुख्य कारण यह है कि आज कोई भी सरस्य देश मुद्रा-कोष से सहमति के लिए बिना अपनी मुद्रा का अवमूल्यन नहीं कर सकता।
6. **घरेलू आर्थिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं -** मुद्रा कोष सदस्य देशों के घरेलू मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं करता है।
7. **तकनीकी सहायता एवं वित्तीय परामर्श -** अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना से सदस्य देशों की अपनी अर्थव्यवस्था में सुधार करने के लिए तकनीकी सहायता एवं विशेषज्ञों के महत्वपूर्ण वित्तीय परामर्श प्राप्त हुए हैं।
8. **स्वर्णमान के लाभ -** यद्यपि विश्व में स्वर्णमान ता समाप्त हो चुका है, किन्तु मुद्रा-कोष की स्थापना से स्वर्णमान को अपनाए बिना भी इसके लाभ प्राप्त हो रहे है।
9. **बहुमुखी भुगतान प्रणाली को प्रोत्साहन** - मुद्रा कोष की स्थापना विश्व के देशों के बीच बहुमुखी व्यापार एवं भुगतान प्रणाली को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला है।

असफलताएं (Drawbacks)-

उपरोक्त उपलब्धियों के बावजूद यह नहीं कहा जा सकता कि कुल मिलाकर यह अपना उद्देश्य पूरा करने में सफल हुआ है। आलोचकों ने मुद्रा कोष के कार्यों की निम्न प्रकार आलोचना की है :

1. **सीमित क्षेत्र** - मुद्रा कोष मुख्य रूप से सदस्य देशों के चालू लेन-देनों में उत्पन्न होने वाली विदेशी विनियम की समस्याओं को दूर करने के लिए अल्पकालीन सहायता देता है। यह युद्ध संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ऋण नहीं देता और न ही पूंजी के आयात-निर्यात के लिए कोई सहायता देता है। अतः कोष का क्षेत्र सीमित है।
2. **कोटे का निर्धारण वैज्ञानिक नहीं** - सदस्य देशों के कोटे का निर्धारण किसी वैज्ञानिक आधार पर नहीं किया गया है।
3. **विभेदात्मक नीतियां** - अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का व्यवहार पिछड़े एवं विकासशील देशों के प्रति उदार एवं सहयोगपूर्ण नहीं हैं।

4. **विनिमय नियंत्रण को समाप्त करने में असफल** - अतः विनिमय नियंत्रण को समाप्त करने में मुद्रा कोष असफल रहा है।
5. विनिमय स्थिरता सफल नहीं रही है।
6. बहुमुखी विनिमय दर समाप्त करने में विफल रहा है।
7. विकासशील देशों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल पा रहा है।
8. विकासशील देशों के लिए साधनों की पर्याप्त व्यवस्था नहीं हो पायी है।
9. **ऊंची ब्याज दर** – इन शर्तों के अलावा कोष ऋण पर ऊंची ब्याज दर भी लेता है जिससे ऋणी देशों पर दबाव पड़ता है।

पूर्व एशिया के पांच देशों फिलीपन, दक्षीण कोरिया, थाईलैंड, इंडोनेशिया और मलेशिया में आकस्मिक और अप्रत्याशित आर्थिक संकट ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की कार्य-प्रणाली पर प्रश्न चिह्न लगा दिया हैं। इन आलोचानाओं के बावजूद अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अपने को बदलती अंतराष्ट्रीय आर्थिक स्थितियों के अनुरूप ढालने में पर्याप्त रूप से लचीला रहा है।

8.9 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में सुधार के सुझाव

नीतियों को दोषी ठहराते हुए यह विचार प्रकट किया कि वर्तमान संकट का हल अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का सुधार नहीं निम्न सुझाव दिये है:

1. पूर्व एशिया, रूस, लेटिन अमेरिका और अन्य विकासशील देशों को, जो आर्थिक संकट से ग्रस्त हैं अथवा जिन्हें छूत प्रभाव का भय है, आसान शर्तों पर वित्तीय सहायता देने के लिए कोष द्वारा प्रावधान करना चाहिए।
2. कोष को एक ऐसा प्रोग्राम बनाना चाहिए जा आर्थिक संकट में देशों के लिए सुरक्षा जाल का काम करें।
3. एक ऐसी मुक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रणाली कायम की जाए जो विकासशील देशों के प्रति उचित और न्यायसंगत हो।
4. विश्व के विकसित देशों की समष्टि आर्थिक नीतियां इस तरह चलाई जाएं कि वे विश्व उत्पाद और व्यापार वृद्धि को सुरक्षा प्रदान करें, इस तरह विश्व–अर्थव्यवस्था के लिए बहुत प्रभावी सुरक्षा जाल का कार्य कर सकें।
5. कोष को यह प्रयत्न करना चाहिए कि सरकारी विकास सहायता की विश्व के देशों द्वारा वचनवद्धता में वृद्धि हो।
6. विकासशील देशों के बैंकिंग सिस्टम और निगम क्षेत्रों की पुनर्संरचना करने के लिए कोष को परामर्श देना और सहायता करनी चाहिए।
7. देशों को संरक्षणवाद से दूर रहने और खुली मार्किट प्रक्रिया को चालू रखने के लिए कोष की नीति उपाय सुझाने चाहिए।
8. सभी देशों और अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं को इस बात के लिए कोष को बलपूर्वक अनुरोध करना चाहिए कि वे भ्रष्टाचार को समाप्त करें तथा अच्छे शासन को प्रोत्साहित करें।

9. कोष को चाहिए कि विकासशील देशों को ऐसे नीति उपाय सुझाव और ऐसी वित्तीय सहायता दे जिससे वे आंतरिक संसाधनों को बढ़ाकर अपनी विकास कार्यक्रमों का स्वयं वित्त-प्रबन्ध करें।

8.10 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना किस परिपेक्ष में की गई?
2. इस संगठन का प्रमुख उद्देश्य क्या है?
3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इस संगठन की भूमिका क्या है?
4. अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान संतुलन को निपटाने में संगठन की क्या भूमिका है?

बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) मोस्ट फेवर्ड नेशन्स समझौते का उद्देश्य है-

1. राष्ट्र के बीच सभी प्रकार के शुल्क को समाप्त करना
2. राष्ट्र के बीच सभी प्रकार के शुल्क दरों को बढाना
3. प्रशुल्क की एक गैर विभेदकारी दरे कायम रखना
4. प्रशुल्क की एक विभेदकारी दरे कायम रखना

(ख) आईएमएफ की मुख्य भूमिका क्या है?

1. स्थिर विनिमय दर व्यवस्था सुनिश्चित करना और भुगतान संतुलन में संकट का सामना कर रहे देशों को आपातकालीन सहायता प्रदान करना।
2. व्यापार और उदारीकरण के लिए एक मंच बनना।
3. विकास में देशों की सहायता करना।
4. दुनिया भर में निजी निवेश की सुविधा के लिए।

8.11 साराशं

उक्त इकाई के अध्ययन से आप यह जान सके कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एक अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संगठन है, ब्रेटनबुड सम्मेलन के निर्णयानुसार 27 दिसम्बर,1945 को इसकी स्थापना वाशिंगटन में हुई थी, किन्तु इसने वास्तविक रूप में 1 मार्च, 1947 से कार्य प्रारम्भ किया था।188 राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सदस्य हैं।अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का नियन्त्रण एवं प्रबन्ध एक बोर्ड ऑफ गवर्नर्स में निहित है प्रत्येक सदस्य देश एक गवर्नर को मनोनीत करता है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के संसाधनों में सर्वाधिक महत्व सदस्य देशों को आवंटित अभ्यशों (कोटा) का है 1971 तक मुद्रा कोष के समस्त अभ्यशों तथा इससे निकाली जाने वाली सहायता राशियों को डॉलर के रूप में व्यक्त किया जाता था किन्तु दिसम्बर 1971 से अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के समस्त लेन-देन विशेष आहरण अधिकार के रूप में व्यक्त किए जाने लगे है।

भारत का मुद्रा कोष से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और उसकी नीतिःनिर्माण एंव कार्य संचालन में भारत निरन्तर योगदान देता रहा है समय-समय पर आर्थिक सहायता और परामर्श द्वारा भारत मुद्रा कोष से लाभान्वित

हुआ है भारत कोष के संस्थापक सदस्यों में से एक है वित्त मंत्री अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के गवर्नर मण्डल का पदेन गवर्नर होता है और भारतीय रिजर्व बैंक, भारत का प्रतिनिधित्व एक कार्यकारी निदेशक करता है जो अन्य तीन देशों – बांग्लादेश, श्रीलंका तथा भूटान का भी प्रतिनिधित्व करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने विश्व आर्थिक परिस्थितियों में समय-समय हो रहे परिवर्तनों के अनुसार अपनी पूंजी, कोटे (अभ्यंश), उधार देने की प्रकिया, विनिमय दरों और अन्य नीतियों में संशोधन किए हैं। पूर्व एशिया के पांच देशों फिलीपन, दक्षीण कोरिया, थाईलैंड, इंडोनेशिया और मलेशिया में आकस्मिक और अप्रत्याशित आर्थिक संकट ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की कार्य-प्रणाली पर प्रश्न चिह्न लगा दिया हैं। इन आलोचानाओं के बावजूद अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अपने को बदलती अंतराष्ट्रीय आर्थिक स्थितियों के अनुरूप ढालने में पर्याप्त रूप से लचीला रहा है।

8.12 शब्दावली

- **प्रशुल्क -** जब कोई वस्तु राष्ट्रीय सीमा मे प्रवेश करती है या राष्ट्रीय सीमा को छोडती है तो इन वस्तुओं पर लगाया गया कर या शुल्क को प्रशुल्क कहते हैं। प्रशुल्क आयात शुल्क या सीमा शुल्क का पर्यायवाची है।
- **विश्व व्यापार -** एक देश की भौगोलिक सीमाओं से बाहर दो या दो से अधिक देशों के मध्य होने वाला आयात-निर्यात विश्व व्यापार कहलाता है।

8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) 3. (ख) 1.

8.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- D. M. Mithani, International Economics,(Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006)
- H. G. Mannur; International Economics (Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001)
- Ingo Walter; International Economics: Theory and Policy, (Ronald Press, New York 1968).
- K.R. Gupta: International Economics; (Atma Ram Pub. Delhi, 1969)
- Paul Krugman, Maurice Obstfeld and Marc J. Melitz; International Economics: Theory and Policy (Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.).
- Robert M. Dunn, and John H. Mutti; International Economics, (Routledge, London, 2004).

- V.K. Bhalla; International Economy: Liberalisation Process (Anmol Pub. Delhi, 1993).
- एस०एन०लाल; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र (शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004) • एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरलारू अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र (लक्ष्मी नारायण __ अग्रवाल आगरा, 2003).
- डालचंद्र बागड़ी; अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, (अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2009).
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, (ऑक्सफोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007) एम०एल०झिंगन; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र (वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010)

8.15 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- H. G. Mannur, International Economics, Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001.
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.
- एस० एन०लाल , अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र , शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र,ऑक्सफोर्ड एंड
- आई०बी०एच० पब्लिकेशन,नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- डॉ. जी. सी. सिंघई एवं डॉ. जे. पी. मिश्रा, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन,आगरा, 2010.

8.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य तथा कार्यों की विस्तृत चर्चा कीजिए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।
3. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष विकासशील देशों को सुविधा देने में क्यों असफल रहा?

इकाई-9 विश्व व्यापार संगठन

(World Trade Organization)

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 विश्व व्यापार संगठन का उदभव

9.3.1 विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख उद्देश्य

9.3.2 विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख कार्य

9.3.3 विश्व व्यापार संगठन का प्रशासन

9.4.4 विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता एवं मुख्यालय

9.4.5 विश्व व्यापार संगठन के मूल सिद्धान्त

9.4 विश्व व्यापार संगठन का मंत्रिस्तरीय सम्मेलन

9.5 विश्व व्यापार संगठन तथा विवादास्पद मुद्दे

9.6 अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को निपटाने में विश्व व्यापार संगठन की भूमिका

9.7 अभ्यास प्रश्न

9.8 सारांश

9.9 शब्दावली

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व इकाई में आप अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की संरचना,कार्य, उद्देश्य और भारत एवं मुद्रा कोष की स्थिति का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना प्रमुख उद्देश्य, कार्यों, प्रशासन और मूल सिद्धान्त के साथ विश्व व्यापार संगठन के अब तक हुए मंत्रिस्तरीय सम्मेलन का वर्णन किया गया है। विश्व व्यापार के अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को निपटाने में विश्व व्यापार संगठन की भूमिका किस रूप में प्रभावी है इसकी व्याख्या की गयी है।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगें कि

- ✓ विश्व व्यापार संगठन की स्थापना किस परिपेक्ष्य में की गई?
- ✓ इस संगठन का प्रमुख उद्देश्य क्या है?
- ✓ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इस संगठन की भूमिका क्या है?
- ✓ अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को निपटाने में संगठन की क्या भूमिका है?

9.3 विश्व व्यापार संगठन का उदभव

1947 में **GATT** की स्थापना के बाद से बहराष्ट्रीय व्यापार प्रणाली के विकास फलस्वरूप 1जनवरी, 1995 को विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थापना हुई 15 अप्रैल, 1994 को 123 देशों के वाणिज्य मन्त्रियों ने मराकेश में उरूग्वे दौर के फाइनल एक्ट पर अपने हस्ताक्षर किए थे 1986-94 तक उरूग्वे दौर की बातचीत का लम्बा सिलसिला चला, जिसकी परिणति विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के रूप में हुई इस वार्ता में वस्तुओं के व्यापार से सम्बद्ध बहुपक्षीय नियमों एवं अनुशासन की पहूँच का काफी विस्तार हुआ और सेवा एवं बौद्धिक व्यापार (बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार) के क्षेत्र में बहुपक्षीय नियमों की शुरूआत हुई उरूग्वे दौर वार्ता के कारण कृषि उत्पादों के बारे में अलग से समझौता हुआ इसके अलावा GATT व्यवस्था में वस्त्र एवं कपडा उत्पादों के समन्वय के चरणबद्ध कार्यक्रम पर भी सहमति हुई GATT द्वारा निर्धारित नियमों तथा इससे सम्बद्ध समझौतें को WTO के सभी सदस्य देशों को **'एकमुश्त समझौते'** की जिम्मेदारियों एवं अधिकारों के बीच सन्तुलन पर विचार करने के बाद भारत सरकार ने WTO समझौते की पुष्टि की।

भारत GATT और WTO दोनों का संस्थापक सदस्य है WTO नियम-आधारित पारदर्शी एवं प्रत्यक्ष बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था है जो ताकतवर व्यापार भागीदार के दबाव से सदस्य देशों की रक्षा करती है WTO नियम अन्य WTO सदस्यों के बाजारों को भारत के निर्यात को राष्ट्रीय व्यवहार और सर्वाधिक समर्थित राष्ट्र का दर्जा (Most Favored Nation MFN) के रूप में भेदभावरहित व्यवस्था प्रदान करते है। राष्ट्रीय व्यवहार सुनिश्चित करता है कि एक बार हमारे उत्पाद अन्य WTO सदस्य के यहाँ आयात हो गए तो उस देश के उत्पादों की तुलना में उनसे भेदभाव नही किया जाएगा MFN व्यवहार सिद्धान्त सुनिश्चित करता है कि सदस्य देश अपनी

कर व्यवस्था में ही नहीं, बल्कि अन्य नियमों विनियमों, प्रोत्साहनों आदि के मामले में भी WTO सदस्यों के बीच भेदभाव नही करेंगे यदि कोई सदस्य देश महसूस करता है कि अन्य व्यापार भागीदार की व्यापारिक नीतियों के कारण उसको निश्चित लाभ नही मिल रहा है, तो वह WTO के विवाद निपटारा तंत्र (DSM) के तहत् मामला दायर कर सकता है।

सारणी 9.1

वार्ता दौर (Round)	**वर्ष (Year)**	**स्थान (Venue)**	**विषय एवं परिणाम (Issues and Outcomes)**
प्रथम	1947	जनेवा(स्विट्जरलैण्ड)	प्रथम गैट समझौते पर हस्ताक्षर
द्वितीय	1949	अनेसी (फ्रांस)	विशिष्ट उत्पादों पर प्रशुल्क में कटौती
तृतीय	1950-51	तेरके (इंगलैण्ड)	
चतुर्थ	1956	जिनेवा	
पंचम(डिल्लन राउण्ड)	1960-61	जेनेवा	यूरोपीय समुदाय का वार्ता में प्रथम बार आविर्भाव तथा प्रशुल्कों में औसतन 20 प्रतिशत कटौती
षष्ठम(केनेडी राउण्ड)	1964-67	जेनेवा	विनिर्मित वस्तुओ पर प्रतिबन्धों में 1/3 की कमी की प्राप्ति
सप्तम(टोकियो राउण्ड)	1973-79	जेनेवा	गैर–प्रशुल्क प्रतिबन्ध, राज सहायता प्राप्त निर्यात उष्ण कटिबन्धीय वस्तुओं से सम्बन्धित 11 समझौतों पर हस्ताक्षर
अष्टम	1986-93	पुंता डेल एस्ते(उरूग्वे में प्रारम्भ व जेनेवा में समाप्त)	कृषि, सेवा, बौद्धिक सम्पदाअधिकार(TRIPS) तथा विदेशी निवेश (TRIMS) के विनियमन से सम्बन्धित विषयों का समावेश

WTO नियमों में आयात प्रावधान भी हैं जिनसे सदस्य देशों को भुगतान सन्तुलन समस्या तथा आयात में तेजी से बढोतरी जैसी आयात स्थितियों से निपटने में मदद मिलती है घरेलू उत्पादकों को नुकसान पहुँचाने वाले गलत व्यापार आचरण से निपटने के लिए डम्पिंग-विरोधी समझौते और सब्सिडी एवं समलुल्य उपाय समझौते और सब्सिडी एवं समतुल्य उपाय समझौते के अंतर्गत डम्पिग-विरोधी या समतुल्य कर लगाने का प्रावधान है।

लेकिन WTO समझौते को लागू करने के दौरान भारत को इन समझौतों को लागू करने के दौरान भारत को इन समझौतों में असन्तुलन एवं कमियों का पता चला यह भी ज्ञात हुआ विकसित देशों ने अपनी जिम्मेदारियों को WTO समझौतों के अनुरूप सही अर्थो में पूरा नहीं किया है भारत ने सामान्य विचारधारा वाले अन्य सदस्य

देशों के साथ WTO में क्रियान्वयन सम्बन्धी चिन्ताओं को उठाया।

गैट की अस्थायी प्रकृति के विपरीत विश्व व्यापार संगठन एक स्थायी संगठन है तथा इसकी स्थापना सदस्य राष्ट्रों की संसदों द्वारा अनुमोदित एक अर्राष्ट्रों की संसदों द्वारा अनुमोदित एक अन्तर्राष्ट्रीय संधि के आधार पर हुई है आर्थिक जगत् में इसकी स्थिति अब अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक के तुल्य ही है, किन्तु मुद्रा कोष व विश्व बैंक की भॉति यह संयुक्त राष्ट्र संघ की एक एजेन्सी नहीं है।

9.3.1 विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख उद्देश्य

विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख उद्देश्य निम्न है

(क) वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन एवं व्यापार को बढ़ावा देना।

(ख) प्रभावपूर्ण मांग एवं रोजगार में व्यापक एवं प्रभावी वृद्धि करना।

(ग) विश्व के संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करना।

(घ) सतत् विकास की अवधारणा को स्वीकार करना ।

(ड) जीवन स्तर में वृद्धि करना।

(च) पर्यावरण का संरक्षण एवं सुरक्षा करना।

9.3.2 विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख कार्य

विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख कार्य निम्न हैं

1) व्यापार एवं प्रशुल्क से सम्बन्धित किसी भी मसले पर सदस्य देशों के बीच विचार-विमर्श हेतु एक मंच के रूप में कार्य करना।
2) विश्व व्यापार समझौता एवं बहुपक्षीय तथा बहुवचनीय समझौतों के क्रियान्वयन, प्रषासन एवं परिचालन हेतु सुविधाएं उपलब्ध कराना।
3) व्यापार नीति समीक्षा प्रक्रिया से सम्बन्धित नियमों एवं प्रावधानों को लागू करना।
4) विवादों के निपटारे से सम्बन्धित नियमों एवं प्रक्रियाओं को प्रषारित करना। विश्व आर्थिक नीति के निर्माण में अधिक सामंजस्य भाव स्थापित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक से सहयोग करना।
5) विश्व के संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करना।

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के साथ संगठन के रूप में GATT समाप्त हो गया। पर "गैट समझौता' जो वस्तुओं में व्यापार से सम्बन्धित था संबोधित रूप में विश्व व्यापार संगठन के साथ बना हुआ है, पर इसके साथ दो नये समझौते जोड़ दिये गये है :- (1) सेवाओं से सम्बन्धित सामान्य समझौता (General Agreement on Trade in Services) तथा (2) जेनेरल एग्रीमेन्ट आन ट्रेड रिलेटेड आसपेक्ट्स आफ इनटेलेक्टुअल प्रापर्टी राइट्स (TRIPs)। उल्लेखनीय है कि जहाँ गैट एक अस्थाई तथा प्रावधानिक संस्था थी वहीं विश्व व्यापार संगठन तथा उसके समझौते स्थाई है तथा इसका एक सुदृढ़ वैधानिक आधार है। विश्व

व्यापार संगठन अधिक शक्तिशाली तथा विस्तृत कार्य करने वाली संस्था है।

9.3.3 विश्व व्यापार संगठन का प्रशासन

संगठन के कार्य संचालन के लिए एक सामान्य परिषद है जिसमें प्रत्येक सदस्य देश का एक स्थाई प्रतिनिधि होता है। इसकी बैठक सामन्यतया माह में एक बार जेनेवा में होती है।

विश्व व्यापार संगठन में नीति निर्धारण हेतु सर्वोच्च अधिकार प्राप्त इसका **"मन्त्रि स्तरीय सम्मेलन"** है। इस सम्मेलन का आयोजन प्रायः प्रत्येक दो वर्ष बाद होता है। दिन प्रतिदिन के प्रशासकीय कार्यों के संचालन हेत संगठन का सर्वोच्च पदाधिकारी महानिदेशक (Director General) होता है जो सामान्य परिषद द्वारा चार वर्ष के लिए चुना जाता है। महानिदेशक की सहायता के लिए सदस्य देशों द्वारा चार महानिदेशक भी चुने जाते है।

सारणी 9.2 गैट एवं विश्व व्यापार संगठन के डायरेक्टर जनरल के नाम

क्रम	नाम	कार्यभार ग्रहण तिथि	सेवा निवृत्ति तिथि	देश
1	Sir Eric Wyndham White	1948		U.K.
2	Olivier Long	1968	1980	Switzerland
3	Arthur Dunkel	1980	1993	Switzerland
4	Peter Southerland	1-7-1993	1-5-1995	Ireland
5	Renato Ruggiero	1-05-1995	1-8-1999	Italy
6	Mike Moore	1-08-1999	1-08-2002	New Zealand
7	Supachai Panitchpakdi	1-08-2002	1-08-2005	Thailand
8	Pascal Lamy	1-08-2005	1-09-2013	France
9	Roberto Azevêdo	1-09-2013		Brasilia

अभी तक के गैट और विश्व व्यापार संगठन के डायरेक्टर जनरल के नाम निम्नलिखित सारणी में दी गयी है

सम्बद्ध समितियाँ –विश्व व्यापार के कार्य संचालन हेतु अनेक महत्वपूर्ण समितियाँ है सर्वाधिक महत्वपूर्ण दो समितिया है

1. विवाद निवारण समिति (Divisen of Settlement Body-DSB)

2. व्यापार नीति समीक्षा समिति (T. Policy Review Body -TPRB) निवारण समिति (DSB) का कार्य विदेशी राष्ट्रों के विरूद्ध विश्व व्यापार संगठन व्यापार नियमों के उल्लंघन की शिकायत पर विचार करना है सभी सदस्य देश समिति के सदस्य देश की समिति के सदस्य होते है।

व्यापार नीति समीक्षा समिति (TPRB) का कार्य सदस्य राष्ट्रों की व्यापार नीति की समीक्षा करना है सभी बडी व्यापारिक शक्तियों की व्यापार नीति की दो वर्ष में एक बार समीक्षा की जाती है संगठन के जो सदस्य राष्ट्र इस समिति के सदस्य होते है इसके अतिरिक्त विश्व व्यापार अन्य महत्वपर्ण समितियाँ -वस्त परिषद

(Council for Trade in sernmvices) सेवा व्यापार परिषद् (Council for Trade in Services) तथा बौद्धिक अधिकारों के व्यापार सम्बन्धी व्यापार परिषद् आदि है।

9.3.4 विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता एवं मुख्यालय

अगस्त 2012 तक WTO की सदस्य संख्या 157 हो गई थी वर्तमान में विश्व के लगभग 30 अन्य देश WTO के सदस्य बनने की प्रक्रिया में है प्रशांत महासागर स्थिर छोटा द्वीपीय राष्ट्र वनुआतु (Vanuatu) इस संगठन का 157वाँ सदस्य 24 अगस्त 2012 को बनाया गया है इसी प्रकार रूस को 22 अगस्त, 2012 करे हाकी 156वीं सदस्यता प्रदान की गई थी, डब्ल्यू.टी.ओ. का सदस्य बनने से न केवल इन देशों ने विदेशी व्यापार व सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में वृद्धि होगी, बल्कि विश्व के अन्य देश भी इससे लाभान्वित होंगे यूरोपीय संघ जिसका रूस तीसरा बड़ा व्यापारिक भागीदार है, के अनुसार रूस के जीडीपी में अगले तीन वर्षों में औसतन 3.3 प्रतिशत की वृद्धि इस सदस्यता के परिणामस्वरूप सम्भावित है

उल्लेखनीय है कि डब्ल्यू.टी.ओ. की सदस्यता के पश्चात रूस को अब अपने बाजार में विदेशी कम्पनियों व उत्पादों के प्रवेश के लिए नियमों व कानूनों को उदार बनाना होगा अपने प्रमुख आयातों के लिए आयात शुल्क में 5.9 प्रतिशत कटौती के लिए स्वीकृति रूस ने डब्ल्यू.टी.ओ. को दी है लगभग 18 वर्ष तक चली वार्ताओं के पश्चात् रूस को डब्ल्यू.टी.ओ. की सदस्यता अब प्राप्त हुई है तथा विश्व की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में से यही देश इसकी सदस्यता से अभी तक वंचित था।

9.4.5 विश्व व्यापार संगठन के मूल सिद्धान्त

विश्व व्यापार संगठन एक वैधानिक संगठन है जिसमें अनेक व्यवस्थाएं हैं जो नियमानुसार कार्य करती है और देशों पर बाहयकारी होती हैं। विश्व व्यापार संगठन के तहत विवादो का निपटारा आम सहमति से होता है न कि बहुमत के आधार पर। यदि किसी विषय पर आम सहमति न बन पाये तो वोट के आधार पर निर्णय लिया जाता है। प्रत्येक सदस्य देश को एक वोट प्राप्त होता है, पर विश्व व्यापार संगठन की व्यवस्थाओं की व्याख्या तथा किसी सदस्य देश के दायित्वों की कटौती के सम्बन्ध में निर्णय के लिए बहुमत का मतलब सदस्यों की तीन चौथाई संख्या से होगा। विश्व व्यापार संगठन के चार मूल सिद्धान्त हैं

1. आन्तरिक उद्योगों की सुरक्षा को ध्यान में रखकर मात्रात्मक प्रतिबन्धों जैसे कोटा पर रोक।
2. टैरिफ बाइन्डिंग या सदस्यों द्वारा यथा सम्भव तटकरों में कमी लाना।
3. सर्वाधिक समर्थित राष्ट्र का दर्जा (Most Favoured National MFN) जिसका अर्थ यह है कि विश्व व्यापार संगठन का एक सदस्य देश दूसरे सदस्य को व्यापार में जो सुविधा देता है वह सुविधा अन्य देशों को स्वतः मिल जाती है। पर MFN के दो प्रमुख अपवाद है:

   (क) यदि कुछ सदस्य देश आर.टी.ए., एफ.टी.ए. या अन्य किसी ऐसे समूह का गठन करते हैं और कुछ सुविधा का परस्पर आदान प्रदान करते है जो इस समूह के बाहर के विश्व व्यापार संगठन के सदस्य देशों को उपलब्ध नहीं होते तो इसे MFN विरोधी नही माना जाएगा।

(ख) जेनेरलाइजड सिस्टेम आफ प्रेफरेन्सेज (GSP) जिसके तहत विकसित देश विकासशील या अल्पविकसित देशों को ही कुछ सुविधा दे सकते हैं, इसका सम्बन्ध अन्य देशों से नहीं होगा।

4. राष्ट्रीय समानता का सिद्धान्त जो यह स्थापित करता है कि किसी देश में सदस्य देश से आयातित वस्तु के साथ वह देश वही व्यवहार करेगा जो वह अपने देशों में अपनी वस्तुओं के साथ करेगा।

इन नियमों के अतिरिक्त दो तथ्यों या नियमों का उल्लेख जरूरी होगा। पहला विश्व व्यापार संगठन प्रतिबन्धात्मक सब्सिडी या एसी सब्सिडी जो अप्रत्यक्ष रूप से आयात को हतोत्साहित करती हो, को समाप्त करने की व्यवस्था देता है, यह व्यवस्था उन देशों में नहीं लागू होता है जिसकी प्रतिव्यक्ति आय 1000 अमेरिकी डालर से कम है। दूसरा, अनुमोदित सब्सीडी, यदि इस प्रकार की सब्सीडी दूसरे देश के व्यापार को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने के लिए की गई है, या बाजार प्राप्त करने के लिए की गई है जिसे हम डम्पिंग कहते हैं तो यह प्रतिबन्धित है, और दूसरा देश इस प्रकार की ड्यूटी के प्रभाव को निरस्त करने के लिए प्रतिसंतुलनकारी डयूटी लगा सकती है।

9.4 विश्व व्यापार संगठन का मंत्रिस्तरीय सम्मेलन

1995 में स्थापन के बाद से मंत्रिस्तर के नौ सम्मेलन हो चुके हैं -सिंगापुर (9-13 दिसम्बर, 1996), जेनेवा (18-20 मई, 1998); सिएटल (30 नवम्बर -3 दिसम्बर, 1999); दोहा (9-14 सितम्बर, 2001); कैनकुन (10-14 सितम्बर, 2003), हांगकांग (13-18 दिसम्बर, 2005), जेनेवा (30 नवम्बर-2 दिसम्बर 2009) तथा जेनेवा (15-17 दिसम्बर, 2011) में प्रथम सिंगापुर मंत्रिस्तरीय सम्मेलन में WTO के इच्छुक सदस्यों ने सूचना प्रौद्यौगिकी और उन चार मुद्दों पर वार्ता की जिन्हें सिंगापुर मुद्दे कहा गया ये हैं- व्यापार और निवेश में सम्बन्ध व्यापार और प्रतियोगिता नीति में सम्पर्क, सरकारी खरीद में पारदर्शिता और व्यापार का सरलीकरण द्वितीय जेनेवा सम्मेलन का आयोजन उस समय किया गया जब गैर-बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था की 50वीं जयंती मनाई जा रही थी तृतीय सिएटल मंत्री -सम्मेलन मंत्रियों द्वारा अंगीकार किए जाने वाली घोषणा पर सहमति के बगैर ही विफल हो गया।

विश्व व्यापार संगठन का चौथा दोहा मंत्रिस्तरीय सम्मेलन

दोहा मंत्रिस्तरीय सम्मेलन ने एक व्यापक कार्ययोजना स्वीकार की जिसे दोहा विकास एजेंडा कहा गया इसके जरिए कुछ मुद्दों पर वार्ताएं शुरू की गई और कृषि तथा सेवाओं पर कुछ अतिरिक्त मापदण्ड और समय-सीमाए तय की गई WTO फैसलों के अनुरूप ये 1 जनवरी 2000 से लागू हो गए दोहा के इस सम्मेलन ने ट्रिप्स समझौता सार्वजनिक स्वास्थ्य और कार्यान्वयन सम्बन्धी मुद्दों और चिन्ताओं पर एक घोषणा भी जारी की विश्व व्यापार संगठन का पांचवॉ कैनकुल मंत्रिस्तरीय सम्मेलन थ्वकास को WTO के चौथे दोहा मंत्रिस्तरीय बैठक हुई यह स्पष्ट हुआ कि वास्तव में ऐसा नहीं था विकासशील देशों के लिए महत्वपूर्ण सभी विषयों, जैसे ट्रिप्स सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्यान्वयन मुद्दे और विशेष एवं विशिष्ट व्याहार की दोहा में निर्धारित अंतिम समय सीमा बीत गई।

दोहा घोषणा-पत्र के अनुच्छेद 6 में WTO के सदस्य देशों की फार्मास्यूटिकल सैक्टर में अपर्याप्त या नहीं

के बराबर उत्पादन क्षमता और विपणन में ट्रिप्स के तहत् अनिवार्य लाइसेंस प्रणाली के प्रभावी प्रयोग से जुडी समस्याओं को स्वीकार किया गया है, इस संदर्भ में WTO की महापरिषद् ने अपने 30 अगस्त 2003 के फैसले में ऐसे देशों के लिए अनिवार्य लाइसेंस व्यवस्था के तहत् फार्मास्यूटिक पदार्थो के उत्पादन और निर्यात की अनुमति दे दी है कैनकुन से पहले अमरीका और यूरोपीय संघ ने कृषि पर वार्ता के तौर-तरीकों के बारे में एक संयुक्त आवेदन दिया जो उनके निजी स्वार्थ पर आधारित था और जिसमें विकासशील देशों की चिन्ताओं पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था।

इसमें व्यापार बिगाडने वाली निर्यात सब्सिडी और घरेलु सहायता की समाप्ति पर सहमत होने की अनिच्छा दिखई गई थी और कहा गया था कि विकासशील देश शुल्क में काफी कटौती करें, ताकि विकसित देशों को बाजार सुलभ हो सके इसके कारण विकासशील देशों का एक नया गठबंधन पैदा हुआ जिसे जी-20 कहा जाता है इसने कैनकुन में कृषि पर बातचीत को दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

विश्व व्यापार संगठन के मंत्रिस्तरीय सम्मेलन		
सम्मेलन	**वर्ष**	**स्थान**
पहला	9-13 दिसम्बर, 1996	सिंगापुर
दूसरा	18-20 मई, 1998	जेनेवा
तीसरा	30 नवम्बर-3 दिसम्बर, 1999	सिएटल
चौथा	9-14 नवम्बर, 2001	दोहा (कतर)
पांचवाँ	10-14 सितम्बर, 2005	कैनकुन (मेक्सिक)
छठवॉ	13-18 दिसम्बर, 2005	हांगकांग (चीन)
सातवॉ	30 नवम्बर-2 दिसम्बर, 2009	जेनेवा
आठवॉ	15-17 दिसम्बर, 2011	जेनेवा
नौवॉ	दिसम्बर, 2013	बाली

कैनकुन मंत्रिस्तरीय सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य एक ऐसा मंच बनाना था जहाँ दोहा के सभादेश वाले वर्क प्रोग्राम के अन्तर्गत वार्ता की प्रगति की समीक्षा की जानी थी, आवश्यक दिशा-निर्देश दिए जाने थे और सिंगापुर मदों की स्थिति पर भी चर्चा की जी थी इस सम्मेलन ने विकसित देशों को यह साबित करने के पर्याप्त अवसर दिए कि वे दोहा कार्ययोजना के विकास पक्ष पर गम्भीरता से काम कर रहे है, लेकिन दो अति विवादास्पद मुद्दों पर विश्व व्यापार संगठन सदस्यों के महत्वाकांक्षा स्तर को लेकर गम्भीर मतभेदों के चलते कैनकुन मंत्रिस्तरीय सम्मेलन बहुत जटिल हो गया सम्मेलन के अध्यक्ष ने 13 सितम्बर, 2003 को मसौदे का जो संशोधित मूल पाठ वितरित किया यह असंतुलित था और विकासशील देशों के हितों के एकदम खिलाफ था इसी कारण विकासशील देशों ने इसका जमकर विरोध किया और परिणामस्वरूप मंत्रिस्तरीय सम्मेल का घोषण पत्र पारित नहीं हो सका।

विश्व व्यापार संगठन का छठवॉ हांगकांग मंत्रिस्तरीय सम्मेलन

विश्व व्यापार संगठन के 13-18 दिसम्बर, 2005 को हांगकांग (चीन) में सम्पन्न छठे मंत्रिस्तरीय सम्मेलन में विकासशील देशों ने ग्रांड एलायंस (जी-110) बनाकर एकजुटता प्रदर्शित की जिससे विकसित देशों को कृषि सब्सिडी समाप्त करने को सहमत होना पड़ा साथ ही औद्योगिक उत्पादों पर प्रशुल्क से जुड़े मुद्दों पर भी विकासशील देशों को कुछ राहत प्रदान करने को विकसित देश सहमत हुए इससे वर्ष 2006 के अंत तक नए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया 6 दिन चले WTO सम्मेलन में कृषि सब्सिडी औद्योगिक उत्पादों पर प्रशुल्क व सेवाओं के व्यापार आदि संवेदनशील मुद्दों पर विकसित एवं विकासशील देशों के बीच कशमकश की स्थिति बनी रही तथा अंतिम दिन (18 दिसम्बर, 2005 को) ही इन मुद्दों पर सहमति बन सकी जिसके पश्चात हांगकांग घोषणा-पत्र जारी किया गया सम्मेलन में स्वीकार किए गए इस घोषणा-पत्र में विकसित देश अपनी कृषि निर्यात सब्सिडी को चरणबद्ध तरीके से 2013 तक पूर्णतः समाप्त करने को सहमत हुए कृषि बाजार समझौते में विकासशील देशों के लिए पर्याप्त ढील की व्यवस्था की गई इसमें यह सुनिश्चित किया गया है कि भारत जैसे विकासशील देशों को कृषि क्षेत्र की योजनाओं देशों को कृषि क्षेत्र की योजनाओं को WTO के नियमों की परिधि से बाहर रखा गया, कषि उत्पादों के आयात में उछाल से इन उत्पादों के मूल्यों में विशेष गिरावट की स्थिति में जिन विशेष रक्षात्मक उपायों की मॉग भारत व अन्य विकासशील देशों ने की थी, उन्हें भी घोषणा पत्र में शामिल किया गया!

विकासशील देशों के औद्योगिक आयातों पर प्रशुल्क कटौती (**Non-Agricultural Market Access-NAMA**) के सम्बन्ध में छूटा है।पर भारतीय वाणिज्य मंत्र स्पष्ट शब्दों में कहा कि दृक्र के विकास उद्देश्यों को जाना अथवा उनकी उपेक्षा विकासशील देशों के लिए चिन्ता DFQF, SSM, कपास, Quetiosion, मत्स्यकी सब्सिडीज TRIPS-CBD सम्बन्ध सहानुभूतिपूर्वक विचार किए जा सकता

9.5 विश्व व्यापार संगठन तथा विवादास्पद मुद्दे

विवादास्पद मुद्दों की चर्चा के पूर्व उन मुख्य क्षेत्रों का उल्लेख जरूरी है जिन पर व्यापक समझौते हो चुके हैं। ये क्षेत्र निम्नांकित है :

(1) व्यापार सम्बन्धी विनियोग उपायों पर समझौता (Trade Related Investment Measures - TRIMs)

(2) सेवा व्यापार पर आम समझौता (General Agreement on Trade in Science -GATS)

(3) व्यापार सम्बन्धी बौद्धिक सम्पदा अधिकार (TRIPS)

(4) वस्त्र व्यापार समझौता तथा 1 जनवरी 2005 से मल्टीफाइवर एग्रीमेन्ट की समाप्ति तथा वस्त्र व्यापार की पूर्ण स्वतंत्रता।

विश्व व्यापार संगठन का प्रमुख कार्य पूरे विश्व में एक बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली विकसित करना है। जिससे सदस्यों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में किसी प्रकार का अवरोध या विभेद न हो, उनके बीच समुचित प्रतिस्पर्धा का वातावरण कायम रहे। उसका उद्देश्य एक व्यापक तथा नियम आधारित व्यवस्था विकसित करनी है जिससे

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सभी देश बिना किसी विभेद के लाभान्वित हो सकें। पर विभिन्न देशों के बीच परस्पर टकराव स्वाभाविक है क्योंकि सभी देश विश्व मंच पर तो स्वतंत्र व्यापार की हिमायत करते हैं पर जब अपनी बात आती है तो अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए हर प्रकार के व्यापार प्रतिबन्ध को उचित ठहराते हैं। इस मतभेद का लाभ ज्यादातर विकसित देशों को मिलता है क्योंकि विकसित देशों की समझौता की शक्ति अपेक्षाकृत अधिक है।

विश्व व्यापार संगठन का प्रथम सम्मेलन सिंगापुर में सन् 1996 में हुआ। इस सम्मेलन में प्रतिस्पर्धा, विनियोग, सरकारी क्रय मे पारदर्शिता तथा व्यापार में सहूलितय देने के प्रयास जैसे मुददों पर आम सहमति नहीं बन पायी। विकासशील देश इन मुद्दों को व्यापार के साथ जोड़ने के लिए तैयार नहीं थे, क्योंकि वे यह मानते थे कि इन मुद्दों को व्यापार से जोड़ने पर उनका अहित होगा तथा लाभ विकसित देशों को मिलेगा। इसके अतिरिक्त तीन और मुद्दे ऐसे हैं जिन पर विकसित तथा विकासशील देशों के बीच कोई आम सहमति नहीं बन पायी है। दोनों पक्ष अपने अपने तर्क पर अड़े हुए हैं। ये है:

(क) कृषि सम्बन्धी मुद्दे- इससे सम्बन्धित मद्दे मुख्यतया कृषि वस्तुओं पर सब्सिडी तथा उसका देशों की निर्यात प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति पर पड़ने वाले प्रभाव से सम्बन्धित हैं। विकासशील देशों का यह मानना है, जो सही है, कि विकसित देश अपने कृषि क्षेत्र को बहुत अधिक मात्रा में सब्सिडी तथा अन्य सुविधायें देते हैं, जिससे उनकी कृषि वस्तुओं की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में बढ़ जाती है। ऐसा नहीं है कि विकासशील देश सब्सिडी नहीं देते पर उनकी सब्सिडी देने की क्षमता तथा सब्सिडी की मात्रा इतनी कम है कि वे विकसित देशों से प्रतिस्पर्धा कर ही नहीं सकते। विकसित देश विकासशील देशों से आने वाली वस्तुओं पर आयाता शुल्क लगाकर घरेलू उत्पादन को लाभ पहुँचा सकते है। सब्सिडी को व्यापार पर पड़ने वाले प्रभाव की दृष्टि से पाँच भागों में बाँटते हैं

(1) ग्रीन बाक्स सब्सिडी- वे सब्सिडी हैं जिनका उत्पादन तथा व्यापार पर सबसे कम प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अन्तर्गत शोध के सम्बन्ध में सब्सिडी या सरकारी कार्यक्रम, पर्यावरण संरक्षण, कृषकों को दी जाने वाली नकद सहायता, पुशधन संरक्षण आदि आते हैं। इन्हें हम तटस्थ सब्सिडी भी कहते हैं। इसलिए इन्हें सब्सिडी कम करने के अन्तर्गत नहीं रखते।।

(2) ब्ल्यू बाक्स सब्सिडी- ये वे सब्सिडी हैं जो व्यापार को विकृत करती है। इसके अन्तर्गत सब्सिडी नकद रूप के कृषक क्षतिपूरक सहायता के रूप में दी जाती है जो बाजार मूल्य तथा न्यूनतम समर्थित कीमत के अन्तर के बराबर होती है।

(3) अम्बर सब्सिडी- ये व्यापार को सबसे प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। कोई भी सदस्य अपनी सब्सिडी नीति से अन्य सदस्यों के हितों को प्रतिकूलरूप से प्रभावित नहीं कर सकता। ये ऐसी सब्सिडी है जो बिल्कुल मना तो नहीं है, पर इनके विरूद्ध कार्यवाही की जा सकती है।

(4) डी मिनीमिस सब्सिडी- विकसित देश कृषि उत्पादन के मूल्य के 5 प्रतिशत तक तथा विकासशील देश 10 प्रतिशत तक सहायता दे सकते हैं इन्हें भी सब्सिडी घटाने में आकलित नहीं करते।

(5) रेड सब्सिडी- ऐसी सब्सिडी जो बिल्कुल प्रतिबन्धित हो। जैसे सब्सिडी उस दशा के अन्तर्गत प्रदान

करना जिससे कोई व्यक्ति आयातित वस्तु की तुलना में घरेलू वस्तु का उपभोग करें।

उल्लेखनीय है कि यू.एस.ए. यूरोपीय यूनियन तथा जापान जहाँ एक ओर विकासशील देशों से आने वाली कृषि वस्तुओं के आयात पर बहुत ऊँचा आयात शुल्क लगाते हैं वहीं सेनेटरी तथा फाइटो सेनेटरी जैसे स्वास्थ्य सम्बन्धी मापदण्ड आधारों पर इन देशों के आयात के सम्बन्ध में गैर प्रशुल्क बाधायें भी खड़ा करते हैं। ऐसी स्थिति में विकासशील देश जैसे भारत यह मांग करते हैं कि विकसित देश अपनी कृषि वस्तुओं पर सब्सिडी कम करें तथा उनकी वस्तु पर आयाम शुल्क नहीं लगायें जिससे उनके बाजार में वृद्धि हो क्योंकि विकासशील देशों के उत्पादन लागत कम होती है पर विकसित देश ऐसा करने के लिए तैयार नहीं हैं और सब्सिडी घटाने के सम्बन्ध में वे सौदा करते हैं कि विकासशील देश बदले में औद्योगिक या निर्मित वस्तुओं पर से टैरिफ की दर घटायें जिसके लिए विकासशील देश तैयार नहीं हैं। इस दिशा में दो व्यवस्थायें उल्लेखनीय हैं- एक तो यह व्यवस्था की गयी है कि विकासशील देश कुछ विशेष वस्तुयें चुनें जो खाद्य सुरक्षा ग्रामीण तथा कृषि विकास के लिए आवश्यक है जिससे उन वस्तुओं के सम्बन्ध में उन देशों को अधिक संरक्षण प्राप्त हो सके जैसे भारत के सम्बन्ध मे चमड़ा जूता, वस्त्र, मछली, उत्पाद आदि। दसरे हांगकांग सम्मेलन में यह व्यवस्था की गयी कि वे शल्क मक्त तथा कोटा मुक्त निर्यात कर सकते हैं पर अब भी कृषि वस्तुओं पर सब्सिडी की समस्या विवाद का मुद्दा बनी हुयी है।

(ख) गैरकृषिगत बाजार पहुंच (Non agriculture goods accessible to market NAMA)- दूसरा विवादास्पद मुद्दा यह है कि टैरिफ की ऊपरी सीमा रखी जाये. टैरिफ की दर को कैसे घटाया जाए और कौन देश कितनी कटौती करे। इसके समाधान के सम्बन्ध में दो सूत्र सामने आये। एक फार्मूला का सुझाव G-20 के देशों ने दिया जिसमें अलग अलग प्रशुल्क दरों के रेन्ज में अलग अलग कटौतियाँ करने का सुझाव रखा गया, जिसकी टैरिफ दर जितनी ही ऊँची होगी उसकी दर भी उतनी ही ऊँची होगी। प्रशुल्क कटौती के सम्बन्ध मे अधिक ग्राहय फार्मूला स्विस फार्मूला के रूप में आया जो इस प्रकार हैं

$$t_1 = \frac{a \times t_0}{a + t_0} \times t$$

t_1= मूल्यानुसार रूप में अंतिम प्राप्य दर

a = देशों या समूहों द्वारा आपस में निर्धारित शुल्क सेवा

t_0= आधार या प्रारम्भिक प्रशुल्क दर।

ज्ञातव्य है कि विकाशसील देश ऊंचा गुणांक पसन्द करेंगे क्योंकि इस स्थिति में उनकी अन्तिम प्रशुल्क दर ऊंची हो सकेगी। पर विकसित देश छोटा गुणांक नहीं रखना चाहेंगे क्योंकि इस स्थिति में अंतिम प्रशुल्क दर काफी नीची आयेगी। इस खिंचातानी के परिणामस्वरूप यह अवरोध कायम है।

(ग) सेवा क्षेत्र जन्य विवाद- विश्व व्यापार संगठन के सेवाओं के क्षेत्रगत वर्गीकरण के अन्तर्गत शैक्षणिक सेवाओं का जिक्र मिलता है जिसके 5 उप क्षेत्र है। वस्तुओं तथा सेवाओं की विशेषताओं की भिन्नतायें उन मोड

या रास्तों को प्रभावित करती हैं। जिनमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में वस्तुओं का भौतिक गमन आवश्यक है, सभी सेवाओं के सम्बन्ध में ऐसा आवश्यक नहीं है। सेवा व्यवहारों के सम्बन्ध में चार प्रकार के मोड हो सकते हैं। मोड को आवश्यक रूप से कर्ता तथा उपभोक्ता के मूल तथा उस समय जबकि सेवा की डिलीवरी हुयी टेरीटोरियल प्रेजेन्स की मात्रा तथा प्रकार के रूप में परिभाषित किया जाता है।

मोड-1 इसके तहत सेवा-उत्पाद का भौतिक गमन सीमा के आर-पार होता है (जैसे सूचनायुक्त फ्लापी का आदान-प्रदान बिजनेस प्रासेस आउटसोर्सिंग आदि। इसके दो रूप हो सकते है। प्रथम विश्वविद्यालय या मुक्त विश्वविद्यालयों द्वारा प्रिन्ट, टेलीकम्युनिकेशन के द्वारा या सभी द्वारा डिस्टैन्स शिक्षा उपलब्ध कराना। दूसरा विश्वविद्यालयों तथा मुक्त विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त शोध संसाधनों द्वारा सेवा का निर्यात। भारत के लिए मोड 1 अधिक लाभकारी है क्योंकि इनके माध्यम से भारत में ही रोजगार के अवसर बढ जाते हैं।

मोड-2 सेवा निर्यातक देश में उपभोक्ताओं का गमन जैसे किसी सेवा निर्यातक देश में डॉक्टर की सेवाओं को प्राप्त करने के लिए स्वयं मरीज या सेवा उपभोक्ता का निर्यातक देश को जाना, ऐसी सेवाओं में हम पर्यटन को भी रख सकते है।

मोड-3 जिसे देश में सेवा उपलब्ध करानी हो उस देश में एक वाणिज्यिक इकाई या संस्था स्थापित करना जैसे बैंकिंग सेवा या बीमा सेवा प्रदान करने के लिए सेवा आयातक देश में बैंक को स्थापित करना इस मोड में पूँजी की गतिशीलता भी सम्मिलित होती है, भारत को योग, आयुर्वेद, भारतीय दर्शन, संस्कृति आदि में प्रतिस्पर्धात्मक लाभ की स्थिति प्रदान है। ये मोड 3 के अन्तर्गत आते हैं इनको विकसित करके भारत अपना सेवा निर्यात बढ़ा सकता है।

मोड-4 किसी देश से नेचुरल परसन जैसे किसी योग विशेषज्ञ द्वारा विदेशों में लेक्चर देने जाना, का स्थायी गमन मोड 4 के अन्तर्गत आता है। मोड 4 में हम श्रम को गतिशीलन को रख सकते है। इन सभी मुद्दों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिये जिससे विकसित तथा विकासशील देशों के बीच टकराव को न्यूनतम करके एक समाधान पाया जा सके वार्ताओं की जो श्रृंखला शुरू हुई उसमें अवरोध ज्यादा आये। भारत ने अपने तथा कृषि प्रधान विकासशील देशों के अल्प आय तथा अल्प साधनों वाले गरीब कषकों के हितों को सबसे ऊपर रखा। इस सम्बन्ध में भारत ने स्पष्ट किया कि किसी अन्य जगह होने वाले लाभ को इसके साथ जोड़ा नहीं जा सकता है। भारत ने अन्य विकासशील देशों के हित को ध्यान में रखते हुए जो कदम उठाए उनकी प्रमुख बातें इस प्रकार है:

कृषि से जुडे मुद्दे

(1) विकासशील देशों के लिए कृषि वस्तुओं के सम्बन्ध में डिस्काउंट दर पर टैरिफ में कटौती 36 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिये।

(2) खाद्य सुरक्षा जीवन निर्वाह सुरक्षा तथा ग्रामीण विकास की आवश्यकता को अपने से निर्धारित किये जाने वाले विशिष्ट उत्पादों के सम्बन्धों में निर्देषक तत्व के रूप में लिया जाना चाहिये। जी-33 ने इन उत्पादों पर 20 प्रतिशत की टैरिफ कटौती नहीं होनी चाहिये। भारत ने इसे स्वीकार नहीं किया क्योंकि इसके अन्तर्गत बहुत सी संवेदनशील वस्तुओं पर चालू टैरिफ दर कम करना होगा।

(3) यू.एस.ए. के सम्बन्ध में 70-75 प्रतिशत तथा यूरोपियन यूनियन द्वारा 75-80 प्रतिशत घरेलू सब्सिडी तथा सहायता में सहायता में कटौती तथा न्यू ब्लू बाक्स तथा ए.एम.एस. पर ऊपरी सीमा पर निर्धारित गैर कृषि बाजार पहुंचा।

(4) स्विस गुणांक में ऐसा गुणांक चुनना जो पूर्ण अनुक्रियात्मकता (Reciprocity) सुनिश्चित करें। यह सुझाव कि विकासशील देशों के सम्बन्ध में यह गुणांक 19-23 हो तथा विकसित देशों के सम्बन्ध में 8-9 हो, यह विकासशील देशों को मान्य नहीं है।

विश्व व्यापार संगठन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढावा देने में तथा विकासशील देशों की प्रगति में एक अहम भूमिका अदा करता है। एम0टी0एम0 के आठ सफल दौर के परिणाम स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर लगे प्रतिबन्धों में कमी आई है। विश्व व्यापार 1947 से 1973 के मध्य औसत 8 प्रतिशत वार्षिक की रफ्तार से बढ़ता रहा। विश्व बाजार में तेल की कीमतों का असर व्यापार पर भी देखा गया तथा 1973-80 के मध्य यह 3.77 वार्षिक की रफ्तार से बढ़ा। 1980-90 में यह रफ्तार 4.37 रही तथा 1990-99 के मध्य यह 6.5 प्रतिशत रही। इस समस्त अवधियों में व्यापार की रफ्तार विश्व उत्पादन से अधिक रहा।

भारत सहित विभिन्न विकासशील देशों ने अपनी आन्तरिक नीतियों के कारण विश्व व्यापार में आये बदलाव का पूरा फायदा नहीं उठाया। गैट समझौते के लागू होने के दौरान इन देशों की प्रायः उपेक्षा की गई तथा इनके उत्पादों को विश्व व्यापार में अधिक महत्व नहीं दिया गया। इसका प्रमुख कारण विश्व व्यापार में विकसित देशों का प्रभुत्व था। परन्तु विश्व व्यापार संगठन के आने बाद विकासशील देशों के हितों को ध्यान में रखा गया और उनके उत्पादों को विश्व व्यापार में अच्छा मल्य मिलने लगा। साथ ही उन देशों का उन दबाओं की उपलब्धता बढ़ाई गई जो जीवन रक्षक हैं और जिनका उत्पादन ये देश तकनीक के अभाव अथवा पेटेन्ट के कारण कर पाने में असमर्थ थे। अतः यह कह सकते है कि विश्व व्यापार संगठन से विकासशील देशों को लाभ पहुंचा है।

9.6 अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को निपटाने में विश्व व्यापार संगठन की भूमिका

विश्व व्यापार संगठन सदस्य देशों के मध्य व्यापार से सम्बन्धित विवादों को दूर कराने का प्रयास करती है। बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था में विवादों को दूर करना ही विश्व अर्थव्यवस्था की सफलता मानी जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय विवाद प्रमुख रूप से विश्व व्यापार संगठन द्वारा जारी नियमों के उल्लंघन के कारण उत्पन्न होते हैं। सदस्य देशों की यह नीति रहीं है कि यदि कोई देश निर्धारित नियमों का उल्लंघन करते हैं तो बहुपक्षीय आधार पर उन विवादों का निस्तारण किया जाय।

गैट समझौते के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को निपटाने की कोई स्पष्ट रणनीति नहीं थी, परन्तु ऊरूग्वे दौर में एक व्यवस्थित प्रक्रिया द्वारा विवादों को एक निष्चित समय सीमा के अन्दर निपटाने की बात कही गई।

उसी प्रकार गैट समझौते के दौरान कोई भी सदस्य देश यदि किसी निर्णय से असहमत हो तो वह उस निर्णय के क्रियान्वयन पर रोक लगा सकता था। परन्तु नई व्यवस्था के अन्तर्गत यह रोक तभी लगाई जा सकती है जब सभी सदस्य देशों के बीच आम सहमति हो।

विवादों के निपटारे की जिम्मेदारी विवाद निस्तारण प्रभाग (Dispute Settlement Body) की होती है

जिसमें विश्व व्यापार संगठन के समस्त सदस्य देश शामिल होते हैं। अतः प्रभाग द्वारा किसी मुद्दे पर लिये गये निर्णय सर्वमान्य होते है।

जनवरी 1995 से मई 2013 के मध्य विश्व व्यापार संगठन की मध्यस्तता से कुल 459 विवादों का निपटारा किया गया है। ये विवाद एशिया, अफ्रीका, अमेरिका, यूरोप महाद्वीप के देशों तथा आस्ट्रेलिया से सम्बन्धित हैं। पशुधन उत्पाद के आयात, राशिपतन, वस्त्र के उत्पादन तथा उनके निर्यात में विवाद, बायोडीजल के आयात, तम्बाकू उत्पादों की पैकिंग तथा उनके ट्रेडमार्क, पोल्ट्री उत्पादों के आयात, वाहन के पुर्जों के आयात आदि से सम्बन्धित हैं।

9.7 अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्नः

1. गैट का समझौता किन सिद्धान्तों पर आधारित था?
2. डब्ल्यू.टी.ओ. में मन्त्री -स्तरीय सम्मलेन क्या है?
3. गैट की स्थापना क्यों की गयी है?
4. गैट के आठवें दौर के मुख्य विषय का उल्लेख कीजिए।

2. सत्य/असत्य बताइये:

1. विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का विचार गैट के आठवें उरूग्वे दौर में किया गया था।
2. कृषि परिदान में कटौती करने के लिए अमेरिका ने ग्रीन बाक्स और ब्ल्यू बाक्स जैसे प्रावधान कर रखें हैं।
3. डब्ल्यू.टी.ओ. का आरम्भिक मंत्री -स्तरीय सम्मेलन जिनेवा में हुआ था।
4. विश्व व्यापार संगठन के सभी सदस्य सभी परिषद एवं सभी समितियों में भाग ले सकते हैं।

3. बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का आधार है

(अ) अंक्टाड (ब) संयुक्त राष्ट्र संघ

(स) विश्व बैंक (द) गैट

2. डब्ल्यू.टी.ओ. की स्थापना कब हुई थी?

(अ) 1995 (ब) 1947

(स) 1955 (द) 1994

3. डब्ल्यू.टी.ओ. प्रशासन की सर्वोच्च संस्था है

(अ) मंत्री -स्तरीय सम्मेलन (ब) सामान्य परिषद्

(स) विवाद निपटान संस्था (द) गैट

4. डब्ल्यू. टी.ओ. के निम्न सम्मेलनों में कौन सा सम्मेलन दोहा सम्मेलन है

(अ) प्रथम (ब) द्वितीय

(स) तृतीय (द) चतुर्थ

5. डब्ल्यू.टी.ओ. के किस सम्मेलन में चाईना और ताइवान को डब्ल्यू.टी.ओ. का सदस्य बनाया गया

(अ) सिएटल (ब) दोहा

(स) कानकुन (द) हांगकांग

4. एक पंक्ति अथवा एक शब्द वाले प्रश्नः

1. विश्व व्यापार संगठन के मंत्री -स्तरीय सम्मेलन में सिंगापुर मुद्दा में क्या शामिल है।
2. अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ, अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम, बहुपक्षीय निवेश गारण्टी एजेन्सी तथा निवेश विवादों के निबटारे का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र। उपर्युक्त चार संस्थाओं को क्या कहा जाता है?
3. विश्व व्यापार संगठन किससे अभिप्रेरित है?
4. विश्व व्यापार संगठन का मुख्यालय कहाँ पर स्थित है?

5. रिक्त स्थान भरिए:

1. ब्रेटन-वुड्ज सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और ... की स्थापना की गयी।
2. विश्व बैंक 25 जून 1946 से कार्य प्रारम्भ कर दिया जबकि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ..... से कार्य प्रारम्भ किया।
3. विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष दोनों संस्थाओं की स्थापना ..... को हुई।
4. मंत्री स्तरीय सम्मेलन विश्व व्यापार संगठन की ..... प्राधिकार है।

9.8 सारांश

उक्त इकाई के अध्ययन से गैट समझौते के महत्वपूर्ण पहलू तथा बदलती परिस्थितियों में समय उपरान्त विश्व व्यापार संगठन के उत्पत्ति से आप अवगत हुए हैं। उसी प्रकार, गैट समझौते के प्रारूप में जिन परिवर्तनों के उपरान्त विश्व व्यापार संगठन की कार्यप्रणाली एवं उसके अधिकार तय किये गये, उनसे भी आप परिचित हुए। पूर्व काल में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में विकसित देशों का वर्चस्व रहा तथा व्यापार की शर्ते विकासशील देशों के विरूद्ध रहीं। विकासशील देश प्रायः कच्चे माल का निर्यात करते थे तथा तैयार माल का आयात करते थे जबकि विकसित देश तैयार माल का निर्यात करते थे। परिणामस्वरूप, विकासशील देशों के भुगतान शेष में ज्यादातर घाटे की स्थिति बनी रही। साथ ही, ये देश निर्यात संवर्धन पर अधिक बल न देकर आयात प्रतिस्थापन पर ध्यान केन्द्रित करते रहे। जिसके कारण बदलते परिवेश का लाभ उठाने में वे असमर्थ रहे। विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों के व्यापार में कई प्रकार के व्यवधान उत्पन्न किये गये जिन्हें विश्व व्यापार संगठन ने परस्पर सहमति से दूर करने का प्रयास किया।

इसके अतिरिक्त विकासशील देशों के निर्यात का समुचित मूल्य दिलवाना, पेटेन्ट अवस्था में उनके हितों की रक्षा करना, तथा उन्हें जीवन रक्षक औषधियां उचित मूल्य पर उपलब्ध करवाना विश्व व्यापार संगठन की जिम्मेदारी है। विकसित देशों का संगठन के वर्चस्व होने के बाद भी संगठन का ऐसा प्रयास सराहनीय है।

9.9 शब्दावली

- **पेटेंट** – पेटेंट किसी आविष्कार, डिजाईन आदि को प्रोत्साहित एवं सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक निश्चित समयावधि के लिए प्रदान किया जाने वाला कानूनी अधिकार है। पेटेन्ट दो प्रकार के होते हैं– प्रक्रिया पेटेन्ट और उत्पाद पेटनेट। प्रक्रिया पेटेन्ट में वस्तु के उत्पादन की प्रक्रिया के लिए पेटेन्ट प्रदान किया जाता है तथा उत्पाद पेटनेन्ट में उत्पाद के मूलभूत अन्वेषक को पेटेन्ट प्रदान किया जाता है। अर्थात् कोई अन्य निर्माता उसी उत्पाद को निर्मित नहीं कर सकता।
- **सबसे अधिक प्रिय देश** -सबसे अधिक प्रिय देश को अनुग्रहीत राष्ट्र का व्यवहार भी कहते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भेदभावपूर्ण व्यवहार की समाप्ति हेतु 'सबसे अधिक प्रिय देश सिद्धान्त का प्रयोग किया जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक सदस्य देश के साथ अन्य देशों के भाँति ही व्यवहार किया जाता है तथा किसी एक सदस्य देश को दी गयी रियायत स्वतः ही अन्य सदस्य देशों के लिए भी उपलब्ध हो जाती हैं।

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लघु उत्तरीय प्रश्नः

1. गैट का समझौता चार महत्वपूर्ण सिद्धांतों पर आधारित था

   (1) विभिन्न देशों के बीच बिना भेद-भाव के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार किया जाय।
   (2) विदेशी व्यापार को प्रभावित करने हेतु केवल प्रशुल्क-दरों का आश्रय लिया जाय।
   (3) एक देश दूसरे देश के लिए क्षतिप्रद नीति अपनाने से पूर्व उस (दूसरे) देश से विचार-विमर्श करे, तथा
   (4) ऐसे कदम उठाये जायें जिनसे प्रशुल्क दरों में परस्पर विचार-विमर्श के माध्यम से कमी की जा सके।

2. डब्ल्यू.टी.ओ.में मंत्री-स्तरीय सम्मेलन सर्वोच्च संस्था होती है जहाँ पर सदस्य देशों के प्रतिनिधि आर्थिक विकास के बारे में निर्णय लेते हैं।मंत्री -स्तरीय सम्मेलन डब्ल्यू.टी.ओ. की प्रशासक समिति होती है।

3. गैट की स्थापना अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की उदारता की नीति को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से सन् 1947 में जेनेवा में प्रशुल्क करों एवं व्यापार पर सामान्य समझौता (गैट) के नाम से की गयी।

4. गैट का आठवाँ दौर अन्तिम दौर था इसी दौर में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का निर्णय लिया गया। इसके अतिरिक्त बौद्धिक सम्पत्ति, विवाद समझौता, प्रशुल्क, गैर प्रशुल्क, उपाय, टैक्सटाइल्स, कृषि आदि से सम्बन्धित निर्णय लिये हैं।

2. सत्य/असत्य बताइयेः

(1) सत्य (2) सत्य (3) असत्य (4) सत्य

3. बहुविकल्पीय प्रश्न:

(1) द, (2) अ, (3) अ, (4) द, (5) ब

4. एक पंक्ति अथवा एक शब्द वाले प्रश्न:

1. विश्व व्यापार संगठन के मंत्री -स्तरीय सम्मेलन में सिंगापुर मुद्दा में चार मुद्दे शामिल थे, ये हैं– विदेशी निवेश, प्रतिस्पर्धा, व्यापार सुविधा तथा सरकारी खरीद में पारदर्शिता। इन्हीं चार मुद्दों को सिंगापुर मुद्दे के नाम से जाना जाता है।
2. विश्व बैंक समूह
3. विश्व व्यापार संगठन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के उदारीकरण एवं परिवीक्षण से अभिप्रेरित है
4. जेनेवा

5. रिक्त स्थान भरिए:

1. विश्वबैंक 2. 1 मार्च, 1947 3. 27 दिसम्बर, 1945 4. सर्वोच्च

9.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Mithani, D.M. (2010). "International Economics" Himalaya Publishing House, Mumbai.2.वैश्य, एम.सी. व सिंह, सुदामा (2002). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र"सप्तम संस्कण, आक्सफोर्ड एवं आई.बी.एच. पब्लिशिंग कं.प्रा.लि., नई दिल्ली।
- अग्रवाल एवं बरला (2008). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र"लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- राणा, के.सी. व वर्मा, के.एन. (2012). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र विशाल पब्लिशिंग कं.,जालन्धर।

9.12 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

- झिंगन, एम.एल. (2011). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" षष्टम संस्करण, वृंदा पब्लिशिंग प्रा. लि.,दिल्ली।
- Salvatore, Dominick (1998) "International Economics" Sixth ed. Prentice Hall,New Jersey.
- Pugel, A. Thomas (2011). "International Economics" 13th ed. Tata McGraw Hill Educational Pvt. Ltd., New Delhi.
- Avadhani, V.A. (2012). "International Economics" Eighth Ed. Himalaya Publishing House, Mumbai.

9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य तथा कार्यों की विस्तृत चर्चा कीजिए।
2. डब्ल्यू.टी.ओ. के विभिन्न वार्ता दौरों का वर्णन कीजिए।
3. डब्ल्यू.टी.ओ. विकासशील देशों को बड़े बाजारों में निर्यात करने की सुविधा देने में क्यों असफल रहा?

इकाई-10 वैश्वीकरण-विनिमय बाजार का विकास, यूरो मुद्रा बाजार एवं अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार

(Globalization- Development of Exchange Market, Euro Currency Market and International Bond Market)

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3.1 विनिमय बाजार का विकास

10.3.1 विनिमय बाजार का अर्थ

10.3.2 विदेशी भुगतान के साधन

10.3.3 विनिमय बाजार: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में

10.3.4 भारत में विनिमय बाजार: स्वतन्त्रता के बाद

10.3.5 भारत में विनिमय बाजार: आर्थिक सुधारों के बाद

10.3.6 विदेशी मुद्रा प्रबन्धन कानून (फेमा)

10.4 यूरो मुद्रा बाजार

10.4.1 यूरो मुद्रा बाजार का अर्थ

10.4.2 यूरो मुद्रा बाजार की विशेषताएं

10.4.3 यूरो मुद्रा बाजार में ऋण एवं जमा

10.4.4 यूरो मुद्रा बाजार और भारत

10.5 अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार

10.5.1 अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार का अर्थ

10.5.2 अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार के प्रकार

10.5.3 अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार की रेटिंग

10.5.4 अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार एवं भारतीय कम्पनियाँ

10.6 अभ्यास प्रश्न

10.7 सारांश

10.8 शब्दावली

10.9 अभयास प्रश्नों के उत्तर

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना ()

पिछली इकाई में हमने विश्व व्यापार तन्त्र का विस्तार से अध्ययन किया। इस इकाई में हम वैश्वीकरण के अन्तर्गत विनिमय बाजार का विकास, यूरो मुद्रा बाजार एंव अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार का अध्ययन करेंगे। खण्ड चार के अध्ययन के बाद आप जान गये होंगे कि विदेशी विनिमय, विनिमय नियंत्रण एवं विदेशी विनिमय बाजार के सिद्धान्त किस प्रकार कार्य करते है। इस इकाई में हम इस बात का अध्ययन करेंगे कि वैश्वीकरण के बाद व्यवहारिक तौर पर इस दिशा में क्या परिवर्तन हुए है। विदेशी मुद्रा नियमन अधिनियम (फेरा) की समाप्ति के बाद विदेशी मुद्रा प्रबन्धन अधिनियम (फेमा) ने विनिमय बाजार को किस प्रकार प्रभावित किया है।

विश्व पटल पर दिन-प्रतिदिन विषम होती अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की समस्या एवं अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय बाजारों में अमेरिकी डॉलर के प्रभुत्व और अन्य मुद्राओं की सापेक्षिक उपेक्षा ने यूरो मुद्रा बाजार को महत्वपूर्ण बना दिया है। 27 सदस्यीय यूरोपीय संघ के 17 देशों द्वारा यूरो मुद्रा बाजार में शामिल होकर यूरोप की सांझी मुद्रा यूरो को स्वीकार्यता प्रदान की है। यूरो मुद्रा बाजार का अध्ययन विकासशील देशों पर पड़ने वाले प्रभावों के सम्बन्ध में भी होगा। इसी इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार के अर्थ, प्रकार एवं अर्न्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार में भारतीय कम्पनियों द्वारा दर्ज की गयी उपस्थिति का भी अध्ययन करेंगे।

10.2 उद्देश्य ()

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल होंगे कि-

- ✓ वैश्वीकरण ने विनिमय बाजार को कैसे प्रभावित किया है।
- ✓ फेरा एवं फेमा मे अन्तर को समझ सकेंगे।
- ✓ यूरो मुद्रा बाजार की कार्यविधि क्या है?
- ✓ यूरो मुद्रा बाजार की प्रमुख विशेषतायें कौन-कौन सी है।
- ✓ अर्न्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार को समझ सकेंगे।
- ✓ अर्न्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार के महत्व को समझेंगे।

10.3 विनिमय बाजार का विकास (Development of the Exchange Market)

10.3.1 विनिमय बाजार का अर्थ (Meaning of the Exchange Market)

अलग-अलग देशों में अलग-अलग मुद्रा प्रणालियाँ तथा अलग-अलग लेखा-जोखा की इकाईयाँ विद्यमान है इसलिए विदेशी भुगतानों के लिए एक मुद्रा को दूसरी मुद्रा में बदलने की समस्या उत्पन्न होती है। एक देश की मुद्रा दूसरे देश की मुद्रा में परिवर्तन करने का कार्य विनिमय बाजरों द्वारा संपन्न किया जाता है।

विदेशी विनिमय बाजार वह स्थान है जहाँ विदेशी मुद्रायें बेची तथा खरीदी जाती है। इस बाजार में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारी अपनी-अपनी विदेशी प्राप्तियों को स्वदेशी मुद्राओं में परिवर्तित करते है अथवा स्वदेशी मुद्रा को विदेशी मुद्राओं में परिवर्तित करते है। इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि विदेशी-विनिमय वह व्यवस्था है

जिसके माध्यम से ऐसे दो क्षेत्रों या देशों के बीच भुगतान सम्पादित होता है जिनमें अलग-अलग चलन प्रणालियां विद्यमान है।

इस बाजार में विदेशी विनिमय की व्यवस्था इस प्रकार की जाती है कि आयात करने वाला देश अपने देश की मुद्रा में भुगतान कर देता है तथा निर्यात करने वाला देश अपने देश की मुद्रा में भुगतान प्राप्त कर लेता है। विदेशी विनिमय बाजार में विदेशी विनिमय बैंक, वाणिज्यिक बैंक, केन्द्रीय बैंक तथा ट्रेजरी आदि वित्तीय संस्थाओं का समावेश होता है जो इस कार्य में संलग्न रहती है।

10.3.2 विदेशी भुगतान के साधन

जब कोई देश दूसरे देश से माल का आयात करता है तो उसके सामने भुगतान की समस्या आती है यदि आयात करने वाला देश उतने ही मूल्य का निर्यात कर दे तो भुगतान हो जाता है। निर्यात-योग्य वस्तुयें न होने पर उतने ही मूल्य का स्वर्ण निर्यात करने पर भी भुगतान किया जा सकता है किन्तु वर्तमान में भुगतान प्रक्रिया इतनी सरल नही है कि केवल माल अथवा स्वर्ण का निर्यात कर समस्या हल कर ली जाये। भुगतान के लिए विदेशी विनिमय का सहारा लिया जाता है तथा विशेष माध्यमों से भुगतान किया जाता है तथा विशेष माध्यमों से भुगतान किया जाता है जो इस प्रकार है-

1. **विदेशी विनिमय बिल-** जिस प्रकार विनिमय बिल से आन्तरिक भुगतान किया जाता है, उसी प्रकार जब इसका प्रयोग विदेशी भुगतान के लिए किया जाता है तो इसे विदेशी विनिमय बिल कहते हैं। माल का विक्रय करने वाला जो भुगतान पाने का अधिकारी है, माल क्रय करने वाले (जो भुगतान का देनदार है) को विनिमय-पत्र लिखता है जिसमें यह आदेश होता है कि निश्चित अवधि (90 दिन) के भीतर उसमें उल्लिखित राशि का भुगतान लेनदार को अथवा उसके द्वारा आदेशित व्यक्ति को कर दिया जाये।
2. **विदेशी विनिमय पत्र**-निर्यात करने वाले द्वारा, आयात करने वाले पर लिखा जाता है। स्वीकृत होने के बाद यह विनिमय पत्र अपने ही देश में उन लोगों को बेच दिया जाता है जिन्हें आयात करने वाले देश को भुगतान करना है। यह व्यक्ति इन विनिमय पत्रों को विदेशों में उन व्यक्तियों के पास भेजते हैं जिन्हें वे भुगतान करना चाहते हैं। इन लेनदारों के द्वारा इन विनिमय-पत्रों की राशि उन लोगों से वसूल कर ली जाती है जिन्होंने प्रारम्भ में इसे माल का आयात करने के कारण स्वीकार किया था।
3. **ड्राफ्ट द्वारा भुगतान-** बैंक ड्राफ्ट एक बैंक द्वारा अपनी शाखा अथवा अन्य बैंक (जिसके साथ उसका हिसाब रहता है) को लिखा गया आदेश है कि ड्राफ्ट में उल्लिखित राशि का भुगतान (जो ड्राफ्ट जारी करने वाले बैंक में जमा कर दी गयी है) वाहक द्वारा मांग करने पर कर दिया जाये। अन्तर्राष्ट्रीय भुगतानों के लिए भी अन्तर्राष्ट्रीय बैंको अथवा विदेशी विनिमय बैंको द्वारा ड्राफ्ट का प्रयोग किया जाता है यदि भारत का व्यापारी इंग्लैण्ड के व्यापारी को भुगतान करना चाहता है तो वह भारत से पौण्ड स्टर्लिंग का ड्राफ्ट लेकर, इंग्लैण्ड के व्यापारी के पास भेज देगा जो वहाँ बैंक की शाखा से उतनी मुद्रा प्राप्त कर लेगा।
4. **साख पत्र-** साख-पत्र जारी करने वाल बैंक किसी व्यक्ति को चैक या बिल द्वारा एक निश्चित अवधि में एक निश्चित रकम निकालने का अधिकार होता है। इस साख पत्र के आधार पर निर्यात करने वाला, वस्तुओं का निर्यात कर देता है, क्योंकि भुगतान का दायित्व साख-पत्र जारी करने वाले बैंक का होता है।

इसके अतिरिक्त यात्री चैक, अन्तर्राष्ट्रीय मनीआर्डर आदि के द्वारा भी विदेशी भुगतान किये जाते है।

10.3.3 विनिमय बाजार: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में

प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व विनिमय बाजार में विनिमय का माध्यम स्वर्णमान था। इस प्रणाली के अन्तर्गत सोने के सिक्के चलते थे या जो करेंसी चलती थी, उसे एक निश्चित दर पर सोने में बदला जा सकता था। करेंसी की एक इकाई का मूल्य सोने के निश्चित भार में होता था अर्थात् एक रुपये, डॉलर या पाउण्ड आदि के बदले इतने ग्राम सोना। देश का केन्द्रीय बैंक हमेशा निर्धारित कीमत पर सोना खरीदने और बेचने को तैयार रहता था, जिस पर देश की मानक मुद्रा सोने में बदली जा सकती थी, वह दर स्वर्ण की टकसाल दर कीमत कहलाती थी।

वर्तमान समय में मुद्रा में निहित स्वर्ण धातु द्वारा अथवा टकसाली समता द्वारा विनिमय दर का निर्धारण महत्वहीन हो गया है। इसके प्रमुख तीन कारण इस प्रकार है-

1. आज विश्व में कोई भी देश न तो स्वर्णमान अपनाये हुए है और न ही धातुमान।
2. आजकल प्रायः सब देशों में कागजीमान अथवा प्रादिष्ट मुद्रा (अपरिवर्तनीय कागजी नोटों की प्रणाली) है जिसके अन्तर्गत विनिमय की टकसाली दर की धारणा ही अर्थहीन है।
3. प्रथम विश्व युद्ध (1914-1918) की अवधि में स्वर्णमान समाप्त हो जाने के पश्चात् बहुत से देशों ने पत्र मुद्रामान अपना लिया था। सन् 1914-1924 की अवधि में अर्थशास्त्रियों में सी0 कैसल का क्रयशक्ति समता सिद्धान्त बहुत लोकप्रिय रहा। क्रयशक्ति समता सिद्धान्त के अनुसार, दो देशों के बीच विनिमय की दर उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहाँ दोनों देशों की क्रय-शक्ति समान होती है।

इन सिद्धान्त की गम्भीर त्रुटि यह है कि इसका दो देशो में कीमत-स्तरों का हिसाब लगाने का तरीका नही है। इसकी कठिन गणना के कारण इसे त्याग दिया गया।

इसके बाद विदेशी विनिमय बाजार में विदेशी विनिमय का भुगतान शेष सिद्धान्त लोकप्रिय हुआ। इस सिद्धान्त के अनुसार-देश की मुद्रा की तुलना में, विदेशी मुद्रा का निर्धारण, विदेशी विनिमय बाजार में मांग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा होता है एवं मांग तथा पूर्ति की शक्तियों का निर्धारण अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान-शेष अथवा भुगतान संतुलन की विभिन्न मदों द्वारा होता हैं। यह सिद्धांत स्पष्ट करता है कि जब भुगतान-शेष में घाटा होता है तो विनिमय दर की कमी हो जाती है। उसके विपरीत, जब भुगतान-शेष में आधिक्य होता है तो विनिमय दर में वृद्धि हो जाती है।

आधुनिक संदर्भ में इस सिद्धांत को भी स्वीकार नहीं किया जाता है क्योंकि यह सिद्धांत भी अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित हैं।

यहाँ आपकों यह बताना आवश्यक है कि विनिमय बाजार विनिमय दर के उन सिद्धान्तों से तो प्रभावित होता है जो बाजार शक्तियों द्वारा निर्धारित होते है परन्तु प्रत्येक सरकार विदेशों से प्राप्तियों तथा विदेशों को किये गये भुगतानों को सन्तुलित करने हेतु विनिमय नियन्त्रण प्रणाली के आधुनिक रूप को भी स्वीकार करती है।

10.3.4 भारत में विनिमय बाजार: स्वतन्त्रता के बाद

सन् 1946 तक ऐतिहासिक रूप में रूपया ब्रिटिश पाउण्ड स्टर्लिंग से सम्बन्धित था। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की स्थापना हुई। इस कोष के संस्थापक सदस्य होने के कारण भारत ने बहुपक्षीय भुगतान की प्रणाली स्वीकार कर ली थी अर्थात् रूपया आई.एम.एफ. के सभी सदस्य देशों की करेन्सियों में मुक्त रूप में परिवर्तनीय होना चाहिए किन्तु भारत ने लम्बे समय से विदेशी मुद्रा नियन्त्रण की नीति अपनायी थी। आर्थिक सुधारों से पूर्व तक कम्पनी विधि विषयक मन्त्रालय, भारतीय रिजर्व बैंक, औद्योगिक विकास मन्त्रालय एवं वित्त मन्त्रालय जैसी सरकारी एजेन्सियों ने विनिमय बाजार में आधिपत्य जमा कर रखा।

स्वतन्त्रता के बाद भारत सरकार ने विनिमय बाजार में भारतीय रूपये को डॉलर के सम-मूल्य (1 यू.एस. डॉलर = रू0 3.30) पर निर्धारित किया था। 1949 एवं 1966 में रूपये के अवलमूल्यन के बाद भारतीय रूपये को डॉलर के सपोक्ष नयी दर (1 यू.एस. डॉलर = रू0 7.50) पर निर्धारित किया। सन् 1976 में भारत सरकार ने विनिमय बाजार में सम-मूल्य पर विनिमय दर निर्धारित करने की पद्धति का परित्याग कर दिया और रिजर्व बैंक को निर्देश दिया कि वह रूपये की विनिमय दर प्रमुख अर्न्राष्ट्रीय करेन्सियों के समूह के आधार पर तय करें। इनमें प्रमुख करेन्सियां थी: पाउण्ड स्टर्लिंग, यू.एस. डॉलर, जापानी येन और ड्यूश मार्क।

विनिमय बाजार में विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम; 1973 ने भी महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। भारतीय रिजर्व बैंक ने विदेशी मुद्रा विनियमन कानून के आधीन विदेशी मुद्रा नियन्त्रण की व्यापक प्रणाली अपना ली थी जिसका मुख्य उद्देश्य विदेशी मुद्रा संसाधनों का संरक्षण करना था।

70 के दशक में विनिमय बाजार में जो उतार-चढ़ाव आये उसका प्रमुख कारण स्फीति दर का निरन्तर बढ़ना भी था जिसके परिणामस्वरूप रूपये की क्रयशक्ति में गिरावट आ गयी थी। यू.एस. डॉलर और अन्य प्रमुख करेन्सियों के रूप में सन् 1991-92 से पहले रूपये के मूल्यह्रास का कारण भारत के भुगतान शेष के बढ़ते हुए घाटे थे और इस स्थिति को उदार आयात नीति और खाड़ी युद्ध ने और बिगाड़ दिया। इसके अतिरिक्त विदेशी मुद्रा-रिजर्व में तेजी से गिरावट और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने भारत को आर्थिक सहायता देने के समय रूपये के अवमूल्यन की शर्त लगाना, इसके अन्य प्रमुख कारण थे।

10.3.5 भारत में विनिमय बाजार: आर्थिक सुधारों के बाद

24 जुलाई 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद विदेशी विनिमय नियमन अधिनियमन के अधीन कम्पनियों को अनेक रियायते दी गयी। रूपये का अवमूल्यन किया गया तथा अनेक आर्थिक सुधार लागू किये गये। भारतीय अर्थव्यवस्था उदारीकरण के मार्ग पर चलते हुए निजीकरण एवं वैश्वीकरण की ओर उन्मुख हुई। 1991-92 के पश्चात् भारत में विनिमय बाजार की स्थिति में सुधार हुआ परन्तु 1997 के अन्त मे विदेशी मुद्रा बाजार में भारी सट्टेबाजी हुई और रूपये के विदेशी मूल्य में भारी गिरावट आयी। इसी दौरान बहुत से एशियाई देशों जैसे-मलेशिया, इंडोनेशिया और दक्षिण कोरिया एक गम्भीर आर्थिक संकट से ग्रस्त हो गये और उनकी करेन्सियों में डॉलर के सापेक्ष अत्यधिक गिरावट दर्ज की गयी। भारतीय रूपया भी इस संक्रमण प्रभाव से अछूता नहीं रह सका।

भारतीय रिजर्व बैंक ने विनिमय बाजार में हस्तक्षेप भी किया परन्तु रूपये के बाह्य मूल्य में गिरावट को रोकने के प्रभाव में असफल रहा।

विनिमय व्यापार में नियन्त्रण हेतु सरकार ने सन् 1999 में विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम को समाप्त कर विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम लागू किया गया। इस अधिनियम के नाम से ही स्पष्ट है कि इसका उद्देश्य विदेशी विनिमय का नियन्त्रण न करके केवल उसका प्रबन्धन करना है। इस प्रबन्धन का उद्देश्य यह है कि विदेशी व्यापार से सम्बन्धित भुगतानों में कोई रूकावट या कठिनाई न आ पाये तथा साथ ही साथ भारत के विदेशी विनिमय बाजार का सुचारू ढंग विकास हो सके। इस क्रम में सर्वप्रथम रूपये की चालू खाते पर आंशिक परिवर्तनीयता लागू की गयी। बाद में चालू खाते पर रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता लागू की गयी। पूंजी खाते की परिवर्तनीयता पर प्रारम्भ में सन्देह बना रहा। संदेहों को दूर करने हेतु भारतीय रिजर्व बैंक ने सन् 1997 में **श्री एस.एस. तारापोर** की अध्यक्षता में एक समिति बनायी। तारापोर समिति ने यह सिफारिश दी कि पूंजी खाते में पूर्ण परिवर्तनीयता प्राप्त करने से पूर्व राजकोषीय घाटे को कम करने, स्फीति को नियंत्रित करने तथा वित्तीय क्षेत्र को मजबूत करने की बात कही।

सन् 2006 में द्वितीय तारापोर समिति की सिफारिशों के आधार पर पूंजी खाते में भी रूपये को पूर्ण परिवर्तनीय बना दिया गया। विनिमय बाजार को सुदृढ़ बनाने हेतु तारापोर समिति ने बैकिंग प्रणाली में समेकन का सुझाव दिया जिससे बैकिंग प्रणाली को मजबूत बनाया जा सके। हवाला के जरिये अपनी काली कमायी को विदेशी खातों में रखने हेतु सन् 2002 में मुद्रा प्रक्षालन निरोधक कानून की संसद में पारित हुआ।

10.3.6 विदेशी मुद्रा प्रबन्धन कानून (फेमा)

विदेशी मुद्रा बाजार में लेन-देनों को उदार बनाने तथा देश में विदेशी मुद्रा बाजार के समुचित एवं सुव्यवस्थित विकास को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार ने 27 वर्ष पुराने 1973 से प्रभावी विदेशी मुद्रा अधिनियम (Foreign Exchange Regulation Act (FERA)) के स्थान पर 1 जून, 2000 से एक नया विदेशी मुद्रा प्रबन्धन अधिनियम (Foreign Exchange Management Act. FEMA) फेमा विधेयक लागू कर दिया है। फेमा पूर्ववर्ती फेरा की तुलना में अति उदार अधिनियम है। कठोर प्रावधानों वाले फेरा को 1973 में ऐसे समय में लागू किया गया था, जबकि देश में विदेशी मुद्रा की बड़ी कमी थी।

नये फेमा में सबसे बड़ा उदारीकरण यह किया गया है कि अधिनियम के उल्लंघनकर्ताओं को अब केवल मौद्रिक दंड ही भुगतना होगा, जोकि सम्बद्ध राशि का अधिकतम तीन गुना होगा। पूर्ववर्ती फेरा के तहत् यह दण्ड पाँच गुना तक था तथा साथ ही साथ कारावास के दण्ड का भी उसमें प्रावधान था। फेमा के तहत् दण्डित उल्लंघनकर्ता यदि अर्थ-दण्ड चुकाने में असफल रहते हैं, केवल उसी स्थिति में उन्हें जेल भेजने की कार्यवाही की जा सकेगी, ऐसी स्थिति में भी जेल में उनकी स्थिति सिविल अपराधी की होगी जिन्हें अपने जेल प्रवास का खर्च स्वयं वहन करना होगा। नये अधिनियम फेमा के तहत् विभिन्न उद्देश्यों के लिए विदेशी मुद्रा के आहरण की सीमाओं में भी पर्याप्त वृद्धि की गयी है। व्यापारिक उद्देश्य के लिए अथवा किसी सेमीनार/सम्मेलन में भाग लेने के लिए विदेश जाने वालों की अब प्रति फेरे 25 हजार डॉलर तक की राशि के लिए रिजर्व बैंक की स्वीकृति की आवश्यकता नही होगी, भले ही विदेश प्रवास की अवधि कितनी भी हो। बेसिक यात्रा कोटे की राशि को 3000

डॉलर से बढ़ाकर 5000 डॉलर प्रतिवर्ष व उपहार हेतु राशि को 1000 डॉलर से बढ़ाकर 5000 डॉलर कर दिया गया है। नयें अधिनियम के तहत् अब कोई व्यक्ति अपने किसी रिश्तेदार या मित्र को एक वर्ष में 5 हजार डॉलर तक की राशि उपहार में भेज सकता है। पहले यह अनुमति 1000 हजार डॉलर तक के लिए ही थी। इसी प्रकार दान के रूप में भी अब एक हजार डॉलर के स्थान पर 5 हजार डॉलर तक की राशि रिजर्व बैंक की अनुमति के बिना प्रेषित की जा सकेगी। इसी प्रकार अन्य उद्देश्यों के लिए विदेशी मुद्रा आहरण में वृद्धि नये अधिनियम में की गयी है। फेरा से अलग हटकर एक अन्य प्रमुख परिवर्तन जो फेमा में किया गया है- वह यह है कि फेरा के तहत् जहाँ सिद्ध करने का दायित्व आरोपी का था, वहीं फेमा के तहत् यह दायित्व अब प्रवर्तन एजेंसी का होगा।

फेरा एवं फेमा में अन्तर-

फेरा 1973 का मुख्य उद्देश्य जहाँ विदेशी मुद्रओं का संरक्षण करना था, वही फेमा 1999 का उद्देश्य विदेशी व्यापार एवं भुगतानों को सुविधाजनक बनाना तथा देश में विदेशी मुद्रा बाजार के सुव्यवस्थित रखरखाव को बढ़ावा देना है।

1. भारत में विदेशी निवेश तथा विदेशों में भारतीय निवेश सम्बन्धी नियम फेरा की तुलना में फेमा मे अधिक उदार एवं पारदर्शी है।
2. भारत में रह चुका कोई व्यक्ति भारत के बाहर का निवासी हो जाने पर भी उन शेयरों, प्रतिभूतियों एवं सम्पत्तियों को धारण कर सकेगा जो उसने भारत प्रवास के दौरान धारण की थी।
3. विदेश यात्राओं व अन्य विभिन्न उद्देश्यों के लिए विदेशी मुद्राओं के आहरण की सीमायें फेरा की तुलना में फेमा में काफी अधिक निर्धारित की गयी है।
4. फेमा के उल्लंघन के मामलों का निपटान सिविल अपराधों के तरीके से किया जायेगा, अर्थात् इसके उल्लंघनकताओं को जेल की सजा नहीं, बल्कि केवल अर्थदंड ही वहन करना होगा।
5. फेरा उल्लंघन के मामले में दंड की राशि जहाँ सम्बद्ध राशि के पाँच गुना तक हो सकती थी, वहीं नये फेमा के तहत् यह अधिकतम तीन गुना ही होगी।
6. फेरा के तहत् सिद्ध करने का दायित्व अभियुक्त का होता था, जबकि फेमा के तहत् यह दायित्व प्रवर्तन एजेंसी का होगा।

इन उपायों के बावजूद अगस्त 2013 में रूपया लुढक कर डॉलर के मुकाबले 69 रूपये तक पहुँच गया था। इसकों रोकने हेतु अर्थशास्त्रियों द्वारा निम्न सुझाव दिये गये-

1. चालू खाते एवं राजकोषीय खाते के घाटे को कम करना।
2. विदेशी संस्थागत निवेशकों के विश्वास को बनाये रखना।
3. विकास कार्यो को बढावा देना।
4. रूपये में आयात-निर्यात किया जायें।
5. आई.एम.एफ. से कर्ज लिया जायें।
6. एन.आर.आई. से डॉलर एकत्रित किये जायें।
7. घरेलू सोने का मौद्रीकरण या गिरवी रखना।

10.4.1 यूरो मुद्रा बाजार

10.4.1 यूरो मुद्रा बाजार का अर्थ

विश्व के पटल पर बढ़ते आर्थिक एकीकरण अभियानों-नाफ्टा (उत्तरी अमरीका मुक्त व्यापार समझौता), साप्टा (दक्षिण एशियाई वरीयता-व्यापार समझौता), एसियान (दक्षिण-पूर्वी एशियाई राष्ट्रों का संघ), सार्क (दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन) आदि अनेक के प्रयासों ने क्षेत्रीय, आर्थिक गुट की रणनीति को बढ़ावा दिया और इसी कड़ी से जुड़ गया एक और नाम- मास्ट्रिश्च संधि (Maastrict Treaty)। 9-10 दिसम्बर, 1991 को यूरोपीय आर्थिक समुदाय के तत्कालीन 12 राष्ट्रों ने मास्ट्रिश्च (नीदरलैण्ड्स) में आयोजित शिखर सम्मेलन में आम सहमति के बाद यूरोप के राजनीतिक, आर्थिक एवं मौद्रिक एकीकरण हेतु एक संधि पर हस्ताक्षर किए और यही मास्ट्रिश्च संधि यूरो करेन्सी के उदय की बुनियाद बनी। 1 नवम्बर 1993 से लागू इस मास्ट्रिच संधि ने राजनीतिक एवं आर्थिक एकीकरण के उद्देश्य की पूर्ति हेतु यूरोपीय संघ (Eurpean Union) को जन्म दिया। मास्ट्रिच संधि एवं यूरोपीय संघ की स्थापना के लिए याक डेलोर्स की योजना के परिणाम के रूप में ही आज विश्व पटल पर यूरोप की साझी मुद्रा यूरो ने दस्तक दी है।

यूरोप के अब तक 17 राष्ट्रों ने यूरो में भागीदारी हेतु सभी आवश्यक पूर्व शर्तों को पूरा कर लिया है। वह भी इस आशा के साथ कि यूरो अन्तर्राष्ट्रीय वित्त बाजार में डॉलर की सम्प्रभुता को चुनौती देगा और अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की समस्या के समाधान का एक नया मार्ग प्रशस्त होगा।

यूरो मुद्रा बाजार एक अन्तर्राष्ट्रीय बैंकिग बाजार है। जिसने पिछले डेढ़ दशक में उल्लेखनीय प्रगति की है। वर्तमान समय में यूरो मुद्रा बाजार अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक दृश्य का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया है।

यूरो मुद्रा बाजार स्थानीयकरण मुख्य रूप से लन्दन में है जो वाह्य देशों की मुद्राओं के लेन-देन में विभिष्टीकरण करता है। अमेरीकी डालर जिसका अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन में प्रभुत्व है, के अतिरिक्त अन्य यूरोपीय मुद्राओं में भी लेन-देन होता है, जिनका अंश अर्न्राष्ट्रीय बाजार में दिनो-दिन बढ़ता जा रहा है। जो यूरोपीय मुद्रा बाजार में भाग लेते है उनमें व्यापारिक बैंक, मौद्रिक अधिकारी, व्यवसायिक फर्म-बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, सरकारी एजेन्सीज तथा अर्द्धसरकारी संस्थाएं सम्मिलित है। इस बाजार के विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्रों पर 250 से 450 बिलियन डालर के बीच परिसम्पत्ति लगी हुयी है। गैर-बैंक साधनों का प्रयोग बाजार के कुल लेन-देन का लगभग एक तिहाई है। चूँकि बाजार का एक बड़ा भाग यूरोप में स्थित है और लेन-देन मुख्यतः डालर में होता है इसलिए इस बाजार को यूरो डालर बाजार कहते है। इसीलिए इसको यूरो डालर के अतिरिक्त यूरोपीय मुद्रा बाजार कहना अधिक उपर्युक्त होगा। फिर भी यूरोपीय शब्द का प्रयोग भ्रामक है क्योंकि इसमें केन्द्र यूरोप के बाहर बहामा, सिंगापुर ओर पनामा में भी स्थित है।

10.4.2 यूरो मुद्रा बाजार की विशेषताएं

समय के साथ-साथ यूरोपीय मुद्रा बाजार की संरचना में जो परिवर्तन हुआ है उसके फलस्वरूप लेन-देन तकनीक और ढंग में भी परिवर्तन हुआ है, जिसके कारण इस बाजार की कुछ प्रमुख विलक्षणताओं को जन्म मिला है। इसका विवरण निम्न प्रकार है।

यूरो मुद्रा बाजार थोक लेन-देन का बाजार है। जहाँ बड़ी-बड़ी कम्पनियां या सरकारी अस्तित्व के व्यवसायी लेन-देन करते है। लेन-देन की औसत मात्रा बहुत बड़ी होती है जिसके कारण उपरिव्यय कम पड़ता है।

यूरो मुद्रा बाजार का एक बड़ा भाग अन्तर्बैंक बाजार है, जिसकी प्रकृति मुख्य रूप से अल्पकालीन है। परिणामस्वरूप, यूरोपीय बैंकों में विदेशी परिसम्पत्तियों और दायित्वों के हिसाब-किताब का लगभग तीन-चौथाई दूसरे बैंकों के नाम से है। पिछले कई वर्षों में बाजार के आकार में जो विस्तार हुआ है वह मुख्य रूप से अर्न्तबैंक जमाओं के कारण है।

यूरो मुद्रा बाजार बहुत ही प्रतियोगी है। इसमें नयें व्यवसायियों के आने की पूरी छूट है। परिणामस्वरूप, जमाओं और ऋणों के बीच ब्याज दरों की सीमा के कम से कम होने की प्रवृत्ति है जिसके कारण यूरोपीय बैंको को यूरो मुद्रा बाजार की परिसम्पत्तियों पर राष्ट्रीय या घरेलू बाजार की तुलना में कम प्रतिफल पर सन्तुष्ट होना पड़ता है। बैंकों में बढ़ती हुयी प्रतियोगिता के कारण कुछ यूरोपीय बैंको को उधारकर्ता का चुनाव और लम्बे समय के लिए ऋण देने का भारी जोखिम उठाना पड़ रहा है। वर्तमान समय में बैंक इस सन्दर्भ में पर्याप्त सावधानी से काम ले रहे हैं। यद्यपि यूरो मुद्रा बाजार राष्ट्रीय बाजारों से काफी मिलता-जुलता है फिर भी घरेलू बाजार की भांति कोई केन्द्रीय मौलिक अधिकारी नहीं है और नियंत्रण का भी अभाव है।

10.4.3 यूरो मुद्रा बाजार में ऋण और जमा

भारी मात्रा में ऋण देने में जो जोखिम नीहित है उसे कई बैंको पर डालने के उद्देश्य से यूरोपीय बैंको ने अन्तर्बैंक बाजार से बाहर के मध्यकालीन ऋणों को अभिपाद (सिंडीकेट) करने की तकनीक को अपनाया है। ऋण को अभिपद करने की अनेक विधियां है। सभी विधियों की एक सामान्य विशेषता यह है कि ऋण देने की प्रक्रिया में अधिक से अधिक (95 बैंक तक) बैंक सम्मिलित हो और एक लीड बैंक हो जो ऋण के प्रबन्ध का कार्य करे। इससे यह लाभ होता है कि छोटे और माध्यम आकार के बैंक जिनके लिए ऋण देना सम्भव नही होता है वे यूरोपीय मुद्रा बाजार में भाग ले पाते है और बैंको के संघ में भाग लेने के लिए प्रेरित होते है। ऋण में निहित जोखिम को कम करने के उद्देश्य से यूरोपीय बैंक एक देश में एक ऋणकर्ता या ऋणकर्ताओं की बकाया अग्रिम धनराशि की सीमा निर्धारित कर देते है। जिससे विकासशील देशों को यूरोपीय मुद्रा बाजार से ऋण लेना सुगम हो जाये।

यूरो मुद्रा बाजार की दूसरी विशेषता यह है कि अन्तर्बैंक से बाहर के ऋणों की ब्याज में 3 या 6 महीने बाद अन्तर्बैंक ऋणों पर ब्याज को ध्यान में रखकर परिवर्तन या समायोजन होता रहे। परिवर्तनशील विनिमय दर की प्रथा अपनाने के फलस्वरूप ब्याज में नीहित जोखिम कम करने का प्रयास किया जाता है। ब्याज दर में परिवर्तन के लिए मुख्य आधार लंदन इण्टरबैंक ऑफर रेट (एल.आई.बी.ओ.आर.) होता है।

विनिमय दर में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप उधारकर्ता या जमाकर्ता को कोई नुकसान न हो, इसके लिए उधार को अमेरिकी डालर के अतिरिक्त अन्य मुद्राओं में भी नामित करने की व्यवस्था है।

यूरोपीय बैंक जमाओं को चैक के माध्यम से निकालने की सुविधा नही प्रदान करते है किन्तु इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि यूरोपीय मुद्रा बाजार की जमायें मुख्यतः अल्पकालीन है, जिसके कारण वे तरल परिसम्पत्ति की भांति ही है।

10.4.4यूरो मुद्रा बाजार और भारत

यूरो मुद्रा बाजार वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी बाजार के रूप में विकसित हो चुका है। यूरोपीय संघ भारत का सबसे बडा व्यापारिक साझीदार देश हैं। वर्ष 2002 में भारत यूरोपीय संघ का 15वॉ सबसे बडा साझीदार देश था जो 2009 में 9वॉ सबसे बडा साझीदार देश बन गया हैं। आर्थिक सहयोग में व्यापार, निवेश, सरकारी विकास सहायता तथा विकास कार्यक्रमों में सहयोग आदि सम्मिलित हैं। यूरोपीय संघ के साथ यूरो में किया गया भारतीय व्यापार भारत की अमेरिकी डालॅर पर निर्भरता घटायेगा। जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय निर्यातों को बढाने का एक प्रमुख मार्ग खुलेगा।

10.5 अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार

10.5.1 अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार का अर्थ

बॉण्ड का अर्थ ऋणपत्रों से होता है। यह ऋण प्राप्ति हेतु एक वित्तीय बाजार है पूंजी कम्पनियां ऋण प्राप्त करने के लिए अपने बॉण्ड जारी करती है। जो संस्था इन्हें जारी करती है वे इन पर धारकों को एक निश्चित दर से ब्याज भी देती है। इस प्रकार बॉण्ड बाजार वह जहाँ वित्तीय तथा अन्य संस्थाओं द्वारा नये बॉण्ड जारी किये जाते है तथा बॉण्ड खरीदे व बेचे जाते है।

अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार का अपना एक लम्बा इतिहास है परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड मार्केट में भारत का प्रवेश बहुत पुराना नहीं है। उदारीकरण से पूर्व तक भारतीय पूंजी बाजार की बहुत सी भारतीय कम्पनियां अन्तर्राष्ट्रीय बाजार से ऋण ले रही थी जैसे यूरो बॉण्ड एवं विदेशी बॉण्ड। अल्प ऋणों के लिए विदेशी मुद्रा परिवर्तनीय बॉण्ड लिये जाते है। यह अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड तैरीती दर पर लिये जाते है जो बाजार के उतार-चढ़ाव पर निर्भर करते है।

बॉण्ड के आधार पर ही उसका ब्याज निर्धारित होता हैं-

1) **स्थिर कूपन बॉण्ड-** बॉण्ड जारी करते समय ही परिपक्वता अवधि के समय देय भुगतान की घोषणा कर दी जाती है। यह बॉण्ड अल्पकाल के लिए जारी किये जाते है।
2) **तैरते कूपन बॉण्ड-** यह बॉण्ड बाजार की ब्याज दर से प्रभावित होते है। यह ब्याज LIBOR (London Interbank Offer Rate) द्वारा निर्धारित होती है।

3) **जीरो कूपन बॉण्ड-** इस तरह के बॉण्ड पर कोई ब्याज देय नही होता है। परिपक्वता पर केवल अंकित मूल्य का ही भुगतान होता है। ऐसे बॉण्डों की बिक्री प्रायः अंकित मूल्य से कम पर की जाती है। यह डिस्काउंट ही क्रेताओं को ब्याज के रूप में प्राप्त होता है।
4) **परिवर्तनीय बॉण्ड-** एक तरह से यह बॉण्ड स्थिर कूपन बॉण्ड ही होते है जिसका कुछ कम्पनी के शेयर में लगाया जाता है।
5) **दोहरा मुद्रा बॉण्ड-** बॉण्ड पर अंकित मूल्य एवं उससे प्राप्त होने वाले ब्याज की गणना अलग-अलग देशों द्वारा की जाती है।

10.5.2 अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड के प्रकार

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजार को मुख्य रूप से तीन भागों में बांटा जा सकता है-

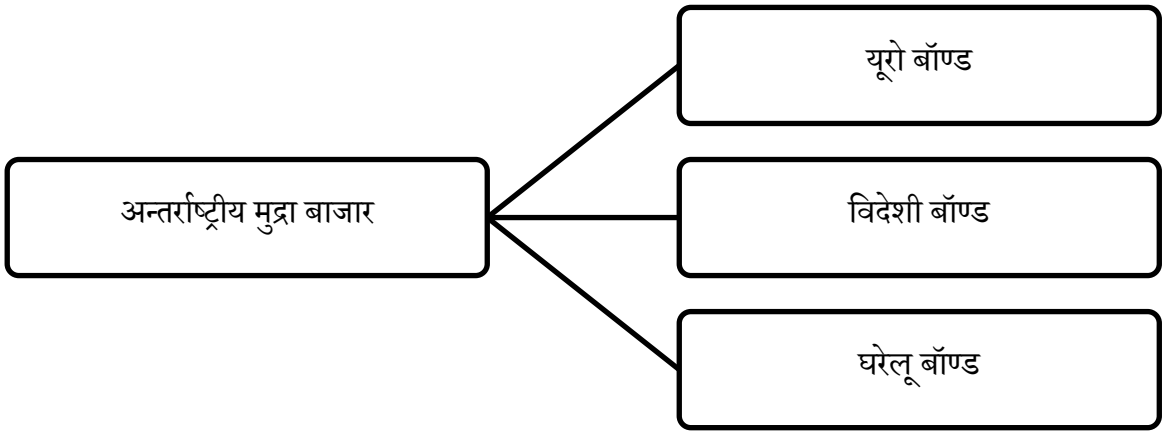

1. **यूरो बॉण्ड-** एक कम्पनी द्वारा मुद्रा अर्जन हेतु विदेश में बॉण्ड जारी करती है तो उसे यूरो बॉण्ड कहते है। उदाहरणार्थ- भारत सरकार, भारतीय रिजर्व बैंक तथा भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) ने कतिपय प्रावधानों के अन्तर्गत चुनिंदा भारतीय कम्पनियों को विदेशी पूंजी बाजारों में बॉण्ड जारी करके विदेशी मुद्रा में पूंजी एकत्रित करने की छूट दी जाती है। इसी के तहत जब कोई भारतीय कम्पनी विदेशों में अपना बॉण्ड जारी करती है तो उसे **यूरो बॉण्ड** कहा जाता है।
2. **विदेशी बॉण्ड-** विदेशी कम्पनी द्वारा उस देश की घरेलू मुद्रा के अर्जन हेतु जो बॉण्ड जारी किये जाते है उसे विदेशी बॉण्ड कहते है। उदाहरणार्थ- अमेरिकी कम्पनी द्वारा जापानी मुद्रा येन को प्राप्त करने हेतु जो बॉण्ड जारी किये जाते है उसे **विदेशी बॉण्ड** कहते है।
3. **घरेलू बॉण्ड-** जब कोई कम्पनी अपने ही देश मे अपनी ही मुद्रा के अर्जन हेतु बॉण्ड जारी करती है तो उसे घरेलू बॉण्ड कहते है। उदाहरणार्थ- भारतीय कम्पनी द्वारा अपनी ही मुद्रा (रूपये) के अर्जन हेतु जो बॉण्ड जारी किये जाते है उसे **घरेलू बॉण्ड** कहते है।

इसके अतिरिक्त कुछ कम्पनियां एक साथ अनेक देशों में एक साथ मुद्रा अर्जन हेतु बॉण्ड जारी करती है उसे ग्लोबल बॉण्ड कहते है।

10.5.3 अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्डों की रेटिंग

अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में बॉण्ड की सफलता उसकी रेटिंग पर निर्भर करती है। इन बॉण्डों की रेटिंग हेतु तीन संस्थायें कार्य करती है- एस. एण्ड पी., मूडीज़ एवं फ्रिंच। क्रेडिट रेटिंग एजेन्सियां अपने-अपने तरीकों से कम्पनी की वित्तीय स्थिति एवं उसकी भुगतान क्षमता का अध्ययन कर उसके द्वारा जारी किये जाने वाले बॉण्डों की क्रेडिट रेटिंग का निर्धारण करती है।

10.5.4 अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार एवं भारतीय कम्पनियां

भारतीय कम्पनियां भी अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार में अपनी पहचान बनाये हुए है। रिलायन्स उद्योग, आई.सी.आई.सी.आई. लिमिटेड, ओ.एन.जी.सी., आई.डी.बी.आई. आदि कम्पनियों ने 10 वर्षीय परिपक्वता अवधि वाले बॉण्ड उदारीकरण के बाद जारी किये थे। उदारीकरण से पूर्व तक स्थिर कूपन वाले बॉण्ड जारी किये जाते थे परन्तु उदारीकरण के बाद बाजार पर आधारित परिवर्तनीय बॉण्ड जारी किये जाने लगे है। स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा 1991 में इण्डिया डेवलपमेंट बॉण्ड, 1998 में रिपर्जेन्ट इण्डिया बॉण्ड तथा 2000 में मिलेनियम इण्डिया डिपॉजिट योजना प्रारम्भ गयी। इनका उद्देश्य अनिवासी भारतीयों से विदेशी मुद्रा को प्राप्त करना था।

10.6 अभ्यास प्रश्न

(क) बहुविकल्पीय प्रश्न-

1. भारत में आर्थिक सुधार कब से प्रारम्भ हुए हैं?

(अ) 24 जुलाई 1990 (ब) 24 जुलाई 1991

(स) 24 जुलाई 1992 (द) 24 जुलाई 1993

2. फेमा अधिनियम कब से लागू हुआ हैं?

(अ) 1 जून 2000 (ब) 1 जुलाई 2000

(स) 1 अगस्त 2000 (द) 1 मई 2000

3.फेमा (FEMA) का पूरा नाम क्या हैं-

(अ) विदेशी मुद्रा सहयोग अधिनियम (ब) विदेशी मुद्रा सरल अधिनियम

(स) विदेशी मुद्रा त्याग अधिनियम (द) विदेशी मुद्रा प्रबन्धन अधिनियम

4. यूरो मुद्रा किस संघ की मुद्रा हैं?

(अ) यूरोपीय संघ (ब) अमेरिकी संघ

(स) अफ्रीका संघ (द) इनमें से कोई नहीं

5. मूडीज संस्था का कार्य क्या हैं-

(अ) अन्तर्राष्ट्रीय बैकों की रेटिग करना (ब) अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्डो की रेटिग करना

(स) अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की रेटिग करना (द) इनमें से कोई नहीं

(ख) लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. फेरा एवं फेमा में अन्तर बताइये।
2. विदेशी मुद्रा प्रबन्धन अधिनियम की मुख्य विशेषताएं लिखिएं।
3. यूरो मुद्रा बाजार की मुख्य विशेषताएं बताइये।
4. अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड के प्रकारों का संक्षेप में वर्णन कीजिएं।
5. जीरो कूपन बॉण्ड का अर्थ लिखिएं।
6. विनिमय दर के अर्थ को समझाइये।

10.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ गये होंगे कि वैश्वीकरण के बाद विदेशी विनिमय बाजार में क्या-क्या महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है। फेरा, 1973 का मुख्य उद्देश्य जहाँ विदेशी मुद्राओं का संरक्षण करना था, वही फेमा 1999 का उद्देश्य विदेशी व्यापार एवं भुगतानों को सुविधाजनक बनाना तथा देश में विदेशी मुद्रा बाजार के सुव्यवस्थित रखरखाव को बढ़ावा देना है। यूरो मुद्रा बाजार वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी बाजार के रूप में विकसित हो चुका है। वर्तमान में यह बाजार अन्तर्राष्ट्रीय वित्त बाजार में डॉलर की सम्प्रभुता को चुनौती दे रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार में यूरो बॉण्ड एवं विदेशी बॉण्ड बाजार की परिवर्तनीयता के साथ कदमताल कर रहे है जिसमें भारतीय कम्पनियाँ भी अपनी पैठ बना चुकी है और निरन्तर नये क्षितिज की ओर अग्रसर है।

10.8 शब्दावली

- **आयात** - विदेशों से सामान को मंगाना।
- **निर्यात** - विदेशों को सामान को भेजना।
- **अवमूल्यन** - यदि किसी मुद्रा का विनिमय मूल्य अन्य मुद्राओं की तुलना में जानबूझ कर कम किया जाता है।
- **मुद्रा स्फीति** - जब मुद्रा का मूल्य कम हो जाता है तथा वस्तु की कीमते बढ़ जाती है।
- **हवाला** - जब व्यापार अधिकृत विदेशी विनिमय चैनलों को बाईपास करके व्यापार करते है।
- **पूँजी बाजार** - पूँजी बाजार में दीर्घकालीन वित्त उपलब्ध कराने वाली संस्थाओं को शामिल किया जाता है।

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

(1) 24 जुलाई 1991, (2) 1 जून 2000, (3) विदेशी मुद्रा प्रबन्धन अधिनियम,
(4) यूरोपीय संघ, (5) अन्तर्राष्ट्रीय बाण्डों की रेटिग करना,

10.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- एम.सी.वैश्य एवं सुदामा सिहं, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफोर्ड एण्ड आई.बी.एच.पब्लिशिंग कं.प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली।
- एम.एल.झिंगन, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली।
- शर्मा एवं सिंघई, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन, पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि., आगरा।
- अग्रवाल बरला, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- Mithani, D.M., International Economics, Himalaya Publishing House.
- Bhagwati, J.International Trade:Selected Readings, Cambridge University Press
- Cherunilam, Francis, International Economics, Oxford University Press India.

10.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

- एम.सी.वैश्य एवं सुदामा सिहं, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफोर्ड एण्ड आई.बी.एच.पब्लिशिंग कं.प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली।
- एम.एल.झिंगन, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली।
- शर्मा एवं सिंघई, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन, पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि., आगरा।
- अग्रवाल बरला, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- Mithani, D.M., International Economics, Himalaya Publishing House.
- Bhagwati, J.International Trade:Selected Readings, Cambridge University Press
- Cherunilam, Francis, International Economics, Oxford University Press India.

10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आर्थिक सुधारों के बाद विनिमय बाजार में होने वाले परिवतनों को संक्षेप में समझाइये।
2. यूरों मुद्रा बाजार पर एक निबन्ध लिखिएं।
3. अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार का अर्थ, प्रकार एवं विशेषताएं लिखिएं।